A Guide to Hindi Composition, Essay and Letter-Writing.

प्रस्ताव-प्रदीपिका

लेखक—

श्रीयुत रघुनन्दन शास्त्री,

एम. ए., एम. ओ. एल,

हिन्दी तथा संस्कृताध्यापक,

ऐट्चिसन चीफ्स् कालेज,

लाहौर

प्रकाशक—

मोतीलाल बनारसीदास

संस्कृत-हिन्दी पुस्तक विक्रेता

सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर

प्रथम वार]   सन् १९३३   [मूल्य १।)

प्रकाशक :—

सुन्दरलाल जैन

पंजाब संस्कृत पुस्तकालय

सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर

मुद्रक :—

श्रीमती सुशीलादेवी

विद्या प्रकाश प्रेस अनारकली, लाहौर

विषय-सूची

नोट—जिन प्रस्तावों के साथ * चिन्ह लगा है, वे हिन्द-रत्न की परीक्षा में आ चुके हैं।

प्रस्ताव-प्रदीपिका

भूमिका

प्रस्ताव विद्यार्थी की मौलिक बुद्धि का परिचायक है। अध्यापकों और टीकाग्रन्थों की सहायता से दोहों और चौपाइयों का अर्थ रट कर परीक्षा में पास होजाना कठिन नहीं। व्याकरण और इतिहास भी रटे जासकते हैं। काव्य, नाटक, साहित्य आदि अन्य सभी विषयों को विद्यार्थी थोड़े से श्रम से ही तय्यार कर सकते हैं। पर प्रस्ताव एक ऐसा विषय है जिस में विद्यार्थी की अपनी बुद्धि, उसकी संचित ज्ञानराशि, और उस की साधारण योग्यता की परख होती है। पुस्तकों के 'किताबी ज्ञान' के अतिरिक्त विद्यार्थी में वास्तविक लोकबुद्धि कितनी है यह बात प्रस्ताव से ही प्रदर्शित होती है। इसी लिये विद्यार्थी लोग प्रस्ताव से बहुत घबराया करते हैं। प्रस्ताव में घोटा लगाने का काम नहीं, टीका टिप्पणी और 'कुंजी' देखने का भी काम नहीं। यहां तक कि प्रस्ताव में अध्यापक वर्ग भी विद्यार्थी की बहुत कम सहायता कर सकते हैं। कारण कि प्रस्ताव एकदम बुद्धि-गोचर विषय है जिस का सम्बन्ध विद्यार्थी की अपनी प्रतिभा और योग्यता से है। किताबों का कीड़ा न बन कर जिस विद्यार्थी का ज्ञान-क्षेत्र जितना

ही विस्तृत है, वह उतना ही अच्छा प्रस्ताव लिख सकता है। किताबों के रट्टू कभी अच्छा प्रस्ताव नहीं लिख सकते। वास्तव में परीक्षाओं में प्रस्ताव का पत्र रक्खा ही इसलिये है कि यह देखा जावे कि पाठ्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त विद्यार्थी की साधारण जानकारी और उस विषय को अपनी भाषा में स्पष्ट करने की शक्ति कितनी है। इस का उद्देश्य यह है कि विद्यार्थी लोग पाठ्य-पुस्तकों के अध्ययन और रट लेने में ही सन्तुष्ट न हों, अपितु उन में सोच विचार का भाव अङ्कुरित हो और उन का अध्ययन-क्षेत्र विस्तृत हो। अतः प्रस्ताव विद्यार्थी की मौलिक बुद्धि का परिचय और योग्यता की कसौटी है।

प्रस्ताव का लक्षण और अर्थ—"प्रस्ताव" शब्द का यदि शाब्दिक विश्लेषण करें तो "प्र" और "स्तव" के संयोग से "प्रस्ताव" शब्द की सिद्धि मिलती है। 'प्र" के अर्थ हैं –'प्रकर्ष,' 'अधिक', 'उत्तम', 'अच्छा', और "स्तव" के अर्थ है 'स्तवन' (स्तुति भी इसी से बनता है) प्रतिपादन या वर्णन। इस प्रकार "प्रस्ताव" का शाब्दिक अर्थ 'उत्तम वर्णन' या भली प्रकार से वर्णन करना है। "किसी विषय का विस्तार-पूर्वक सम्बन्ध और सुचारु रूप से वर्णन करना" ही प्रस्ताव का लक्षण है। किसी दिये हुए विषय का उपयुक्त और शुद्ध भाषा में पूर्ण विवेचन करना ही प्रस्ताव का मुख्य उद्देश्य है।

प्रस्ताव के मुख्य अङ्ग—इस परिभाषा के अनुसार प्रस्ताव के मुख्य अङ्ग ठहरते हैं—" 'उपयुक्त और शुद्ध भाषा' और 'विषय' और 'उसका प्रतिपादन'।" संक्षेपतः प्रस्ताव में तीन ही बातें होती हैं—" 'भाषा', 'विषय' या 'भाव' और 'प्रतिपादन-शैली' " अर्थात्

जो कुछ आप प्रकट करना चाहते हैं वह 'भाव' है. जिस के द्वारा आप भाव प्रकट करते हैं वह 'भाषा' है, और जिस प्रकार से आप अपनी भाषा द्वारा अपने भावों को प्रकट करते हैं उस प्रकार को शैली कहते हैं। इस लिये प्रस्ताव सीखने के लिये विद्यार्थी को इन तीनों अङ्गों पर पूरा ध्यान देना चाहिये। भाषा परिष्कृत और शुद्ध हो, भाव गम्भीर और सम्बद्ध हों तथा शैली स्पष्ट, मधुर और सुचारु हो। अब हम भाषा, शैली और भाव का विशेष उल्लेख करते हैं।

(१) भाषा—जिस के द्वारा भाव प्रकाशित हों उसे भाषा कहते हैं। साधारणतः भाषा का अर्थ 'बोली' है। भाषा का वैज्ञानिक लक्षण है 'भावों की ध्वनिमयी मूर्ति'। पर प्रस्ताव में भाषा से अभिप्राय बोलने या 'वक्तृता' से नहीं अपितु 'लेखन से है। प्रस्ताव में लिख कर भाव व्यक्त किये जाते हैं. अतः लेखन को ही भाषा समझना चाहिये। वैसे तो लेखन भी बोलचाल का एक कृत्रिम रूप ही है। बोलने में जो कुछ ध्वनियों द्वारा व्यक्त किया जाता है लिखने में वही कुछ अक्षरों द्वारा प्रकट करना पड़ता है। पर बोलने और लिखने में अन्तर बड़ा है। बोलने में तो जो कुछ जैसा मुंह में आया, बोल दिया, पर लिखने में क्रम, सम्बन्ध, व्याकरण, और सामंजस्य का पूर्ण विचार करना पड़ता है। लिखने में भी कथा, कहानी, पत्र और उपन्यास आदि की भाषा से 'प्रस्ताव' की भाषा में बड़ा अन्तर होता है। प्रस्ताव की भाषा बड़ी परिष्कृत, शुद्ध और उपयुक्त होनी चाहिये। वास्तव में प्रस्ताव भाषा की प्रौढ़ता और पूर्ण शक्ति के विकास की कसौटी है। इसी लिये प्रत्येक भाषा के साहित्य में 'प्रस्तावों' का स्थान बहुत ऊंचा है।

विद्यार्थी को उचित है कि भाषा के सुधारने में पूर्ण यत्न करे। जब तक भाषा सुधरी और मँजी हुई न होगी प्रस्ताव लिखने का विचार करना स्वप्नमात्र ही है। प्रस्ताव के लेख में अक्षर सुन्दर हों। लिखने में अक्षरविन्यास की अशुद्धियां न होनी चाहियें। कई विद्यार्थी 'परन्तु' को 'प्रन्तु', 'परमात्मा' को 'प्रमात्मा' 'विशेष' को 'विषेश', 'कृष्ण' को 'कृश्ण', 'स्तुति' को 'स्तुती', 'बुद्धि' को 'बुद्धी', 'दशरथ' को 'दशर्थ' और 'शुक्ल' को 'शुल्क', 'कृपा' को 'किरपा' या 'किर्पा' 'स्त्री' को 'इस्तरी' लिखते हैं। इस प्रकार की अशुद्धियों को ध्यान से बचाना चाहिये। अन्यथा 'भाव' अच्छे होने पर भी परीक्षा में उत्तीर्ण होने की कोई सम्भावना नहीं। भाषा को शुद्ध लिखने का सब से उत्तम प्रकार यह है कि मौखिक-लेख (Dictation) का खूब अभ्यास किया जावे। प्रारम्भ में भाषा शुद्ध कर के ही प्रस्ताव लिखने की चिन्ता करनी चाहिये।

शब्द—शब्द ही भाषा का सर्वस्व है। अपेक्षित अर्थ को पूर्ण रूप से प्रकट करने के लिये उपयुक्त शब्दों का प्रयोग ही भाषा के सौन्दर्य, अर्थ-गाम्भीर्य और लेखक की कुशलता का परिचायक है। उन शब्दों के चुनाव में ही लेखक को सारी शक्ति लगा देनी चाहिये। प्रारम्भ में चुनाव में बहुत कठिनता होती है। पर शनैः २ अभ्यास से सब कुछ ठीक हो जाता है। शब्दों के प्रयोग में निम्न लिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये :—

(क) कोई ऐसा प्रयोग न करो जिसके अर्थ से तुम्हें भली प्रकार परिचय न हो। किसी शब्द का ठीक अर्थ जाने बिना उसका प्रयोग करना हास्यकर है। अतः जिस शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में

तुम्हें संशय का लेशमात्र भी हो. उस का भी यथासम्भव प्रयोग न करना चाहिए ।

(ख) एक अर्थ वाले कई शब्दों में से भी तुम्हें अपने प्रसङ्ग और अभिप्राय के अनुसार ठीक शब्द चुनना चाहिए । 'प्रेम' 'अनुराग' 'वात्सल्य' 'स्नेह' आदि एकार्थवाची शब्दों में भी जहाँ कहीं थोड़ी बहुत अर्थ में समानता चाहे हो पर उन में भेद बहुत है । माता को पुत्र से वात्सल्य और स्नेह होता है, पर पत्नी को पति से अनुराग और प्रेम होता है ।

(ग) अन्य भाषायें—अंग्रेज़ी, अरबी, फ़ारसी आदि के केवल उन्हीं शब्दों का प्रयोग करो जो प्रचलित हो चुके हैं। अपने शब्दों के होते हुए अप्रचलित विदेशी शब्दों का प्रयोग भाषा को भद्दी बना देता है; नमूना देखिए—'घर से फादर' का 'लैटर' आया है, वहां 'वाइफ़' 'इल' हो गई है, इसलिये आज 'लीव' 'एप्लाई' करके 'नाइट ट्रेन' से 'ट्रैवल' कर रहा हूँ ।' इस प्रकार की खिचड़ी भाषा 'प्रस्ताव' में कभी न लिखनी चाहिए। जहाँ पर अपनी भाषा के शब्द प्रसिद्ध हों वहां पर कोई विदेशी शब्द प्रयोग न करना चाहिए । हाँ ! प्रचलित और परम प्रसिद्ध विदेशी शब्दों के स्थान में अपनी भाषा के अप्रसिद्ध और क्लिष्ट पर्यायवाची ढूँढना भी मूर्खता है । 'रेल' न लिख कर 'धूम शकटी यंत्र' लिखना व्यर्थ है । स्कूल, स्टेशन, इञ्जनीयर, डाक्टर, मास्टर आदि कई अंग्रेज़ी के शब्द हिन्दी में परम प्रसिद्ध और प्रचलित हो चुके हैं । इसी प्रकार आदमी, कानून, कैद, कलम, तहसील, नमूना, सिफ़ारिश, मुसाफ़िर, किताब आदि फ़ारसी अरबी के कई शब्द भी हिन्दी में बराबर व्यवहृत हो रहे हैं । इन में भी कई तत्सम रूप में और कई

कुछ विकृत रूप में प्रयुक्त होते हैं। विद्यार्थियों को चाहिए कि जो विदेशी शब्द विकृत रूप में व्यवहृत होते हैं, उन को वैसे ही प्रयोग करें; उन के तत्सम रूप न लिखें। 'लालटैन' हिन्दी में कहीं अच्छा लगता है, 'लैन्टरन' शायद कईयों की समझ में न आवे। बोतल, तारपीन, गोदाम, बक्स और डाक्टर के स्थान 'बाटल', 'टरपेन्टाइन', 'गोडाउन', 'बाक्स' और 'डाक्टर' लिखना अच्छा नहीं। विदेशी शब्दों के प्रयोग में एक और बात का भी ध्यान रखना चाहिए। विदेशी शब्दों के साथ "प्रत्यय" अपनी भाषा के जोड़ने चाहियें। ऐसा करने से वे शब्द हिन्दी की पोशाक में दिखाई देकर हिन्दी व्याकरण के नियमों का पालन करेंगे और शीघ्र रच पच जाएंगे। 'स्कूल्स के लड़के' न लिख कर 'स्कूलों के लड़के' लिखना चाहिए। संक्षेप से विदेशी शब्दों के प्रयोग में ये नियम ध्यान में रखें:—

(१) हिन्दी के प्रसिद्ध शब्द रहते कोई विदेशी शब्द का प्रयोग न किया जावे।

(२) केवल प्रचलित और परम प्रसिद्ध विदेशी शब्दों का ही प्रयोग किया जावे।

(३) इन का भी विकृत रूप लिखना चाहिए।

(४) विदेशी शब्दों के साथ 'प्रत्यय' सदा हिन्दी के लगाए जावें और उनका प्रयोग सदा हिन्दी व्याकरण से यंत्रित कर के किया जावे।

(घ) क्लिष्ट और अप्रसिद्ध शब्द प्रस्ताव की भाषा में न होने चाहिएँ। शब्द सदा मधुर, प्रसिद्ध, शुद्ध स्पष्ट और उपयुक्त होने चाहिएँ। जिन से अपेक्षित अर्थ का प्रकाशन भली भान्ति हो सके।

वाक्य—वास्तव में हम जो कुछ लिखते हैं, वह वाक्यों में ही होता है। वाक्य में ही पूर्ण अर्थ के प्रकाशन की शक्ति है। शब्द केवल वाक्य का एक अङ्गमात्र हैं। बड़े २ ग्रन्थ, निबन्ध और प्रस्ताव केवल वाक्यों के समूह मात्र हैं। अतः अच्छा प्रस्ताव लिखने के लिए अच्छे वाक्य लिखने परम आवश्यक हैं।

उत्तम वाक्य में ये गुण होते हैं:—

(१) शब्दों का क्रम व्याकरण के नियमानुसार हो।

(२) सारे शब्द सार्थक हों और वे सब मिल कर एक अर्थ का प्रकाश न करें।

(३) सारा वाक्य पढ़ने के पश्चात् पाठक के चित्त में अर्थ की पूर्णता का बोध हो और कोई आकांक्षा शेष न रहे। जैसे यदि कोई कहे कि 'मेरे पुत्र में यह बुरी आदत है कि वह बाज़ार में जाकर खा आता है।' अब यह वाक्य पढ़ कर या सुन कर अर्थ बोध पूरा नहीं होता और पढ़ने या सुनने वाले के दिल में वह आकांक्षा बनी रहती है कि क्या खा आता है। इस प्रकार के वाक्य जो आशय को पूरा २ प्रकट न करें, प्रस्ताव में प्रयुक्त न करने चाहिएँ।

वाक्य में सुन्दरता लाने के लिये उचित है कि वाक्य सुसंगठित और सरल हों। बड़े २ लम्बे और जटिल वाक्यों का प्रयोग न करना चाहिये, कारण कि प्रारम्भ में विद्यार्थी लम्बे तथा जटिल वाक्य को नियन्त्रित नहीं कर सकते। दूसरे जटिल वाक्य में भाव परम्परा भी छूट जाती है।

वाक्य में शब्दों का क्रम ठीक हो, कर्ता, कर्म, करण, विशेषण, क्रिया, क्रियाविशेषण, संयोजक, सम्बन्ध, सर्वनाम आदि सब

व्याकरण के अनुसार अपने २ स्थान पर हों। स्थान, प्रत्यय या क्रम भङ्ग से न तो अर्थ व्यक्त होता है, न वाक्य शुद्ध माना जाता है। "मैं पुस्तक पढ़ता हूँ" के स्थान में "मैं पढ़ता हूं पुस्तक" या "पुस्तक पढ़ता हूं मैं" या "मैं हूँ पुस्तक पढ़ता" इत्यादि क्रम हीन सभी वाक्य शुद्ध वाक्य नहीं हैं। एक ही वाक्य में बहुत सी पूर्व-कालिक क्रियाओं का प्रयोग भी नहीं करना चाहिये। इससे भाषा का लालित्य मारा जाता है और वाक्य भद्दा हो जाता है। जैसे 'मैं रोटी खाकर, कपड़े पहन कर, स्कूल पहुँच कर, अध्यापक को नमस्कार करके और अपनी पुस्तकें निकाल कर पढ़ने लगा। इस वाक्य को यदि छोटे २ सरल वाक्यों में रखा जावे तो कितना लालित्य आ जाता है। 'मैंने रोटी खाई और कपड़े पहन लिये। फिर मैं स्कूल को चला गया। वहां अध्यापक को नमस्कार कर के अपनी पुस्तकें निकाल कर पढ़ने लगा।'

वाक्यों में एक और बात का भी ध्यान रखना चाहिये। प्रायः विद्यार्थी वाक्य के प्रथम खण्ड में 'यद्यपि' लिख कर उस के दूसरे खण्ड में 'तथापि' की जगह 'किन्तु' या 'पर' या 'परन्तु' लिख देते हैं—यथा 'यद्यपि आप हरिद्वार हो आए, किन्तु (पर या परन्तु) गङ्गाजल न लाये। यह अशुद्ध है। यद्यपि की पूर्ति 'तथापि' से होनी चाहिये। इसी प्रकार 'जब' की पूर्ति 'तब' से करनी चाहिये ('तो' से करना अशुद्ध है) 'यदि' की पूर्ति 'तो' से (न कि 'तब' से) और 'जहाँ' की पूर्ति 'वहां' या 'तहाँ' से करनी चाहिये।

प्रस्ताव के आदि और अन्त में वाक्य बहुत छोटे २ हों। प्रायः समीकृत वाक्य ही प्रस्ताव को सुन्दर बनाते हैं।

अनुच्छेद—एक भाव को भली प्रकार विशद करने वाले वाक्य

समूह (५-७ वाक्यों के समूह) को अनुच्छेद या (Paragraph) कहते हैं। प्रस्ताव में भावों का प्रकाशन क्रम और शृंखला बद्ध होता है। सारे भावों का संमिश्रण सा बना कर एक ही अनुच्छेद बना देना प्रस्ताव की सुन्दरता और उपयोगिता को नष्ट कर देता है। अतः अपने प्रस्ताव को सदा छोटे २ अनुच्छेदों में विभक्त करना चाहिये। एक अनुच्छेद में एक ही भाव हो। जैसे—तुम 'गौ' पर प्रस्ताव लिख रहे हो तो 'गौ' की आकृति का वर्णन एक अनुच्छेद में हो। 'गौ' के लाभों का वर्णन एक पृथक् अनुच्छेद में हो। इस प्रकार गौ' के सम्बन्ध में जो २ भाव तुमने प्रकट करने हों उन सब का पृथक् अनुच्छेदों में वर्णन करना चाहिये।

प्रत्येक अनुच्छेद का पहला वाक्य ऐसा हो जिस से सारे अनुच्छेद के भाव का पता लग जावे। अनुच्छेदों की लम्बाई और विस्तार भाव और विषय के अनुसार होना चाहिये। साधारणतः अनुच्छेद बहुत लम्बे न होने चाहिएँ। नाही असंयत रूप में अनुच्छेद बहुत छोटे कर देने चाहिएँ।

विराम-चिन्ह (Punctuation)—प्रस्ताव में विरामचिन्हों का होना भी नितान्त आवश्यक है। विराम चिन्हों के विना कई बार अर्थ में बहुत गड़बड़ मच जाती है और पाठक लेखक के आशय को भली प्रकार समझ नहीं सकता। जैसे—'पकड़ो मत जाने दो' में यदि पकड़ो' के बाद कौमा (,) रखें तो इस का अर्थ है—'पकड़ो, जाने मत दो' पर यदि कौमा 'मत' के बाद रखें तो इस का अर्थ है—पकड़ो मत, जाने दो'। केवल एक कौमे के बदलने से अर्थ ठीक विपरीत हो गया। आजकल हिन्दी में प्रायः अंग्रेज़ी के सभी विराम-चिन्हों का प्रयोग होता है। हां, पूर्ण-विराम या (Full

stop) के स्थान पर हिन्दी में प्राचीन खड़ी पाई (।) का प्रयोग होता है। शेष कौमा (,), सेमीकोलन(;), डैश (—) ब्रैकेट ( ), प्रश्न चिन्ह (?), विस्मय चिन्ह (!), अवतरण चिन्ह (" ") आदि सभी का यथास्थान हिन्दी में प्रयोग होता है। इन के प्रयोग से भाषा में स्पष्टता, सौष्ठव और सौन्दर्य आ जाता है। इसलिये लेख में इन पर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

इस प्रकार भाषा के सम्बन्ध में पूरी सावधानी से काम लेना चाहिये। भाषा ही प्रस्ताव का मुख्य अङ्ग है। विशेष कर प्रारम्भिक परीक्षाओं में तो प्रस्ताव की भाषा पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। जो विद्यार्थी शुद्ध और मधुर भाषा लिख सकता है, वह प्रस्ताव के पत्र में अनुत्तीर्ण नहीं हो सकता। इसलिये भाषा में अक्षर, शब्द, वाक्य, अनुच्छेद और विराम-चिन्ह आदि का यथावसर यथायोग्य व्यवहार करना चाहिये।

भाषा सुधार के उपाय—भाषा को सुधारने के लिये उचित है कि विद्यार्थी—

(१) मौखिक लेख का खूब अभ्यास करके पहले भाषा को शुद्ध लिखना सीख ले। फिर

(२) हिन्दी व्याकरण से खूब परिचित हो। रचना-ग्रन्थों को पढ़ कर उन के नियमों के अनुसार भाषा के सुधार में तत्पर हो।

(३) अर्थ की स्फुटता के लिये कोष (डिक्शनरी) आदि के अवलोकन का अभ्यास भी भाषासुधार में हितकर है।

(४) अच्छे २ कुशल और सिद्धहस्त लेखकों की पुस्तकें पढ़ना और उन के भावों को अपनी भाषा में लिखने का अभ्यास करना नितान्त आवश्यक है।

(५) व्यवहार और बोलचाल में प्रचलित शब्द और मुहाविरों का संग्रह करते रहना चाहिए।

(६) भाषा-सुधार का वास्तविक उपाय अभ्यास' है। पुस्तकें और व्याकरण पढ़ लेने मात्र से भाषा लिखना नहीं आता। प्रस्ताव सीखने वाले के लिये आवश्यक है कि भाषा लिखने का निरन्तर अभ्यास करता रहे। जहां कहीं कोई चमत्कारपूर्ण रचना पढ़े, वा कोई सुन्दर मुहाविरा देखे, उसे झट अपनी नोट बुक में लिख ले और ऐसे वाक्य लिखने का अभ्यास करे जिन में उस का प्रयोग हो सके। इस प्रकार व्याकरण, कोष, आप्तवाक्य, व्यवहार और निरन्तर अभ्यास से भाषा परिष्कृत हो जाती है, और विद्यार्थी को प्रस्ताव लिखने से 'हौए' का सा डर नहीं लगता।

(२) शैली— हम ऊपर बता चुके हैं कि जिस प्रकार से भावों को भाषा द्वारा प्रकट किया जावे उस प्रकार को शैली कहते हैं। विद्यार्थी जानते हैं कि एक बात को कहने के कई ढंग होते हैं। मान लीजिये किसी ने बाज़ार से कुछ लाने के लिये अपने नौकर को भेजा। वह बहुत देर तक भी लौट कर न आया। अब नौकर की देरी को प्रकट करने के कई प्रकार हैं—कोई तो कहेगा "इतनी देर हो गई नौकर नहीं लौटा"; कोई कहेगा "पता नहीं नौकर को क्या हो गया जो अब तक नहीं लौटा"; कोई कहेगा "न जाने नौकर कहां मरा हुआ है जो अब तक नहीं आया"; कोई कहेगा 'नौकर को तो बाज़ार ने ही पकड़ रखा है जो अभी तक आने नहीं आया"; कोई कहेगा "नौकर तो घोड़े बेच कर गया है जिसने लौटने का नाम ही नहीं लिया"; कोई कहेगा "नौकर तो जूं की चाल चलता है जो

अब तक नहीं पहुंचा"; कोई इस सारे भाव को एक मुहाविरा कह कर ही प्रकट कर देगा "काल्ू भेजा था पत्तों को, न पत्ते न काल्ू"। इस प्रकार एक ही भाव को प्रकट करने के लिये कई ढंग से वाक्य कहे जाते हैं। इस 'ढङ्ग' को ही शैली कहते हैं। प्रत्येक लेखक की अपनी भिन्न शैली होती है।

ऊपर के उदाहरणों से विद्यार्थी को पता चलेगा कि शैली का सम्बन्ध शब्दों की भिन्न २ शक्तियों, अलंकारों, मुहाविरों और 'पद संघठन' से है। "नौकर कहां मरा हुआ है" इसमें 'मरा हुआ' लक्षणा शक्ति से बहुत देर को प्रकट करता है, अन्यथा 'मरा हुआ' का प्रयोग ऐसी दशा में कोई नहीं करता। इसी प्रकार "नौकर को तो बाज़ार ने ही पकड़ रखा है" में भी 'बाज़ार का पकड़ना' असम्भव होने से पकड़ने का अर्थ देरी लगने का ही है। "नौकर जूं की चाल चलता है" में भी 'अतिशयोक्ति' अलंकार द्वारा 'देरी' प्रकट की गई है। "काल्ू भेजा था पत्तों को, न पत्ते न काल्ू" एक मुहाविरा ही सारी देरी को प्रकट कर देता है। इस प्रकार शैली सीखने के लिये शब्दों की शक्तियों, अलङ्कारों और मुहाविरों तथा पदसंघठन का साधारण ज्ञान आवश्य रूप से आपेक्षित है।

शब्दों में अर्थ बोध कराने की तीन शक्तियां होती हैं:—

(१) कई शब्द सीधा साधा अर्थ प्रकट कर देते हैं जैसे "बहुत देर होगई नौकर नहीं आया"। इसे अभिधा कहते हैं। इस शक्ति का प्रयोग सब से अधिक होता है। इससे अर्थ बोध तो निर्भ्रान्त रूप से होता है. पर काव्य की दृष्टि से इसमें ललित्य, चमत्कार और विलक्षणता का अभाव होता है।

(२) कई शब्द सीधे अर्थ में व्यवहृत न होकर किसी अन्य

लक्ष्य को लक्षित करते हैं—जैसे "नौकर को बाज़ार भेजा था वह वहीं मर रहा है"; 'यहां मर रहा है' का सीधा अर्थ तो यहां वक्ता को अभीष्ट नहीं। वक्ता का अभिप्राय केवल अन्य लक्ष्य—देरी को बताना है। ऐसे ही "नौकर को बाजार ने पकड़ रखा है" में भी 'बाज़ार तो पकड़ने वाली वस्तु नहीं है'; इससे यहां पकड़ने का सीधा अर्थ असंभव होने से लक्ष्य अर्थ—'देरी का बोध होता है।' इसे 'लक्षणा शक्ति' कहते हैं। लक्षणा में कार्य कारण का सम्बन्ध,प्रयोजन, अनुभव आदि कई बातों की सहायता से अर्थ-बोध होता है। लक्षणा शक्ति के प्रयोग से भाषा में लालित्य और चमत्कार आ जाता है। अतः इस का भी यथावसर प्रयोग करने का यत्न और अभ्यास करना चाहिये।

लक्षणा के अन्य उदाहरण ये हैं—'यहाँ मनुष्य तो निरा गौ है'। 'पानी का गिलास लाओ। गाड़ी पर चढ़े हुए कहते हैं—'आहा लाहौर आगया।' 'यह सड़क कहां को जाती हैं।' उस 'का दुःख देखकर मेरा हृदय पिघल गया।' 'भारत बहुत दुखी है।' 'गङ्गा मैया ने अपनी गोदी में ले लिया।' 'वहां गोली चल रही है।' इत्यादि—

(३) कुछ शब्द सीधा अर्थ तो रखते हैं, पर उनका प्रयोग उस से विपरीत अर्थ में व्यङ्ग्य के रूप में होता है; जैसे "वाह रे नौकर, सदा ऐसे ही किया करो, इस से तुम बहुत देर तक हमारे पास टिक पाओगे"। इस में सीधा अर्थ तो है कि "तुम ऐसे ही देरी से आया करो और तुम्हें नौकरी से नहीं हटायेंगे।" पर यहां वक्ता का अभिप्राय यह नहीं। अभिप्राय ठीक इस के विरुद्ध है। "भाई तुम ने फिर ऐसा किया तो नौकरी से हटा दिये जाओगे।"

इस शक्ति को व्यञ्जना कहते हैं। कई बार व्यञ्जना विपरीत अर्थ को प्रकट न करके इङ्गित अर्थ का बोध कराती है; जैसे किसी मित्र के घर जाकर तुम कहो 'भाई, प्यास लगी है।' अब तुम्हारा मित्र तुम्हारे इंगित अर्थ को समझ कर झट पात्र ला देगा। तुम ने 'मुझे पानी पिलाओ' यह सीधी (अभिधा) बात न कर और ढंग से पानी मांगा इसमें तुमने व्यञ्जनासे काम लिया। इस प्रकार शब्दों की इन शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करके उन्हें अपनी भाषा में यथावसर प्रयुक्त करने से भाषा में सौष्ठव, लालित्य और ध्वनिचमत्कार आ जाते हैं। पर आवश्यकता से अधिक किसी का प्रयोग न करना चाहिये।

शब्द-शक्तियों के अतिरिक्त शैली में अलङ्कारों का भी प्रयोग होता है। अलङ्कारों से भाषा में सौन्दर्य आ जाता है। जैसे—कहें कि 'देवदत्त बहुत सोता है' तो यह सीधी साधी बात कह दी गई जिस में देवदत्त के बहुत सोने का भाव प्रकट किया गया। पर यदि इसे अलंकृत करके कहें तो हम कहेंगे 'सोने में देवदत्त तो कुम्भकर्ण को मात करता है' या 'देवदत्त निद्रा देवी से पृथक् ही नहीं होता' या 'देवदत्त तो अफीमची की तरह हर समय सोया रहता है।' इस प्रकार अलङ्कारों के प्रयोग से प्रभावाधिक्य और सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

इस प्रकार भाषा की शैली सुधारने के लिये शक्तियों, अलङ्कारों और मुहाविरों आदि का पूरा ज्ञान प्राप्त करके उन्हें प्रयोग करने का अभ्यास करना चाहिये।

(३) भाव—अपने प्रस्ताव में जो 'विचार' आप प्रकट करना चाहते हैं, उन्हें 'भाव' कहते हैं। बस, भाव ही प्रस्ताव का

सर्वस्व हैं। भावों की उत्कृष्टता और सुन्दरता पर ही प्रस्ताव की उत्कृष्टता और सुन्दरता अवलम्बित है। भाव अच्छे हों, सुसम्बद्ध हों, सुचारू रूप से उपनिबद्ध हों तो प्रस्ताव अच्छा है। यदि भाव थोथे, निकम्मे और असंयत हों तो प्रस्ताव निकम्मा है। इसलिये भावों के संग्रह और प्रयोग की ओर पूरा ध्यान देना चाहिये। यदि भाषा और शैली प्रस्ताव के अङ्ग और शरीर हैं, तो भाव प्रस्ताव के प्राण हैं। भाषा तो भावों की केवल मात्र पोशाक है जिसे पहना कर आप अपने भावों को व्यक्त करते हैं। पोशाक की सफ़ाई की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है पर असल बात तो भावों की ही है। इसलिये विद्यार्थियों को भावों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये।

किसी विषय के देखते ही जो भाव उत्पन्न हों उन्हें यों ही असंगत रूप से प्रकट न कर देना चाहिये। उन में शृंखला और क्रम का ध्यान रखना चाहिये। पहले उन्हें शृंखलाबद्ध करके क्रम से प्रकट करना चाहिये। मान लीजिये आप को "गौ" पर प्रस्ताव लिखना है। अब "गौ" के सम्बन्ध में तुम्हें सैंकड़ों बातें आती हैं। कई विचार तुम्हारे हृदय में हैं और वे सहसा तुम्हें याद आ जाते हैं। तुम्हें गौ के दूध, दही, चमड़े आदि के कई लाभ विदित हैं। पर इस अवस्था में तुम्हारे सब भाव बिखरे हुए और असंयत रूप में हैं। अब सब से प्रथम तुम इन को एक कागज़ पर लिख लो। जो भाव जैसे २ तुम्हारी बुद्धि में आवे उसे उसी तरह अङ्कित करलो। मान लो तुम ने यह कुछ अङ्कित किया:—

गौ के बहुत लाभ हैं।

दूध देती है।

घास खाती है।

इसके दो सींग और चार टांगें होती हैं।

इस का गोबर खेती के काम आता है।

दूध से बहुत स्वादु मिठाइयां बनती हैं जिन्हें सभी खाते हैं।

इसके गोबर के उपले जलाने के काम आते हैं।

इसका चमड़ा भी काम आता है।

इसके मूत्र को भी खेतों में डालते हैं और औषधियों में बरतते हैं।

इसका बछड़ा बड़ा होकर खेती और भार उठाने के काम आता है।

यह भारत में सर्वत्र पाई जाती है। यह कई प्रकार की होती है। इत्यादि इत्यादि—

अब इन भावों को शृङ्खलाबद्ध करो। सब से प्रथम गौ की आकृति के सम्बन्ध में लिखो। फिर उसके प्रकार और स्थान और भोजन आदि के सम्बन्ध में लिखो। फिर सब लाभ एक स्थान पर कर दो।

इस प्रकार सब भावों को शृंखला में बांधकर क्रमपूर्वक इस प्रकार लिखो।

गौ के दो सींग और चार टांगे आदि होती हैं।

यह भारत में सर्वत्र पाई जाती है।

यह कई प्रकार की होती है।

इस का भोजन घास पात है।

यह मांस नहीं खाती। और जुगाली करती है।

यह बहुत उपयोगी पशु है।

दूध—दूध से दही, घी, मक्खन, पनीर आदि बनते हैं।

गोबर खाद के काम आता है और सुखाकर लकड़ियों के स्थान जलाया जाता है।

मूत्र औषधियों में बरता जाता है और खाद के काम आता है।

चमड़े से जूता तथा और कई तरह की चीजें तैयार होती हैं।

इस का बछड़ा, बैल, और उस के लाभ।

इस प्रकार भावों को श्रृंखलाबद्ध और क्रम बद्ध करके फिर प्रत्येक शीर्षक पर एक एक अनुच्छेद लिखना शुरू करो। बस आप का प्रस्ताव उत्तम गिना जावेगा। इन्हीं भावों के अनुसार प्रस्ताव आगे लिखा है उसे देख लो।

इस प्रकार शीर्षक बना लेने का लाभ यह है कि एक तो लिखने में आसानी हो जाती है, और दूसरे कोई भाव छूटने नहीं पाता · भावों का क्रम और श्रृङ्खला भी ठीक रहती है और प्रस्ताव सुन्दर और सुनियंत्रित प्रतीत होता है। अतः प्रारम्भ में अभ्यास के लिये इस प्रकार के शीर्षक अवश्य बना लेने चाहिये।

भावसंग्रह के उपाय—प्रस्ताव लिखना कोई एक दिन में नहीं आ जाता। यह चिरकाल तक सतत अभ्यास द्वारा लिखना आता है। भाषासुधार के सम्बन्ध में हम पूर्व लिख आए हैं। उन के अनुसार सब से पहले भाषा को परिष्कृत करना चाहिए। साथ २ भावों के संचय और संग्रह में सदा तत्पर रहना चाहिए। अच्छा प्रस्ताव सीखने वाले विद्यार्थी को चाहिए कि अपनी जेब में सदा एक नोटबुक या पाकेटबुक रखे। जहाँ कहीं पहाड़, बाज़ार, शहर आदि में जावे, वहाँ के दृश्य या घटनाओं के सम्बन्ध में जो भाव उत्पन्न हों उन्हें सदा लिखता रहे। इस से

'निरीक्षण' और 'प्रकाशन' की शक्ति बढ़ेगी और नोट-बुक में भाव स्थायी रूप से अङ्कित रहेंगे। बाद में जब कभी किसी पहाड़ी दृश्य आदि पर प्रस्ताव लिखने को कहा जावे, तो वही नोट-बुक उस की बहुत सहायता करेगी।

जहाँ कहीं किसी वृद्ध से या पुस्तक में कोई कहानी या किसी बड़े महा पुरुष का जीवन चरित्र या कोई रोचक दृष्टान्त सुने या पढ़े तो उस का संक्षेप वहीं लिख ले।

यदि किसी व्याख्याता महाशय का व्याख्यान सुने तो उस का सार बना कर पूर्वोक्त शीर्षकों के रूप में लिख ले। अखबार में यदि किसी विषय पर कोई विशेष महत्त्व का निबन्ध पढ़े तो उस का भी झट संक्षेप बना कर लिख ले।

उत्तम और कुशल लेखकों के लेख और पुस्तकों को पढ़ कर उन के संक्षेप लिख ले।

जिस किसी घटना या दृश्य का नोट बुक में उल्लेख करे घर आकर उसी पर पूरा प्रस्ताव लिखने का भी अभ्यास करे।

इस प्रकार कुछ ही काल में उस के पास भावों का अच्छा संग्रह हो जावेगा। किसी भी विषय पर प्रस्ताव लिखते समय यह संग्रह उसकी काफी सहायता करेगा।

प्रथम शीर्षक बनाने का अभ्यास करे।

फिर उत्तम २ पुस्तकों का संक्षेप बनाने का अभ्यास करे और देखे कि किसी कुशल लेखक ने अपने प्रस्ताव में किन २ भावों का उल्लेख किया है। सारा प्रस्ताव पढ़ कर उस का विश्लेषण करे और जो भिन्न २ भाव उस में भरे हों उन को संक्षिप्त शीर्षक के रूप में लिख ले। इसके पश्चात् अपने लिखे हुए शीर्षकों पर अपने आप

प्रस्ताव लिखे। इस प्रकार 'विस्तार' और 'सङ्कोचन' का अभ्यास करने से भावों के संग्रह और शृंखलाबद्ध करने में विशेष सहायता मिलती है।

इस प्रकार जो विद्यार्थी करेंगे, वे प्रस्ताव से कभी नहीं डरेंगे। और उन की लेखनी प्रस्ताव लिखने के लिए सदा उद्यत रहेगी।

प्रस्तावों के भेद

विषयभेद से प्रस्तावों को हम तीन प्रकारों में बांट सकते हैं—

(१) वर्णनात्मक,

(२) विवरणात्मक, और

(३) विचारात्मक

वर्णनात्मक—किसी देखे हुए दृश्य या घटना या स्थान विशेष का वर्णन करना वर्णनात्मक प्रस्ताव है। यह सब से सरल है। सब से प्रथम इसी प्रकार के प्रस्तावों का अभ्यास करना चाहिए। कारण कि मनुष्य जिस वस्तु से पूर्ण परिचित हो और जिसे उसने अच्छी तरह स्वयं देखा हुआ हो उसका वर्णन वह बहुत सुगमता से कर सकता है। तुम स्वयं जानते हो 'लण्डन नगर' की अपेक्षा तुम अपने शहर पर अधिक सुगमता से प्रस्ताव लिख सकते हो। 'लण्डन' पर प्रस्ताव लिखने के लिए तुम्हें पुस्तकें पढ़ कर उन के अनुसार प्रस्ताव लिखना पड़ेगा, पर अपने शहर पर तुम स्वयं, बिना किसी पुस्तक की सहायता से, अपने अनुभव और जानकारी के आधार पर झट प्रस्ताव लिख सकते हो। इस प्रकार अपने देखे या परिचित विषयों पर प्रस्ताव लिखना प्रारम्भिक अभ्यास के लिए अत्युपयोगी है। 'अपनी पाठशाला' 'अपना घर' 'मन्दिरविशेष' 'पशुविशेष' (गौ, कुत्ता आदि) 'पर्वतविशेष' (हिमालय, शिमला

काश्मीर आदि) नदीविशेष (गंगा, रावी, आदि) आदि कई विषय हैं जिन पर तुम्हें सब से पहले प्रस्ताव लिखने चाहियें।

इसी प्रकार तुमने बाज़ार में कोई घटना देखी—"किसी घर को आग लग रही थी"; "किसी को पागल कुत्ते ने काट खाया"; "कोई तांगे पर से गिर गया"; "लड़के मैच खेल रहे हों" इत्यादि घटनाओं का भी यथादृष्ट वर्णन 'वर्णनात्मक' प्रस्तावों में आता है।

विवरणात्मक—वर्णनात्मक प्रस्तावों के अभ्यास के उपरान्त विवरणात्मक प्रस्ताव का अभ्यास करना चाहिए। इन में सुनी या पढ़ी हुई कथा, किसी महापुरुष का जीवनचरित्र, विशेष यात्राओं का विवरण और ऐतिहासिक लेख आदि विषय होते हैं। इन में वर्णन के साथ साथ कुछ कुछ विचार, समालोचना, टीका टिप्पणी आदि भी होते हैं। अकबर, अशोक, रामचन्द्र, कृष्ण, दयानन्द, शङ्कराचार्य, अमरनाथ यात्रा, काश्मीर की सैर, महाभारत की कहानी आदि विषय इन के अन्तर्गत आ जाते हैं।

विचारात्मक—इन में विचारगम्य, सूक्ष्म और अदृश्य बातों पर प्रस्ताव लिखे जाते हैं जैसे प्रेम, सचाई मित्रता, धैर्य्य आदि। इन के लिखने के लिए विद्यार्थी की ज्ञानराशि और प्रकाशन-कुशलता की आवश्यकता है। जिस का ज्ञान जितना विस्तृत है और लिखने का जिस को जितना अभ्यास है, वह उतना ही अच्छा विचारात्मक प्रस्ताव लिख सकता है।

इन के अतिरिक्त समालोचनात्मक तार्किक, तुलनात्मक आदि प्रस्तावों के कई प्रकार हैं पर वे विचारगम्य होने से विचारात्मक में ही आ जाते हैं।

प्रस्ताव लिखने की शैली:—इन तीनों प्रकार के प्रस्तावों को

लिखने की कोई एक शैली निर्धारित नहीं की जा सकती। विषय के अनुसार शैली होती है। प्रायः अध्यापक और अध्यापिकाएँ एक पुरानी शैली ही विद्यार्थियों को बताते रहते हैं जो सुनते हुए तो बड़ी अच्छी तरह से समझ में आ जाती है, पर प्रस्ताव लिखते समय विद्यार्थी की कुछ भी सहायता नहीं करती। वह शैली यह है—अध्यापिकाएँ प्रायः यह बताया करती हैं—प्रस्ताव में पहले भूमिका, फिर लाभ, फिर हानि, फिर दृष्टान्त पर कहानी लिखनी चाहिए। इसी के अनुसार बहुत सी छात्राएँ "भूमिका" आदि शीर्षक देकर प्रस्ताव लिखना शुरू करती हैं और अपनी तरह से इन की खाना पूरी कर के प्रस्ताव समाप्त कर देती हैं। एक छात्रा ने एक बार 'सत्य" पर प्रस्ताव लिखते हुए शीषक दिया "सत्य बोलने की हानियाँ" पर अब वह बेचारी हानि क्या लिखे। यदि हानि बताती है तो जो कुछ 'सत्य' पर वह पहले लिख आई है इस के विरुद्ध हो जाता है—निदान असमञ्जस में पड़ कर उसने लिखा—हानि तो कुछ नहीं, हाँ लोग सत्यवादी को कोरा और कडुवा मनुष्य कहते हैं—इस प्रकार ज्यूँ त्यूँ करके बेचारी ने 'हानि' की खाना पूरी की। इसी प्रकार यदि प्रस्ताव 'गो' पर है तो दृष्टान्त या कहानी ढूँडना मूर्खता है। किसी घटना के वर्णन में भी हानि व लाभ और दृष्टान्त की आवश्यकता नहीं।

इसी प्रकार पुराने अध्यापक भी प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण और निगम और उपसंहार आदि पञ्चावयवों पर बहुत जोर देते हैं। इस से विद्यार्थी लिखते समय किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं। अतः शैली या अवयवों का निर्धारण विषय के अनुसार होता है और उसका प्रतिपादन उपयुक्त शीर्षकों के अनुसार करना चाहिए।

वर्णनात्मक लेखों में सीधा-साधा वर्णन क्रमपूर्वक करना चाहिए। विवरणात्मक लेखों में भी घटनाओं के अनुकूल वर्णन होना चाहिए। इस में समय क्रम रखना अच्छा होता है। विचारात्मक प्रस्तावों में प्रथम वस्तु प्रतिपादन, फिर विस्तार, उपयुक्त दृष्टान्त, अवतरण और उपसंहार करने चाहिये। मान लीजिए तुम्हें 'सत्य' पर प्रस्ताव लिखना है। अब सत्य का प्रतिपादन—लक्षण—फिर विस्तार-व्यापकता, आवश्यकता, लाभ, गौरव, फिर उदाहरण तथा अन्य लेखकों के श्लोक दोहा आदि अवतरण तथा अन्त में सब का उपसंहार करना चाहिए।

प्रस्ताव में श्लोक या दोहा आदि के उद्धरण में यह देख लेना चाहिए कि जो पूर्ण उपयुक्त हो उसे ही दिया जावे; यों ही यह जताने के लिए कि हमें भी श्लोक आता है किसी श्लोक का लिखना अच्छा नहीं। आज कल बहुत श्लोक देने का तरीका कम हो रहा है। श्लोक के साथ उसका पूरा उद्धरण देना चाहिए अर्थात् यह श्लोक कहां जिस पुस्तक के जिस अध्याय का कितनवां श्लोक है,आदि अवश्य देना चाहिए।

आगे हम विद्यार्थियों के अभ्यास के लिए कुछ निबन्ध, कुछ एक के शीर्षक और कुछ विषयमात्र ही देते हैं। इन को मन कर के इन के सारांश और भाव विद्यार्थी पृथक् अङ्कित करने का अभ्यास करें, फिर स्वयं इन पर निबन्ध लिखें। ऐसा करने से, आशा है कि वे कुछ ही काल में सिद्धहस्त लेखक बन जावेंगे।

विशेष ध्यान देने योग्य कुछ बातें

(१) प्रस्तावका प्रारम्भ और अन्त प्रभाव शाली होना चाहिए।

(२) व्यर्थ पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए कठिन और अज्ञात शब्दों या श्लोकों की भरमार करना अच्छा नहीं।

(३) कोई बात असंगत न हो, सब कुछ क्रमबद्ध और सम्बद्ध हो।

(४) पुनरुक्ति दोष से बचो—एक बात को या एक शब्द को बार बार न दोहराओ।

(५) एक बात पहले कह कर फिर उस के विरुद्ध कुछ न हो।

(६) 'मैं' और 'हम' का प्रयोग यथासम्भव न हो।

हिन्दी-रत्न-निबंधमाला

हिंदी-रत्न परीक्षा में पिछले सालों में पूछे गए ७० निबंध

लेखक——बाबू गुलाबराय, एम.ए., एल्-एल.बी.

प्रकाशक——हिन्दी-भवन, लाहौर

मूल्य १)

आदर्श प्रस्ताव

नीचे हम पथप्रदर्शन के रूप में विद्यार्थी की सहायता के लिये कुछ प्रस्तावों के नमूने देते हैं। विद्यार्थियों को इन्हें रटना न चाहिये। ये केवल उन के अभ्यास के लिये हैं। इन्हें पढ़ कर वे 'भाव संचय' और शैली का अनुकरण तथा अभ्यास करें। प्रत्येक प्रस्ताव के साथ उस के शीर्षक (outlines) दिये गये हैं। इन के अनुसार विद्यार्थी स्वयं प्रस्ताव लिखें और यहां के प्रस्तावों को पढ़ कर उन के स्वयं शीर्षक बनावें। इस प्रकार 'विस्तार' और "सङ्कोचन" की विधि का पूरा अभ्यास करने से उन्हें अपना प्रस्ताव लिखने में कोई कठिनता न रहेगी।

वर्णनात्मक प्रस्ताव

गौ

शीर्षक—साधारण परिचय—शरीर तथा आकृति—प्राप्तिस्थान, स्वभाव—भोजन।

लाभ—दूध-दही, मक्खन, घृत, पनीर, लस्सी, छाछ इत्यादि।

गोबर-मूत्र, चमड़ा, हड्डी आदि।

बैल-हलजोतना-बोझा उठाना, गाड़ी खींचना आदि।

उपसंहार—गौ की महिमा और प्रतिष्ठा, गो-जाति की उन्नती और हमारा कर्तव्य।

गौ एक पालतू चौपाया पशु है जिसे प्रायः सब जानते हैं। इस का कद ४-५ फुट लम्बा और ४-५ फुट ऊँचा होता है। पहाड़ी गौएँ बहुत छोटी और क्षीणकाय होती हैं। हिसार और मिण्टगुमरी की गौएँ गठीली, हृष्ट पुष्ट और कदावर होती हैं। गौएँ प्राय: सभी रङ्गों की मिलती हैं जिनमें श्वेत और काली गौएँ अधिक पूजनीय और शुभ गिनी जाती हैं। गौ के सिर पर दो सींग होते हैं जिन से वह अपनी रक्षा करती है। गले में मांस की एक झालर सी लटकी होती है जिसे गलकम्बय या साम्ना कहते हैं और जो भैंस बकरी आदि श्रृंगी पशुओं से उसके भेद और लक्षण की परिचायक है। गौ के खुर फटे हुए होते हैं जिस से वह पहाड़ आदि दुर्गम स्थानों पर भी चढ़ सकती है, पर तेज़ दौड़ने में असमर्थ है। गौ के चार स्तन और एक लम्बी दुम होती है जिस के अन्तमें एक बालों का गुच्छा सा होता है। यह मच्छर और मक्खियां उड़ाने के काम में आता है।

गौ संसार के प्राय: सभी देशों में मिलती है। हालैण्ड और कैनेडा में गौ पालन का आजकल विशेष प्रबन्ध है। भारतवर्ष तो गौओं का घर गिना जाता था। विदेशीराज्य, आर्थिक क्षीणता, तथा अन्य कई कारणों से अब भारत में गौओं की संख्या में प्रतिदिन कमी हो रही है जो अत्यन्त शोचनीय है।

गौ का स्वभाव अत्यन्त सरल और साधु होता है। यह बच्चों से बहुत प्यार करती है। कभी किसी को हानि नहीं पहुंचाती। बच्चों के डराने से भी डर जाती है। इस के प्रदर्शन और स्पर्शन से पूर्ण सात्विक भाव की प्रवृत्ति होती है। गौ की साधुता और सरलता इतनी प्रसिद्ध हो चुकी है कि लक्षणा से हम सीधे साधे

भोले मनुष्य को भी कह देते हैं कि 'अमुक व्यक्ति तो निरा गौ है' ।

गौ का भोजन घास पात, शाक और अनाज है । यह मांस नहीं खाती । मांस मिली हुई वस्तु से इसे ऐसी गन्ध आ जाती है कि हज़ार प्रयत्न करने पर भी इसे मांस खिलाने में सफलता नहीं हुई । पालतू गौओं को घास, चारा के अतिरिक्त दाना, बिनौले और दड़ावा आदि पदार्थ भी खिलाए जाते हैं जिन से इन के दूध में विशेष वृद्धि और पौष्टिक तत्त्व उत्पन्न हो जाते हैं । यह भोजन को पहले एक दम खा जाती हैं और गले के नीचे जमा रखती हैं । बाद में विश्राम के समय गले के नीचे से भोजन पुनः मुख में लाकर चबाती हैं । इसे जुगाली करना कहते हैं ।

गौ की उपयोगिता और लाभ सब पर प्रगट हैं । हमारे जीवन निर्वाह के लिये गौ से अधिक और कोई उपयोगी और उपकारी पशु नहीं है । हमारे स्वादु भोजन, तरह तरह की मिठाइयां, और पौष्टिक पदार्थ सब के सब गौ की कृपा से हमें प्राप्त होते हैं । गौ का दूध हम पीते हैं । उस का दही बनाते हैं । दही से लस्सी, छाछ, पनीर और मक्खन निकालते है । मक्खन से घृत बनता है जो हमारे दैनिक भोजन का प्रधान अङ्ग है । घृत के बिना हमारा भोजन क्या रह जाता है ? घृत से ही मिठाइयां और दूसरे पौष्टिक पदार्थ तैयार होते हैं । गौ का दूध अन्य बकरी और भैंस आदि के दूध से अधिक गुणकारी होता है । वैद्यक शास्त्र के ज्ञाताओं का कथन है कि गो-दूध में वे सब तत्त्व पूरी मात्रा में विद्यमान् हैं जो मनुष्य की पुष्टि के लिये परम आवश्यक हैं । माता के दूध से उतर कर दूसरे दरजे पर सँसार में गोदुग्ध का ही स्थान है । बच्चों, बूढ़ों, नीरोगों, रोगियों और स्त्री-पुरुषों सब के लिये गो-दुग्ध

लाभप्रद है। गो-दुग्धका सेवन करने वालों को कब्ज,यकृत,आंत्रिक और वृक्क सम्बन्धी रोग कभी नहीं होते। इन के फेफड़े बलिष्ठ, मेदा साफ़, रक्त शुद्ध और बुद्धि सूक्ष्मदर्शी हो जाते हैं।

न केवल दूध, अपितु गौ का मल-मूत्र भी बड़े काम की वस्तु है। गोबर मकानों और दीवारों के पोतने के काम आता है। हिन्दू लोग चौका इसी का लगाते हैं। छूतदार रोगों से बचाव के लिये गोबर का चौका अत्युत्तम वस्तु है। हिन्दुओं के यज्ञ, संस्कार आदि सभी धार्मिक कृत्य प्रायः गोबर से पोते हुए स्थान में गो-घृत और पंच-गव्य से ही सम्पादित होते हैं।

कृषि शास्त्र के वेत्ताओं का कथन है कि गोबर खेती के लिये 'परिपूर्ण' खाद है। पौदों और वृक्षों की पुष्टि के लिये जिन रासायनिक तत्वों की आवश्यकता है वे सब गोबर में विद्यमान हैं। भारत के किसान प्रायः गोबर के खाद का ही उपयोग करते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक खाद गोबर की तुलना नहीं कर सकते। गोबर को सुखा कर उपले बना कर लकड़ियों के स्थान जलाते भी हैं।

गोमूत्र भी अत्युत्तम खाद है। यह भेदक, शोधक और कृमिनाशक है। कई भयंकर रोगों पर इस का प्रयोग किया जाता है और कई औषधियों में वैद्य लोग इसे बरतते हैं।

मरने के बाद गो का चमड़ा और हड्डियाँ भी काम आती हैं। पहनने के जूते, घोड़े का साज तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ चमड़े से बनती हैं। हड्डियों से बटन और खाद का काम लिया जाता है।

आजकल के माँसाहारी राक्षस सैनिक तथा अन्य म्लेच्छ लोग गो माँस का भी प्रयोग करते हैं। पर हिन्दुओं में गोवध और गोमांस सेवन को महापातक गिना है। वास्तव में गौ इतना

उपयोगी पशु है कि इसके जीने से हमें बहुत लाभ हैं। माँसके लिये अन्य बकरी आदि पशुओं की विद्यमानता में गौ सरीखे अत्यन्त उपयोगी पशु को मारना राक्षस वृत्ति से कम नहीं।

गौ के बच्चे को बैल कहते हैं। यह भी परम उपयोगी पशु है। यह हल चलाने, बोझा ढोने और गाड़ी आदि खींचने के काम आता है। जहाँ भैंस और झोटे रह जाते हैं, गरमी के कारण दम छोड़ बैठते हैं, वहाँ पर बैल ही काम आते हैं।

प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में गौ की बहुत प्रतिष्ठा है। भारतवासी इसे "गौ माता" और "देवता" कह कर पूजते हैं। प्रत्येक गृहस्थी के यहां एकाध गौ अवश्य रहती है। गोदान महा-पुण्य का कार्य माना जाता है। मरने से पूर्व गोदान करना भवभय से पार होने का साधन समझा जाता है। गौ को अभ्युदय और निश्रेयस की सिद्धि का साधन समझते हैं। इस की पालना और रक्षा परम धर्म गिनते हैं। वास्तव में भारत ऐसे कृषिप्रधान देश में गौ इस पूजा के पूर्ण योग्य है। हमारे स्वास्थ्य, आरोग्य, जीवन, यज्ञ, संस्कार तथा खेती आदि के लिये गौ एक अनिवार्य पशु है। इस की जितनी पालना की जावे थोड़ी है।

शोक है कि हम आजकल गोपालन की ओर उतना ध्यान नहीं देते जितना हमें देना आवश्यक है। हमें गो पालन के लिये पूरा यत्न करना चाहिये। गोशालाओं का खोलना, चरने के लिये भूमि का प्रबन्ध करना और माँसाहारियों से गौओं को बचाना हमारा कर्तव्य है। प्रत्येक गृहस्थी का परम धर्म है कि अपने घर की कल्याण-कारिणी, भव-तारिणी गो-माता की पालना करे।

आम

शीर्षक—साधारण परिचय—आकार—प्रकार—उत्पत्ति—स्थान—फलने फूलने का समय।

उपयोग और लाभ—छाया—पत्ते—लकड़ी—निर्यास—मंजरी—फल—कच्चे, पक्के।

उपसंहार—आम की महिमा आदि।

फलदार वृक्षों में आम सब से बढ़ कर है। इसे वृक्षराज कहा गया है। इस का पेड़ बटवृक्ष की भांति बड़ा लम्बा चौड़ा और छायादार होता। यह प्रायः २०-३० फुट ऊँचा और साधारणतः १०-१२ फुट मोटा होता है। इस की आयु कई सौ वर्ष की होती है। साधारणतः ७-८ साल का यह फल देने शुरू कर देता है। इसके पत्ते लम्बोदरे और नुकीले होते हैं। इस की मञ्जरी वाणाकार और फल लम्बोदरे सराहीदार गोलाकार होते हैं इस के फलों में गुठली होती है और गूदा और रस एक सबज, पीले, या लाल छिलके से ढके हुए होते हैं। कच्चे आम्रफल हरे रङ्ग के होते हैं, पर पकने पर पीले या लाल हो जाते हैं। कोई २ पकने पर भी अपना हरित् वर्ण नहीं छोड़ते।

आम का वृक्ष प्रायः तीस हजार फुट तक की ऊँचाई वाले स्थानों में पैदा हो सकता है। गरम देशों में यह बहुतायत से होता है। साधारणतः यह मैदानी वृक्ष है और पहाड़ों पर नहीं पाया जाता।

भारतवर्ष में सहारनपुर का आम प्रसिद्ध है। बम्बई और बनारस का आम भी उत्तम प्रकृति का गिना जाता है। लङ्गड़ा, सिंधूरी और लड्डू आम भी उत्तम जातियों में गिने जाते हैं। पञ्जाब के आम छोटे, पतले रस वाले और कुछ २ खटासदार होते हैं।

कलमी आम गूदेदार होते हैं। इस में पतला रस नहीं होता। इन की गुठली छोटी और आकार बड़ा होता है।

आमों को वसन्त ऋतु में मञ्जरियाँ लगती हैं। मञ्जरियां देखने में वाणाकार और अत्यन्त सुन्दर होती हैं। आम्र मञ्जरी की मादकता और महिमा का वर्णन संस्कृत के कवियों ने बहुत किया है। कोयल, वसन्त और आम्र मञ्जरी प्रायः सभी महाकवियों की लेखनी के विषय रहे हैं।

चैत और वैशाख की आँधियों से बहुत सी मञ्जरियाँ नीचे गिर जाती हैं। जो बचती हैं, उन को इन्हीं दिनों में छोटे २ फल लगने प्रारम्भ हो जाते हैं। प्रारम्भ में फल का आकार बड़े माष या चणक (चने) के दाने के बराबर होता है। मञ्जरी और छोटे कच्चे आम कड़वे होते हैं। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की ऊष्मा से आम बढ़ना और पकना प्रारम्भ करते हैं। वर्षा के प्रारम्भ में इन में रस की विशेष वृद्धि होती है और भार के कारण पका हुआ आम स्वयं भूमि पर गिर जाता है। इसे 'टपका' कहते हैं। वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में प्रायः यह 'टपका' शुरू हो जाता है। अब लोग इसे खाने के योग्य समझते हैं। टपके का आम सर्वोत्तम और स्वास्थ्य-वर्धक समझा जाता है। बहुत बूढ़े आम वृक्ष के हर तीसरे वर्ष फलते हैं।

आम भी बहुत उपयोगी वृक्ष है। इस की छाया घनी और शीतल होती है। कवियों ने आम्रछाया की बड़ी प्रशंसा की है। इसके पत्ते बड़े पवित्र समझे जाते हैं। विवाह, यज्ञ आदि संस्कारों में तोरणमाला, कलश छादन आदि के लिये इनका उपयोग किया जाता है। आम की लकड़ी इमारती काम में आती है। इसकी छत्तें, दरवाजे, खिड़कियां, मेज, तख्ते आदि बनते हैं। आम में से एक प्रकार का निर्यास निकलता है जिसे 'आम की गोंद'

कहते हैं। यह भी बहुत उपयोगी वस्तु है और वैद्य लोग इसे औषधियों में बरतते हैं। आम की मंजरी को कोयल आदि पक्षी खाते हैं। इसका स्वाद कटु और तिक्त होता है। कच्चे आम बड़े होने पर खट्टे हो जाते हैं। अब यह चटनी और आचार के काम आते हैं। दुकानदार लोग कच्चे आमों को छील और काटकर सुखा छोड़ते हैं जो वर्ष भर खटाई के काम के लिये बिकते रहते हैं। इन्हें "कुतरा" या आम की दलें कहते हैं। सूखी हुई दलों को कूट पीस कर चूर्ण की शकल में भी सुरक्षित रक्खा जाता है। इसे 'आमचूरा' कहते हैं। यह भी खटाई के काम आता है। कच्चे आमों का आचार भी डालते हैं जो वर्ष तक खराब नहीं होता। पकने के समीप आए हुए कच्चे आमों का मुरब्बा भी तैयार किया जाता है जो अत्यन्त स्वादु और गुणकारी होता है।

पके हुए आम चूसने के काम आते हैं। जहां आम बहुत होते हैं, वहां पके हुए मीठे आमों की भाजी भी बनाते हैं। आवश्यकता से बचे हुए पके आमों के रस को निचोड़ कर सुखा छोड़ते हैं। इसे 'आम्रपर्पटी या 'आम पापड़' कहते हैं। आम पापड़ को बच्चे बूढ़े सभी स्वाद से खाते हैं।

आम के फल की सर्वत्र महिमा है। इसे फलों का राजा कहा जाता है। वास्तव में इस जैसा मधुर, स्वादु, स्वास्थ्य-वर्धक और गुणकारी दूसरा फल नहीं है। इस से शरीर में रुधिर की वृद्धि होती है। कब्ज खुलती है। चेहरे का रङ्ग लाल और शरीर पुष्ट होता है। जिन लोगों के शरीर में खून की कमी हो, रङ्ग पीला हो, उन्हें पके हुए आम चूसने चाहियें। आम वास्तव में अमृत फल है जिसे परमात्मा ने मनुष्यों के लाभ के लिये उत्पन्न किया है।

ईख (गन्ना)

शीर्षक : — साधारण परिचय—आकार प्रकार—खेती-समय-देश ।

उपयोग—लाभ-गुड़-चीनी, शक्कर, मिठाइयां आदि ।

उपसंहार—अधिक महत्त्व और चीनी का व्यवसाय ।

बाँस आदि की तरह ईख एक दण्डाकार उद्भिद् है जो अपनी तरह का आप ही हैं। इसे न तो फल लगते हैं न फूल। यह स्वयं सारा का सारा क्षुप ही मीठा होता है। ४-५ से ८-९ फुट तक लम्बा और २-३ इञ्च मोटा होता है। नीचे मूल में जटाएं होती हैं और ऊपर का भाग जिसे अग्रभाग 'आग' कहते हैं बिलकुल फीका और पशुखाद्य होता है। बीच में ५-६ इञ्च लम्बी पोरियां होती हैं जो ग्रन्थियों द्वारा एक दूसरे से जुड़ी हुई होती हैं। यह ग्रन्थियां बड़ी कठिन और नीरस होती हैं और प्रायः चूस कर फेंक दी जाती हैं। एक गन्ने में साधारणतः ८-१० पोरियां होती हैं। इनका छिलका उतारने के बाद इन्हें यूं ही या गंडेरियां बना कर चूस लिया जाता है।

ईख की खेती बड़ी परिश्रमसाध्य होती है। इस में किसानों को बहुत परिश्रम करना पड़ता है। कहावत है 'तेरह कोड़ तीन पानी ईख की खेती है मर्दानी'। हमारे यहां इसे 'कमाद लगाना' कहते हैं।

ईख को फागुन-चेत में बोते हैं फिर गुल्लियां बना कर एक २ हाथ पर गाड़ते हैं तब इन में आंखे फूटने लगती हैं। इसे फिर कई बार पाटना और काढ़ना पड़ता है। इस प्रकार कहीं आश्विन कार्तिक में जाकर गन्ना चूसने के योग्य तैयार होता है।

भारतवर्ष में गन्ने की खेती बहुत प्राचीन काल से होती आई है। अब भी भारत में गन्ने अत्यधिक मात्रा में उपजते हैं। चीन, सिसली, स्पेन और अमेरिका में भी गन्ने की खेती होती है। यह साधारणतः उष्ण देशों और मैदानों में अधिकता से होता है। इस के लिये पानी और खाद की बहुत आवश्यकता है।

भारतवर्ष में गन्ने का उपयोग चूसने और पुराने ढंग से गुड़ शक्कर आदि बनाने के लिये होता है। सौभाग्य की बात है कि पिछले १-२ वर्ष से सरकारी सहायता मिलने से अब नये ढंग से कलों के द्वारा भारत में भी चीनी तैयार होने लगी है। पर अभी तक चीनी बनाने में भारतीय वैज्ञानिक वह उन्नति नहीं कर पाये जो दूसरे देशवालों ने की है। यहां की चीनी अभी इतनी साफ और बढ़िया नहीं होती जितनी विदेशों की। यही कारण है कि अभी तक भी विदेशी खाण्ड भारत में आ रही है।

गन्ने को बेलनों से पेर कर रस निकालते हैं। यह रस बहुत स्वादु और पौष्टिक होता है। बहुत से लोग इसे पीते हैं। रस से खीर आदि मिष्टान्न भी बनाते हैं। गन्ने के रस का सिरका भी बनाते हैं। रस को बड़े २ कड़ाहों में औटा कर गाढ़ा करके उस से गुड़ बनता है। इसी को छान कर चूना और दूध मिला कर औटाने से यह शुद्ध हो जाता है तो इस में सौंफ, गरी आदि मिलाने से 'भेली' नामक गुड़ तैयार करते हैं जो साधारण गुड़ से कहीं महंगा बिकता है और अधिक स्वादु होता है। इस रस को पतला २ औटाने से शक्कर और साफ कर लेने पर चीनी तैयार होती है। चीनी बनाते समय बची हुई मैल से राब या सीरा बनता है जो तम्बाकू बनाने के काम आता है। इसी सीरे से

वैज्ञानिक ढङ्ग पर शराब, स्पिरिट और सिरका आदि बनाते हैं। आजकल चीनी की कलें बहुत हो जाने से सीरा अत्यधिक मात्रा में बच रहा है और प्रत्येक कल वाले को यह चिन्ता सता रही है कि इस बचे हुए सीरे का क्या किया जावे ? सीरे के तालाबों के तालाब भरे हुए कलों के पास जमा पड़े हैं। वैज्ञानिक लोग अब सीरे से तेज़ाब बनाने की धुन में हैं। यदि शराब, स्पिरिट, सिरका और तेज़ाब भारतीय सीरे से बनने लगें, तो बहुत सा सीरा जो अब यूँ ही वृथा जा रहा है, काम में आजावे और चीनी के व्यवसाय के साथ सीरे का भी यह उपव्यवसाय भारत की आर्थिक दशा को उन्नत करने में सहायक हो।

साफ की हुई चीनी से मिसरी, बूरा और बताशे आदि बनते हैं। तरह तरह की मिठाइयों, मिष्टान्नों, मुरब्बों, पाकों, शरबतों तथा अन्य पेय पदार्थों में इस चीनी का उपयोग होता है। गन्ने जैसे मधुर रस भरे दण्डाकार क्षुप को पैदा करके परमात्मा ने मनुष्यों का कितना उपकार किया है, यह बात मनुष्यों से छिपी नहीं।

गन्ने के अतिरिक्त चुकन्दर आदि अन्य मीठे फलों की भी चीनी तय्यार होती है, पर उस में इतनी मिठास नहीं होती। नाही वह इतनी अधिक मात्रा में बन सकती है, और न वह इतनी सस्ती पड़ती है। चुकन्दर की खाँड लगभग ८ पौंड प्रति टन पड़ती है, पर गन्ने की खाँड ६ पौंड में प्रति टन ही तैयार हो जाती है। भारत में मजदूरी सस्ती होने के कारण नीति इससे भी अधिक सस्ती पड़ सकती है परन्तु यहां के ईख से उतना रस नहीं निकलता जितना दूसरे देशों के ईख में होता है। उनमें विशेष खाद डाला जाता है।

चीनी नैत्यिक प्रयोग की वस्तु है जिसे अमीर गरीब सभी बरतते हैं। अतः इस की खपत भी बहुत होती है। यदि व्यवहारिक ढंग पर चीनी का व्यवसाय किया जावे तो बहुत लाभ का काम है। इस से कई करोड़ रुपया जो चीनी खरीदने के लिए विदेशों में भेजा जाता है, भारत में ही रहेगा। अब कुछ समय से सरकार ने चीनी के व्यवसाय को कुछ सुविधा और सहायता दी है। इससे यहां चीनी के कई एक कारखाने खुल गये हैं और कई खुल रहे हैं। आशा की जाती है कि सरकार चीनी के व्यवसाय को इसी प्रकार की सुबिधा और सहायता देती रहेगी जैसी आज कल दे रखी है।

चाय

शीर्षकः—साधारण परिचय तथा इतिहास—आकार प्रकार—रोपण-विधि, भूमि, पौधे की रक्षा, खाद, खुदाई, कलमतराशी, निर्माणविधि, तुलाई, कुम्लाही, भुनाई, मलाई, सुखाई, सबज, काली।

प्रयोग विधि—उपयोग—लाभ—हानि।

उपसंहार—चाय का व्यवसाय।

चाय का असली घर चीन देश है। भारत वर्ष में इस का प्रादुर्भाव अंग्रेजों के आगमन के साथ ही हुआ मानना चाहिये। कहावत है कि एक चीनी साधु जंगल में तपस्या कर रहा था। एकाएक उसे भूख ने सताया। उसकी समाधि भङ्ग होगई। हाथ पैर सोने लगे। निर्बलता बढ़ने लगी। नींद और आराम छड़

गये। भूख से पीड़ित हो कर जीवन भी सन्देह में पड़ गया। निदान दु:खी होकर उस ने पास में उगी हुई एक झाड़ी के पत्ते तोड़े और उन्हें खा कर अपनी क्षुधा की निवृत्ति की। कहते हैं कि उन पत्तों से उस में इतना बल आ गया कि वह पूर्ववत् अपनी समाधि में लीन हो गया और कई वर्ष तक उस को फिर भूख की निर्बलता ने न सताया। बस वह झाड़ी चाय की थी और तभी से चाय के अद्भुत गुणों पर मोहित होकर चीनियों ने इस का सेवन प्रारम्भ कर दिया।

इससे प्रकट है कि चाय स्वयंजात एक झाड़ीदार क्षुप है। इस की ऊँचाई २–३ से ६–७ फुट तक होती है। पेड़ की शकल झाड़ी की तरह २–३ से ७–८ फुट तक की परिधि में फैली हुई होती है। चाय के पत्ते २–३ इंच लम्बे, आध इञ्च चौड़े, लम्बोतरी नुकीली शकल के होते हैं। इनका बीज छोटे अखरोट या बड़े आंवले जितना होता है।

चाय का पौधा ३००० फुट की ऊँचाई वाले पहाड़ी स्थानों में उगता है। न यह गरमी सह सकता है और न अत्यन्त शीत। यह समवायु के स्थानों पर पैदा हो सकता है। इस की उपज के लिए पथरीली और ढलानदार भूमि की आवश्यकता है। इसे बहुत पानी की भी आवश्यकता नहीं।

साधारणतया चाय के पेड़ कलम लगा कर लगाए जाते हैं। फाल्गुन, चैत में पुराने पेड़ की एक डाली भूमि में गाड़ देते हैं और उचित पानी और खाद की सहायता से उस की रक्षा करते हैं। बीज से भी पेड़ लगाए जाते हैं पर वे बहुत दिनों में तैयार होते हैं। चाय का पेड़ बहुत देरी में बढ़ता है।

कहीं ५–६ वर्ष के बाद वह इस योग्य होता है कि उस की पत्तियाँ तोड़ी जावें। यदि पूर्ण रूप से रक्षा की जावे तो चाय के पेड़ों की आयु १००–१५० वर्ष तक हो सकती है। पेड़ की रक्षा के लिए चाय के बगीचे वाले ये साधन बरतते हैं—पहले हेमन्त ऋतु में वे पेड़ों की खुदाई करवाते हैं। इस में पेड़ के नीचे की ओर २–३ फ़ुट आस पास की भूमि को खोद कर पुरानी मिट्टी बाहर फैंक देते हैं और खाद वाली नई मिट्टी उस के स्थान पर भर देते हैं। फिर उसे पानी दिया जाता है, या वर्षा जल की प्रतीक्षा की जाती है। पानी के बाद खाद देकर उस की कलम-तराशी की जाती है। उस में पुरानी टहनियाँ औ पत्ते कैंची से काट दिए जाते हैं और पेड़ को रुण्ड मुण्ड कर दिया जाता है। इन्हीं कटी हुई टहनियों के स्थान पर कई टहनियाँ फूट निकलती हैं जिन में नई पत्तियाँ लगती हैं। ऊपर की कोंपल में तीन पत्तियाँ होती हैं इसे 'गस्सल' कहते हैं। यही ऊपर की तीन पत्तियाँ तोड़ी जाती हैं और इन्हीं से चाय तैयार होती है। ये पत्तियां वैशाख से प्रायः आश्विन तक निकलती रहती हैं। वैशाख की चाय सर्वोत्तम गिनी जाती है; श्रावन की भी अच्छी होती है।

वैशाख के प्रारम्भ में ये पत्तियां टूट जाती हैं और तभी से

ही चाय की तुड़ाई का काम शुरू हो जाता है। सैकड़ों स्त्री, पुरुष, बच्चे चाय के खेतों में पत्तियाँ तोड़ने को जुट जाते हैं। तोड़ी हुई पत्तियों को २४ घण्टे तक भूमि पर बिछा कर पड़ा रहने दिया जाता है जिस से वे कुम्हला आवें। इन कुम्हलाई हुई पत्तियों को भट्टी में भून कर, गीली गीली को ही हाथों से या मशीन में मसल दिया जाता है। इसे 'मलाई' करना कहते हैं। मलाई के

बाद पत्तियों को फिर से आग पर सुखा कर (यदि आवश्यकता हो तो दूसरी बार भी मलाई की जाती है) चाय तैयार करते हैं। यह सब्ज चाय बनाने की विधि है। काली चाय को बनाने के लिए कुम्हलाई के समय पत्तियों को एक सफेद चादर से ढांप देते हैं। इस से उन का रङ्ग कालिमा लिए हो जाता है। बाद में भुनाई, मलाई और सुखाई के समय भी उस का वर्ण परिवर्तन करने में विशेष साधन प्रयुक्त किए जाते हैं।

जिन के बग़ीचों में थोड़े पेड़ होते हैं वे तो ये सब काम हाथों से ही कर लेते हैं। परन्तु बड़े २ बागीचों के मालिकों ने चाय बनाने के लिए मशीनें रखी हुई हैं जो पानी भाप या तेल के बल से चलती हैं। इस प्रकार बनी हुई चाय को उबलते हुए गरम जल में डाल कर ४-५ मिनट तक ढांप देते हैं। बाद में उसे छान कर दूध और चीनी मिला कर पीते हैं। यह थकावट को दूर करती है, मन में एकाग्रता लाती है। सुस्ती और आलस्य को दूर कर के शरीर में चुस्ती और फुरती पैदा करती है। इस में से एक विशेष प्रकार की सुगन्धि होती है जो पीने वालों के मन को बहुत हर्षित करती है।

वास्तव में चाय एक नशीली वस्तु है। इस में टैनी नामक एक विष होता है जो मनुष्य-देह को अत्यन्त हानिकारक है। इस प्रकार भूनने, मलने और सुखाने से विष का बहुत सा भाग नष्ट कर दिया जाता है। जो शेष रह जाता है वह दूध और खाँड के योग से और भी हलका हो जाता है। यदि पेड़ से तोड़ी हुई ताजी पत्ती को उबाल कर बिना दूध, खाँड या नमक के साथ पिया जाए तो इस में विषैला पदार्थ बहुत रह जाता है। बिना दूध

के चाय पीने से सिर में चक्कर आते हैं, सिरदर्द, दिलधड़कन और रक्त-विकार आदि कई रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

चाय बहुत गरम पदार्थ है। इसे शीत काल में या पहाड़ों पर ही पीना चाहिए। अन्यथा यह बहुत हानि करती है। कई बार मूर्छा आने लगती है और मनुष्य पागल भी हो जाता है। विद्वानों का मत है कि हृदय की गति बन्द हो जाने में चाय का अधिक प्रयोग भी एक कारण है। इस लिए चाय को सदा थोड़े परिमाण में और देश काल के अनुसार पीना चाहिए। देश काल और परिमाण में पी हुई चाय शरीर में बल और दिमाग में हलकापन पैदा करती है। दिमागी थकावट को हटाती है और मन को एकाग्र करती है। चाय पी कर मनुष्य में काम करने की शक्ति बढ़ती है और उस का जी काम करने में बहुत लगता है।

भारतवर्ष में आसाम, दार्जिलिङ्ग, लङ्का और काँगड़ा में चाय की उपज की जाती है। आसाम और लङ्का वाले सब काम मशीनों से लेते हैं और उन्हें लगभग एक आना प्रति पौंड चाय पड़ती है। मगर कांगड़े के लोग अभी तक खुदाई, खाद डलवाई, कलम-तराशी, और तुड़ाई आदि का सब काम हाथों से लेते हैं। यद्यपि यहां पर मजदूरी बहुत सस्ती है, तथापि मशीन का मुकाबिला हाथ कभी नहीं कर सकते। इन लोगों को ६-७ आने प्रति पौंड चाय घर पड़ती है। इसी कारण ये लोग व्यापारिक स्पर्धा में सदा पीछे रहते हैं और इनका यह व्यवसाय प्रति दिन मन्द पड़ रहा है। पांच वर्ष हुए एक चाय के मालिक ने इसी घाटे के कारण अपने कई लाख पेड़ बेच दिए थे। काँगड़ा के

चाय वाले प्राय: सब्ज़ चाय तैयार करते हैं जिस की खपत काश्मीर, काबुल और पठानी इलाकों में होती है। यह काली चाय से बहुत सस्ती बिकती है। यदि ये लोग अधिक शिक्षित और "चाय विद्या विशारद" लोगों के हाथों में 'चाय निर्माण' का कार्य दें तो उन की चाय भी गुण में अच्छी हो कर मण्डियों में अधिक कीमत पाए। पर ये लोग तो सस्ते कुलियों से ही काम लेते हैं जिस से इन की चाय हल्के दरजे की बनती है और सस्ती बिकती है। इस से यह व्यवसाय मन्द हो रहा है। परमात्मा इन्हें सुबुद्धि दे और हमारे पञ्जाब की चाय भी एक लाभप्रद व्यवसाय बने।

गङ्गा नदी

शीर्षक—साधारण:—उद्गम—प्रसार तथा दहाना—सहायक नदियां-
पौराणिक उत्पत्ति।
उपयोग—लाभ-जल, तीर्थ स्थान, नहरें, सिंचाई-रोड़, व्यापारिक
लाभ।
उपसंहार—गंगा की महिमा-पवित्रता और भारतीय सभ्यता
का केन्द्र।

गङ्गा हिमालय पर्वत के गंगोत्री नाम स्थान से निकलती है वहां पर इस की धारा बहुत छोटी सी है। गंगोत्री गढ़वाल में है और सदा बरफ से ढकी रहती है। बरफ का शुद्ध जल ही प्रारम्भिक अवस्था में गंगा की धारा का सर्वस्व है। वहां से यह देवप्रयाग होती हुई और मंदाकिनी और अलकनन्दा नामक दो पहाड़ी नदियों को अपने साथ मिलाती हुई हरिद्वार के पथरीले मैदान में

पहुंचती है, जहां पर इस का पाट चौड़ा और प्रवाह मन्द पड़ गया है। हरिद्वार से यह गढ़मुक्तेश्वर, कानपुर, प्रयाग और बनारस होती हुई लगभग १५५० मील बह कर बंगाल में कलकत्ते के पास दो धाराओं में विभक्त हो कर बंगाल की खाड़ी में जा गिरती है।

यमुना, गोमती, घाघरा और गण्डक आदि इस की प्रसिद्ध सहायक नदियाँ हैं। यमुना प्रयाग के पास गङ्गा से मिलती है। इनके इस सङ्गम स्थल को बहुत पवित्र माना जाता है।

पुराणों के अनुसार गङ्गा पहले स्वर्ग में थी। सगर के साठ हज़ार मृत पुत्रों के लिये महाराज भगीरथ घोर तपस्या के बाद इसे पृथ्वी पर लाये थे। इसी से इसे भगीरथी भी कहते हैं। गंगा के तीव्र प्रवाह को पहले महादेव ने (जो कैलासवासी हैं) अपनी जटाओं में थाम, फिर धीरे २ पृथ्वी पर छोड़ा। पृथ्वी पर इसे जन्हु ऋषि ने पी लिया, पर भगीरथ के अनुनय विनय करने पर अपनी जानु से निकाल दिया। इसी से इसे जान्हवी भी कहते हैं।

सम्भव है इस गाथा का सम्बन्ध किसी ऐतिहासिक घटना से हो। भगीरथ जैसे महाप्रतापी राजा ने हिमालय से लेकर कलकत्ता तक गंगा का मार्ग खुदवाने का (स्वेज़ नहर आदि की भान्ति) घोर परिश्रम और महान् आयोजना की हो।

गंगा का जल अत्यन्त स्वच्छ, निर्मल और स्वादु होता है। यह चिर काल तक भी सड़ता नहीं। इस में कई बीमारियों के कृमियों को हनन करने की शक्ति है। हिन्दु लोग गङ्गा जल से स्नान और आचमन करके अपने आप को पवित्र समझते हैं। हिन्दुओं

की धारणा है कि गंगा में स्नान करने से जन्म जन्मान्तर के पाप धोये जाते हैं । हिन्दुओं का शायद ही कोई कृत्य ऐसा होगा जिस में गंगा जल का उपयोग न होता हो। मरते समय भी मुंह में गंगा जल देते हैं और मृतक की अस्थियां भी गङ्गा में बहा दी जाती हैं। सैंकड़ों मीलों से मृतकों की अस्थियां गंगा में प्रवाहनार्थ प्रतिदिन लाई जाती हैं। हिन्दुओं के बड़े २ तीर्थ प्रायः सभी गंगातट पर हैं जिन पर स्नानार्थ प्रतिवर्ष मेले लगते हैं और लाखों की संख्या में यात्री स्नान द्वारा पुण्य-लाभ करते हैं। इन तीर्थों में हरिद्वार प्रयाग और काशी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

गंगा से कई नहरें निकाली गई हैं जिन से खेतों की सिंचाई का काम लिया जाता है। हरिद्वार के पास गंगा की एक बहुत बड़ी नहर काटी गई है, जिस से आगे चल कर और कई छोटी २ नहरें बनाई गई हैं। हिमालय की पवित्र मिट्टी को अपने जल में बहाकर यह खेतों की उपजाऊ शक्ति को खूब बढ़ा देती है जिस से गङ्गा की तलहटी सदा हरी-भरी रहती है।

गंगा के दोनों ओर घने जंगल हैं। इनका दृश्य अति मनोहर है। पहाड़ी प्रान्तों में चील, कैल, और देवदार के वृक्षों की इमारती लकड़ी गंगा प्रवाह के द्वारा ही मैदानी इलाके में पहुंचाई जाती है और वहां से रेलद्वारा देश-देशान्तरों में भेजी जाती है। पहली भादों अर्थात् १५ अगस्त के बाद लकड़ी प्रवाहित करने का काम जारी हो जाता है।

कलकत्ते के आस पास गंगा में जहाज़रानी भी होती है और स्टीम-बोट तो और भी बहुत दूर तक इस में चलती हैं। निदान नैतिक और आर्थिक दृष्टि से भी गंगा अत्यन्त उपयोगी नदी

नदी है जिससे भारत वर्ष को बहुत लाभ पहुँचता है।

हिन्दू शास्त्रों में गंगा की बहुत महिमा वर्णन की गई है। कई 'गंगा-माहात्म्य' प्रसिद्ध हैं जिनमें गंगा मैया की स्तुति और अर्चा का वर्णन है। गंगा का जल, वायु और दृश्य सभी रमणीय और स्वास्थ्य-वर्धक हैं। बड़े २ योगी महात्मा इसके जंगलों में तपस्या करते हैं। अनेकों यात्री धर्म-लालसा से इन स्वास्थ्य-वर्धक स्थानों की यात्रा करके जन्म सफल करते हैं।

गंगा की तलहटी बहुत प्राचीन काल से आर्य हिन्दू सभ्यता का केन्द्र रही है। राम कृष्ण, भगवान् बुद्ध, व्यास, तुलसी-दास आदि अनेक महात्मा इसी भूमि के सपूत थे। पुराणों की रचना भी इसी भूमि में हुई है। भारत वर्ष के प्रायः सभी बड़े साम्राज्य—शिशुनागवंशी अजातशत्रु का राजगृह का राज्य, मौर्य साम्राज्य, गुप्त साम्राज्य, हर्ष-साम्राज्य, तथा पाल-साम्राज्य आदि इसी पवित्र भूमि पर स्थापित हुए थे।

वास्तव में गङ्गा की तलहटी अत्यन्त सुरक्षित प्रदेश है। ऊपर हिमालय और नीचे विन्ध्याचल इस की रक्षा किये हुए हैं। दोनों पहाड़ों से असंख्य नदियां इस भूमि को सींचती और उपजाऊ बनाती हैं। जल वायु न अत्यन्त उष्ण है और न अत्यन्त शीतल। इस से मानवीय जीवन के निर्वाह के लिये अधिक श्रम नहीं करना पड़ता। थोड़े से श्रम से ही भूमि से पर्याप्त अनाज निकल आता है।

जल-वायु की समता के कारण यहां पर बहुत वस्त्रादि की आवश्यकता नहीं होती। अतः विचार शक्ति के विकास के लिये उन्हें पर्याप्त समय मिल जाता है। अतएव

गंगा की तलहटी ने सैंकड़ों महात्मा, महापुरुष, महाकवि, महावीर और महाराज उत्पन्न किये। फिर क्यों न आर्य हिन्दू ऐसी पवित्र भूमि की प्रतिष्ठा करें जिस के कारण उनका इतिहास और पूर्व पुरखाओं का नाम संसार में प्रकाशमान है ? ऐसी भूमि के रज को यदि माथे पर न लगाएं और जल वायु को मुक्ति दाता न समझें तो और क्या समझना चाहिये ?

लाहौर (हिन्दी रत्न १९३०)

शीर्षक:—साधारण परिचय—स्थिति, इतिहास, आकार, विस्तार, जलवायु, जन-संख्या।

द्रष्टव्यस्थान—बाजार, पुरानी इमारतें, नई इमारत, सरकारी, सार्वजनिक।

उपसंहार—विशेष महत्व, विद्याकेन्द्र, व्यापार, सामाजिक।

लाहौर रावी नदी के बायें तट पर स्थित है और पञ्जाब की राजधानी है। यह बहुत प्राचीन नगर है और अपनी स्थिति की उपयोगिता के कारण राजपूतों मुसलमानों, सिक्खों और अंग्रेजों की निरन्तर राजधानी होता आया है। कहा जाता है कि इसे अयोध्या के महाराज श्री रामचन्द्र के पुत्र लव ने बसाया था। इसी से इस का नाम लवपुर है जो बिगड़ कर लाहौर बन गया है। ऐतिहासिक साक्षी के अनुसार भी यह शहर ग्यारवीं बारहवीं शताब्दी से विद्यमान चला आता है।

यह बहुत विस्तृत पर तंग शहर है। इसका घेरा

१६-१७ मील का है। पुराना शहर ८-९ मील के घेरे में था, पर अब बहुत सी आबादी हो जाने से यह प्रति दिन बढ़ रहा है। पुराने शहर के चारों ओर एक बड़ी पक्की और ऊँची दीवार थी जो शहर की रक्षा के लिए मुसलमान बादशाहों के समय में निर्माण की गई थी। (अब १९०६ में उसे गिरा दिया गया है।) शहर से बाहर निकलने के लिए ९-१० बृहद् द्वार हैं जिन्हें 'दरवाज़े' कहते हैं। ये आज कल भी विद्यमान् हैं। इन में शाहआलमी, लोहारी मोरी, भाटी, टकसाली, मस्ती, शेरांवाला, अकबरी, देहली और मोची दरवाज़े अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

लाहौर का जलवायु तो अच्छा है, पर बहुत आबादी के कारण लाहौर का निवास अब स्वास्थ्य के लिए कोई बहुत उपयोगी नहीं है। वैसे भी अमृतसर की अपेक्षा यहां का जल अधिक दूषित है। तंग और गन्दी गलियों, ऊँचे २ चौमंजिले और पंज मंजीले मकानों, बड़े २ कारखानों, मशीनों और कलों और अत्यधिक मोटरों के कारण यहां की वायु भी स्वास्थ्य के लिए उपयोगी नहीं रही। यहां सरदियों में बहुत ठंड और गरमियों में बहुत गर्मी पड़ती है। साधारणतः कार्त्तिक (अकतूबर) से वैशाख (अप्रेल) तक यहां मौसम अच्छा रहता है और इन्हीं दिनों में यहां का निवास स्वास्थ्य की हानि नहीं करता। लाहौर की गर्मी और बरसात तो अत्यन्त हानिकर है।

जनसंख्या और विस्तार के आधार पर लाहौर पञ्जाब भर में सब से बड़ा शहर है। अब पिछले दस वर्षों में इस ने इतनी उन्नति की है कि अब देहली आदि से भी टक्कर लगाने लगा

है। सारे भारत में अब यह पांचवें—छठे स्थान पर है। पहले इसकी जनसंख्या दो अढ़ाई लाख के लगभग थी; पर पिछली जन संख्या में इस की कुल आबादी पौते चार लाख की घोषित की गई है। इस शहर में मुसलमान, हिन्दू सिक्ख, ईसाई, पारसी आदि सभी जातियों के लोग बसते हैं। संख्या के अनुसार मुसलमान सब से अधिक हैं और पारसी सब से कम।

लाहौर के दरवाज़ों के भीतर सूतरमंडी, गुमटी बजाज़ोंवाली, डब्बी, बज़ाज हट्टा, मच्छी हट्टा, सैहद मिट्ठा हीरामण्डी, लुहारी मण्डी, पापड़ मण्डी, लंगेमण्डी आदि बड़े प्रसिद्ध बाज़ार हैं। अनारकली पुराने शहर के बाहर लुहारी दरवाजे से प्रारम्भ होता है और लगभग दो मील लम्बा है। यह बाज़ार चौड़ा भी खूब है और व्यापार तथा रौनक़ की दृष्टि से सब से बढ़ कर है। दरवाज़ों का भीतरी भाग पुराना शहर कहलाता है यहां बाज़ार बहुत तंग और प्रायः गन्दे हैं।

पुराने कई साम्राज्यों की राजधानी होने के कारण लाहौर में पुराने राजाओं के समय के कई द्रष्टव्य स्थान और इमारतें हैं। इन में पुराना क़िला, बादशाही मसजिद, सुनहरी मसजिद, महाराजा रणजीतसिंह की समाधि, बारादरी, बावली साहब, शालामार बाग़ पुराना तथा नया, तथा जहांगीर का मक़बरा और अनारकली की क़ब्र तथा चौबुर्जी आदि अत्यन्त प्रसिद्ध और द्रष्टव्य स्थान हैं। पुराने समयों की कारीगरी और ऐतिहासिक गौरव के कारण ये स्थान विशेष आदरणीय हैं।

आजकल की सरकारी इमारतों में अजायबघर, युनिवर्सिटी हाल, गवर्मेन्ट कालेज, हाई कोर्ट, गवर्न्मेंट हाउस (जहां गवर्नर साहब

बहादूर रहते हैं) टाउन हाल, कौन्सिल चैम्बर, पोस्ट आफ़िस, मेयो हास्पिटल, इम्पीरियल बैंक और महारानी विक्टोरिया का प्रतिमा-भवन आदि विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। अन्य गैर सरकारी इमारतों में मूलचन्द का मन्दीर, बंसीधर का मन्दिर, समाज मन्दिर, सनातनधर्म सभा मन्दिर, देवसमाज मन्दिर, गवर्नमेन्ट कालेज, डी.ए.वी. कालेज, मिशन कालेज, दयालसिंह कालेज, इस्लामिया कालेज, सनातन धर्म कालेज, कई सिनिमा भवन तथा नाट्य शालाएं (थियेटरस), सर गंगाराम की समाधी आदि विशेष द्रष्टव्य और यात्रियों के विशेष कुतूहल क स्थान हैं। लाहौर का चिड़ियाघर, लारैंस गार्डन, गोल बाग और रावी के दृश्य भी प्रसिद्ध स्थान हैं। सड़कों में मालरोड अत्यन्त सुन्दर खुली और व्यापारिक दृष्टि से बहुत प्रसिद्ध है।

सारांश यह कि लाहौर एक अत्यन्त सुन्दर, रम्य और महत्त्वपूर्ण शहर है जिस में कई बड़ी बड़ी इमारतें, सड़कें, बाग, कालेज, स्कूल और व्यापारिक मंडियां हैं। पंजाब भर में यह विद्या का केन्द्र समझा जाता है। यहीं पर पंजाब की युनिवर्सिटी है जहां हजारों छात्र परीक्षा देते हैं। इसके अतिरिक्त कई दर्जनों स्कूल, कालेज और पाठशालाएँ हैं। जहां अमृतसर एक व्यापारिक नगर और दुकानदारों का शहर गिना जाता है, वहां लाहौर शिक्षा का प्रधान केन्द्र और बाबुओं का शहर माना जाता है। व्यापारिक दृष्टि से यह शहर कोई बढ़ कर नहीं है। सूती मशीनों के दो एक कारखानें हैं। 'लोहा' और 'टीन' का काम यहां अधिक होता है। कागज़ पत्र और लिखने पढ़ने की सामग्री (स्टेशनरी) यहां से बाहर को जाती है।

यहां से कई दर्जन अखबारें निकलती हैं। हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, गुरमुखी, आदि सभी भाषाओं के कई दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र यहां से छपते हैं। सामाजिक संस्थाएं भी यहां पर सब से अधिक हैं जो समाज सुधार के काम में तत्पर हैं। इन में आर्यसमाज, सनातनधर्म सभा, ब्रह्म समाज आदि विशेष महत्त्व रखती हैं। इन के अतिरिक्त और छोटी मोटी सैंकड़ों सभाएँ, सोसाइटियां और बरादरियां हैं जो अपने २ उद्देश्य और कार्यक्षेत्र में काम कर रही हैं। यहाँ विधवा आश्रम, अपाहज आश्रम, अनाथालय, धर्मशालाए, और सदाव्रत लंगर और अन्य सार्वजनीन संस्थाएं भी हैं जो लोगों की धार्मिक-प्रवृत्ति और सामाजिक सुधार-प्रेम को प्रकट करती हैं।

शिमला

शीर्षकः—साधारण परिचय—स्थिति—आकार, विस्तार—आसपास के गांव और सड़कें।

दर्शनीय स्थान—प्राकृत दृश्य—भवन इमारत, इत्यादि

उपसंहार—विशेष महत्त्व, आर्थिक स्थिति, व्यापार

शिमले के यात्रियों को अम्बाला से कालका की ओर जाना पड़ता है। कालका से 'कालका शिमला रेल्वे' की छोटी गाड़ियों में बैठकर १०-११ सुरङ्ग द्वारा लांघकर लगभग ६० मील का सफर करके शिमला के दर्शन होते हैं। यह हिमालय पर नया बसाया हुआ नगर है जिस का बीजपात, और संवर्धन आदि सब कुछ अंग्रेजों के द्वारा हुआ है। कहते हैं कि भारत वर्ष में आने के बाद

अंग्रेजों को अपने देश की भान्ति एक ठण्डे और पहाड़ी स्थान की आवश्यकता प्रतीत हुई। तब इन्हों ने हिमालय के शिखर पर इस स्थान को चुना और यहां पर रेल—तार—डाक, पानी के नल और बिजली आदि आधुनिक वैज्ञानिक सभी सुविधाएं प्रचुर धन व्यय करके संपादित कीं। धीरे २ यह सभी पहाड़ी राजाओं के व्यापार का मुख्य केन्द्र बन गया और अब तो यह दिन प्रतिदिन इतना बढ़ रहा है कि इस के गली कूचे और बाज़ार मैदानी शहरों की भान्ति तंग और गन्दे होगये हैं।

शिमला लाहौर से पूर्वोत्तर की ओर समुद्र तल से ७००० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। इसके कई स्थान आठ और दस हजार फुट तक की ऊँचाई पर भी हैं। रेल्वे स्टेशन छः या साढ़े छः हजार फुट की ऊँचाई पर है। यह चारों ओर से देवदार, चील, कैल और अन्य वन्य वृक्षों के घने जंगलों पहाड़ियों, घाटियों और पर्वत शिखरों से घिरा हुआ है। समतल भूमि यहां पर नहीं है। सारी की सारी बस्ती ढलानों और उपत्यकाओं और अधित्य-काओं पर बसी हुई है। पहाड़ी स्थानों की भान्ति थोड़ी २ दूरी पर छोटी छोटी बस्तियां बसी हैं। यदि आस पास की सारी बस्तियों को मिला लिया जावे तो शिमले का घेरा २० मील के लगभग का हो जाता है।

शिमले के दो भाग हैं। एक को शिमला या बड़ा शिमला और दूसरे छोटा शिमला कहते हैं। बड़े शिमले में भारत सरकार के दफ़तर और वाइसराय साहब की कोठी है और छोटे शिमले में पंजाब गवर्नमेंट के दफतर और पञ्जाब के गवर्नर साहब का निवास है।

बड़े शिमले से छोटा शिमला पूर्व की ओर डेढ़ मील की दूरी पर है। इसकी ऊँचाई भी कुछ कम है। उत्तर-पूर्व की ओर लगभग तीन मील की दूरी पर संजौली नामक स्थान है जो रियास्ती इलाके में है। यह भी बहुत रमणीक स्थान है। शहर का श्मशान घाट भी यहीं पर है। वहां से ४ मील मशोब्रा नामक स्थान है जो जल वायु की दृष्टि से अत्युत्तम स्थान गिना जाता है। यहां पर 'गेवल्स होटल' बहुत प्रसिद्ध है जिस में प्रायः अंग्रेज लोग रहते हैं। पंजाब हाईकोर्ट के जस्टिस जयलाल साहब की कोठी भी यहीं पर है। वाइसराय साहब भी 'अवकाशोत्सव' मनाने के लिये प्रति रविवार को यहां पधारते हैं। इसके अतिरिक्त यहां एक छोटा सा बाजार है और एक 'आर्यस्कूल' भी है जिसका प्रबन्ध स्थानीय शिमला आर्यसमाज के अधीन है।

शिमले के पश्चिम में बालूगंज और बढ़ांग नामक स्थान हैं।

शिमले की जल वायु अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद है। मैदानों की प्रचण्ड ऊष्मा से व्याकुल लोग गर्मियों में यहां आकर स्वास्थ्य लाभ करते हैं। यहां की शीतल वायु थकावट को क्षण भर में नष्ट कर देती है। शरीर में सञ्जीवनी शक्ति का संचार मन को प्रफुल्लित करती है। यहां का जल अत्यन्त शीतल और निर्मल होता है। गर्मियों में भी शीतल जल से स्नान करना किसी २ के ही भाग्य में लिखा है। पर पहाड़ी जल होने के कारण पचने में भारी और कुछ काबिज है। यहां रहकर मनुष्य की पाचन-शक्ति बढ़ जाती है। भूख खूब लगती है और मनुष्य का देहभार बढ़ जाता है।

शिमले में मुख्यता तीन बाजार हैं। इन में सब से बड़ा, सब से अधिक प्रसिद्ध और रमणीक 'ऊपर का बाजार' है जिसे माल रोड भी कहते हैं। इस में अंग्रेजी दुकानें बहुत हैं। देसी व्यापारियों की दुकानें भी बहुत सजी हुई, साफ सुथरी और सुन्दर हैं। अंग्रेज ग्राहक प्रायः यहीं पर क्रय-विक्रय करते हैं। दूसरे बाजार को 'निचला बाजार' या 'लोअर बाजार' कहते हैं। इस में प्रायः देसी दुकानें हैं। यह खासा लम्बा पर तंग और गन्दा बाजार है। शहर की बड़ी २ मण्डियां प्रायः इसी बाजार में हैं। इसके नीचे एक और बाजार है जिसका पुराना नाम चोर बाजार है, पर आज कल उसे 'राय बाजार' कहते हैं। इनके अतिरिक्त दो एक और भी छोटे २ बाजार हैं पर वे गलियों में ही हैं। शहर के नीचे एक 'कार्ट रोड' जाती है, जहां पर गाड़ी मोटर आदि चलते हैं। यह प्रायः 'समतल' है।

शिमला प्राकृतिक दृश्यों से भरपूर है। दृश्यों की विभिन्नता और चारुता मन को लुभा लेती है। कहीं पर विशाल वृक्षों के जंगल हैं, कहीं पर ऊँचे पहाड़ों के शिखर हैं। कहीं वनस्पतियों के मखमली फर्श से ढकी हुई ढलानें और घाटियां हैं। रात्रि को जब विद्युत्प्रकाश होता है तो सारा शहर और जंगल ऐसे प्रतीत होते हैं मानों दीवाली की रात है। सुन्दर घने वृक्षों में भी बिजली के लेम्प चमकते हुए तारों की शोभा देते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सारे का सारा पहाड़ दिव्य वनस्पतियों या रत्नप्रभा से जाज्वल्यमान होता हुआ जगमगा रहा है। इस अवर्णनीय शोभा का अनुभव वही कर सकते हैं जिन्हों ने इसे प्रत्यक्ष किया हो।

शिमले के दर्शनीय स्थानों में 'तारादेवी', 'समर हिल',

'प्रास्पैक्टस हिल', 'फ्राग्वूटिल्ला', 'एनण्डेल (जहां पर खेलने का एक बड़ा विशाल और विस्तृत मैदान है और फलों का एक बृहद् उद्यान है)', जतोध, बढ़ोध आदि स्थान विशेष उल्लेखनीय हैं। वाईसराय साहब की कोठी, फ्लैटी और सैसिल होटल की इमारतें, म्युनसिपल कमेटी का दफ़्तर, बड़ा गिरजाघर, एक दो सीनियर भवन, नाचघर और सेठ पूर्णचन्द की सद्यः निर्मित धर्मशाला, भारत सरकार के दफ़तर असैम्बली का भवन गोर्डनकैसर' आदि अन्य स्थान भी द्रष्टव्य हैं। यहां पर दो आर्यसमाज मन्दिर है; एक सनातनधर्म सभा मन्दिर और एक काली का मन्दिर है, मुसलमानों की जामामस्जिद और सिंहसभा का गुरु द्वारा भी दर्शनीय हैं। यहां चार पांच स्कूल और एक दो पाठशालाएं भी हैं।

प्रायः यहां पर 'सूद' लोग बहुत रहते हैं जो कांगड़ा और होश्यारपुर से आकर यहां बसे हैं। ये व्यापारी लोग हैं और अपने व्यापार के बल से इन्होंने बहुत धन कमाया है और शिमले में बहुत जायदाद पैदा की है। वहां पर ये लोग प्रतिष्ठित और प्रभावशाली माने जाते हैं। इस के अतिरिक्त गर्मियों में यहां अच्छी रौनक होजाती हैं। भारत सरकार और पंजाब सरकार के दफ़तर गर्मियों में यहां आजाते हैं। इस लिये गर्मियों में यहां सरकारी कर्मचारियों की भीड़ हो जाती है। इस के अतिरिक्त हजारों यात्री भी गर्मियों में शिमले की शोभा बढ़ाते हैं। पर सर्दियों में यह स्थान बहुत उजड़ा हुआ सा प्रतीत होता है। स्थानीय निवासियों के अतिरिक्त और कोई नहीं दीखता। बेचारी मालरोड का तो सौभाग्य ही छिन जाता है।

शिमला भारत सरकार की ग्रीष्म राजधानी होने से विशेष महत्त्व रखता है। देश देशान्तरों के लोग यहां आते हैं। असेम्बली और कौन्सिल की बैठकें भी यहीं पर होती हैं। बड़े २ सरकारी अफ़सर यहीं विराजमान होते हैं।

शहर की सफ़ाई और स्वास्थ्य के लिये म्युनसिपल कमेटी की ओर से कोई भी मनुष्य लकड़ी नहीं जला सकता। खाने पकाने का काम कोयलों और बिजली से लिया जाता है। प्रकाश के लिये भी सब को बिजली जलाने की आज्ञा है। सड़कों पर टांगा, गाड़ी, मोटर आदि चलाने की आज्ञा भी नहीं है। केवल वाईसराय साहब की मोटर कभी २ चलती है।

व्यापार और आर्थिक दृष्टि से यह शहर बड़ा समृद्ध और संपत्तिशाली है। आप पास की सैंकड़ों छोटी २ रियास्तों के व्यापार और आवागमन का यही प्रधान केन्द्र है। यहां की अपनी उपज तो कुछ भी नहीं। हां, यहां आलुओं की बड़ी मण्डी है। आलुओं की कृषि का व्यवसाय यहां ज़ोरों पर है। एक दिन में कई २ लाख रुपए के आलुओं का व्यापार होता है। यहां के आलू कलकत्ता तक की मण्डियों में जाते हैं। प्रतिदिन आलुओं की भरी हुई गाड़ियां बाहर को जाती हैं।

आर्यसमाज और सनातन धम सभा आदि कई संस्थाएँ समाज सुधार के कार्य में संलग्न हैं। लोगों में विद्या और धर्म का प्रचार, कुरीतियों का नाश और सामाजिक संगठन आदि विषय ही यहां के समाज सुधार के मुख्य क्षेत्र हैं।

सारांश यह कि स्वास्थ्य की दृष्टि से, सैर के प्रयोजन से, अथवा व्यापारिक और सामाजिक दृष्टि से शिमला एक अद्भुत स्थान है। इस में ग्राम्य जीवन के सभी लाभों की प्राप्ति के साथ २ नागरिक जीवन को भी सभी सुविधाएं और आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों की पूर्ण उपयोगिता प्राप्त है।

ताजमहल (आगरा)

शीर्षक:—साधारण परिचय—स्थिति—बनने का समय तथा इतिहास, नामकरण।

विशेष वर्णन—दृश्य, बाहरी और भीतरी।

उपसंहार—महत्त्व—भारतीय कलाकौशल की प्रौढ़ता—संसार भर का एक चमत्कार।

जगद्विख्यात ताजमहल आगरे से ३-४ मील की दूरी पर यमुना नदी के तट पर एक खुले मैदान में स्थित है। इसे भारत के मुग़ल-सम्राट् शाहजहां ने अपनी प्यारी पटरानी 'मुमताजमहल बेगम' की स्मृति में बनवाया था। कहते हैं कि एक बार रानी ने बादशाह से पूछा कि 'क्या आप मेरी मृत्यु के बाद भी मेरे नाम को स्मरण रक्खेंगे!' इस पर शाहजहां ने प्रतिज्ञा की कि 'मैं तुम्हारी स्मृति को ऐसा चिर-स्मरणीय बनाऊँगा कि मैं ही क्या सारा संसार तुम्हारा नाम न भूलेगा" इसी प्रतिज्ञा की कि पूर्ति में शाहजहां ने इसे बनवाया और रानी के नाम पर ही इस का नाम 'मुमताजमहल' रक्खा जो बाद में संक्षिप्त कर केवल 'ताज महल' रह गया।

यह वास्तव में एक समाधि मन्दिर या मकबरा है। मुमताज महल की कब्र के ऊपर इस विशाल भवन का निर्माण हुआ है। शाहजहां ने जिस संकल्प और श्रद्धा से इस का निर्माण किया था, वह अक्षरशः पूर्ण हुई है। कहते हैं कि इस का प्रारम्भ सन् १६३१ ई० में किया गया था। यह सैंकड़ों कारीगरों और २०००० दैनिक मज़दूरों के १७ वर्ष के परिश्रम का परिणाम है। इस के निर्माण के लिये मुगल सम्राट् ने देश देशान्तरों के परम-प्रवीण कारीगर प्रचुर धन व्यय करके मंगवाये थे। इस में लाल पत्थर, संगमरमर और चूना आदि शुद्ध और बहुमूल्य वास्तु-सामग्री प्रयुक्त हुई है।

ताजमहल का दृश्य भी अनूठा है। एक ओर सुनीलवर्णा भगवती यमुना गम्भीर शब्द करती हुई बह रही है; दूसरी ओर गगनचुम्बी हरित् वृक्षों का उद्यान है। ताज में पहुंचने से पहले इस उद्यान को फांदना पड़ता है। उद्यान में प्रवेश करते ही शान्ति और एकाग्रता की एक लहर सी समा जाती है। यात्री की थकावट उद्यान की शीतल वायु के सम्पर्क से क्षण में नष्ट हो जाती है, और रास्ते की धूप के स्थान में एकदम उसे ठण्डी छाया मिलती है। ताज के पास पहुंचते ही ऐसा प्रतीत होता है मानो एक विशाल दुर्ग के सामने खड़े हैं, जिस में प्रवेश के लिये एक बृहत् फाटक है और चारों ओर ऊँची और पक्की दीवार खड़ी है। अन्दर जाते ही फाटक में वायु के ठण्डे झोंके यात्री के मन को आह्लादित करते हैं और उस के निर्माण कौशल और कारीगरी पर मोहित होकर बेचारा यात्री वहीं विस्मय-मुग्ध होजाता है। ड्योढ़ी लांघकर यात्री एक अत्यन्त मनोरम उद्यान-

स्थलों में पहुँचता है, जहां घास का हरा फ़रश पैरों में गुदगुदी किये बिना नहीं रहता। सरू के वृक्षों की सुन्दरता और फूलदार पेड़ों की सजावट अपनी विचित्रता को आप प्रकट करती है। थोड़ी दूरी पर लगभग १८६ वर्ग फुट का एक विशाल चबूतरा संगमरमर का बना हुआ है। इसके चारों ओर चार बड़े २ मीनार हैं जिन पर चढ़ कर सारे ताज का पूर्ण दृश्य आंखों के सामने आजाता है। चारों बगलों में चार दालान हैं। ये भी संगमरमर के बने हुए हैं। दीवारों पर दस्तकारी और पच्चीकारी के ऐसे अद्भुत दृश्य हैं कि बनाने वालों की कुशलता पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहा जाता। कृत्रिम फूल पत्तियां और बेल ऐसी निपुणता से बनाई गई हैं, उनका स्वाभाविक रंग रूप और छवि ऐसी कुशलता से दिखाई गई है कि द्रष्टा को उनके असली होने का भ्रम हो जाता है।

इसी के मध्य में मुमताज बेगम की कब्र है जिस के पास ही बाद में शाहजाहां की समाधि भी बनाई गई है इसी कब्र पर एक विशाल महल का निर्माण हुआ है जिस पर मुस्लिम वास्तु पद्धति के आधार पर संगमरमर के शिखर और गुम्बज बने हैं। इसी महल की दीवारों के साथ टकराती हुई यमुना के दृश्य ने ताज की शोभा को और भी द्विगुणित कर दिया है। चाँदनी रात में यमुना के निर्मल जल प्रवाह में प्रतिबिम्बित ताज का दृश्य तो लेखातीत शोभा को धारण करता है। सचमुच ताजमहल भारतीय वास्तुकला की असीम उन्नति का प्रख्यापक है। संसार भर में इसकी टक्कर का दूसरा स्थान नहीं। इसकी गणना संसार के सात चमत्कारों में की जाती है। इसकी कारीगरी, निर्माण कुशलता

और कलासौन्दर्य पर आकृष्ट होकर योरुप और अमेरिका के सैंकड़ों कलविद् और कलारसिक प्रतिवर्ष भारत कि यात्रा करते हैं और इसके दर्शन करके भारतीय कारीगरों की सिद्धहस्तता और मुग़ल सम्राटों की कला-प्रियता की अपनी पुस्तकों और अखबारों में मुक्तकण्ठ प्रशंसा करते हैं । कर्नल सिलीमन की धर्मपत्नी ने ताजमहल को देखकर सुदीर्घ निःश्वास के साथ यह कहा था कि "यदि मेरी कब्र पर भी इस प्रकार का सुन्दर मकबरा बने तो मैं कल ही मरने के लिये तैयार हूँ ।" यद्यपि ताज के बहुत से बहुमूल्य पत्थर निकाल लिये गये हैं तथापि इसकी शोभा और सुन्दरता अभी तक भी सँसार के लिये अनुपम आदर्श है । ताज के कारण भारतीय कला कुशलता का सिक्का आज भी संसार मानता है । संसार भर के इञ्जिनीयर आज भी इस पर मुग्ध हैं ।

वसन्त-ऋतु (हिन्दी रत्न, १९२७)

शीर्षक:—साधारण परिचय—समय—कारण—

शोभावर्णन—प्राकृतिक—आकाशादि—वनस्पति-जगत्—पशुजगत्—पवन-पत्ती-आदि

उपसंहार—माननीय हृदय तथा स्वास्थ्य पर प्रभाव ।

भारतवर्ष की छः ऋतुओं में वसन्त ऋतु को सर्वश्रेष्ठ और ऋतुराज कहा जाता है । यह फाल्गुन-चैत्र और कहीं २ चैत्र वैशाख के महीनों में होती है । जब सूर्य्य दक्षिणायन समाप्त करके उत्तरायण की ओर प्रयाण करता है । और जिस समय उसकी किरणें पहिले की अपेक्षा अधिक सीधो पड़ने लगती हैं, उस समय

उत्तरीय अति शीतल और शुष्क पवन बन्द हो जाती है, और उस के स्थान पर दक्षिणी वायु मन्द २ बहने लगती है। इसी सुहावने समय का नाम वसन्त ऋतु है।

इस समय न अधिक सर्दी होती है न अधिक गर्मी। समय बहुत सुहावना और अनुकूल प्रतीत होता है। हेमन्त और शिशिर के दारुण शीत से बचने के लिये पहने हुये गर्म वस्त्र उतार दिये जाते हैं। इस समय की सुहावनी छटा निराली होती है। संसार भर के पदार्थों में एक नई जीवनी शक्ति का सञ्चार हो जाता है। प्रकृति भी अपना चोला बदल लेती है। आकाश स्वच्छ और दिशायें निर्मल हो जाती हैं। वायु हलकी और सुगन्धित हो जाती है। निर्जन और दुर्गम वन और पर्वत अनोखी रमणीयता को धारण करते हैं। जहां तहां वनस्पतियां और झाड़ियां पुष्पित होकर अत्यन्त शोभायमान हो जाती हैं। गुलाब, चमेली आदि इसी समय फूलते हैं।

आम, आड़ू, अमरूद, सङ्गतरा आदि फलदार वृक्ष इसी समय पुष्पित होते हैं। कीकर आदि कुरूप और कांटेदार वृक्ष भी वसन्त के समय अपना चोला बदल लेते हैं और अपने वसन्ती फूलों की छटा और सुगन्ध से सारे समीर मण्डल को सुगन्धित कर देते हैं। खेतों में सरसों के फूल मानों भूमि को वसन्ती चादर ओढ़ा देते हैं। सारांश यह कि सारा संसार वसन्त के भव्य-आगमन से देदीप्यमान और शोभायमान हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति-कामिनी ने फिर से नवयौवन धारण किया है और वह सज धज कर संसार मात्र पर नाटक खेलने लगी है।

पशु जगत् भी वसन्त के आगमन से नये उल्लास को प्रकट करता है। जंगली पशु वनों में स्वच्छन्द फिरने लगते हैं। जहां तहां हरिण उच्छलते और कूदते हुये दिखाई देते हैं। मधु मक्खियां और भौंरे भीनो भीनी भिनभिनाहट से मधुर सङ्गीत गाते हुये पुष्परस और मधु सञ्चय करने में संलग्न दृष्टि-गोचर होते हैं। कोयल कूहू कूहू कूजती हुई सुनाई देती है। पक्षियों का कलरव हृदय में उन्मादकारी सङ्गीत को प्रवाहित कर देता है। नानावर्ण को तितलियों, पतङ्गों और चिड़ियों की चहचहाट से सारा वायु-मंडल गूञ्ज उठता है। ऐसा जान पड़ता है मानों सब में जीवन और उल्लास का स्रोत फूट निकलता है। यही ऋतु पशु पक्षियों और जंगली जानवरों के प्रसव का समय है। मानव हृदय पर भी इस ऋतु का प्रभाव विचित्र होता है। ऐसी सुहावनी परिस्थिति में अपने आपको पाकर मनुष्य एक अनूठे सुख का अनुभव करता है। मनुष्य के शरीर में एक अनिर्वचनीय जीवनी शक्ति दौड़ने लगती है, जिससे वह प्रकृति के रङ्गीले रूप को निहार कर प्रेम की तरल तरङ्गों में बह जाता है। ऋतुराज का शासन मानकर वह भी घर की चार दीवारी से निकल कर बाहर खुले मैदानों, नदी-तटों, पर्वतों और खेतों की सैर करता हुआ उत्सव मनाता है। प्रायः सर्वत्र इसी ऋतु में बहुत से उत्सव होते हैं। जिन में खेल कूद और मल्लयुद्ध (कुश्ती) आदि नाना प्रकार के मनोरञ्जन के साधन उल्लास और नई उमङ्गों को साक्षी देते हैं।

वसन्त ऋतु अपनी अनेक विशेषताओं के कारण भारत में सब ऋतुओं की रानी है। इसके दोनों त्योहार वसन्त पञ्चमी और होली सर्वत्र बड़े समारोह से मनाये जाते हैं। इस ऋतु का मनुष्य

के स्वास्थ्य पर भी बहुत अच्छा प्रभाव होता है। नये रुधिर का सञ्चार माननीय देह को पुष्टि करता है, जिस से कई आधि व्याधियां दूर हो जाती हैं। इस ऋतु में भ्रमण करना और बाहर की खुली हवा में रहना बहुत लाभप्रद है।

एक अग्नि काण्ड की दुर्घना

नोट—इन घटना सम्बन्धी प्रस्तावों में विद्यार्थी को किसी देखी हुई घटना का वर्णन करना चाहिये। यदि किसी अदृष्ट घटना पर प्रस्ताव हो तो भी काल्पनिक वर्णन कर देना चाहिये। यदि कोई विशेष घटना ही हो तो उसका ज्ञान पुस्तकों या अखबारों से प्राप्त करना चाहिये। जैसे यदि प्रस्ताव '१९१९ की गङ्गा की बाढ़' या 'अमुक रेल्वे टक्कर' आदि पर हो तो अखबारों और पुस्तकों से ही लग सकता है। नीचे हम पथ-प्रदर्शिनी के के लिये एक काल्पनिक घटना का वर्णन करते हैं।

शीर्षकः—दुर्घटना काण्ड का स्थान—अग्नि फूटने का कारण—
साधारण वर्णन—लोगों की भीड़—मालिकों का संभ्रम और दौड़-धूप—आग बुझाने के प्रयत्न—बुझाने वालों की दक्षता और बहादुरी।
उपसंहार—हानि का अनुमान और ब्योरा आदि।

एक बार की बात है कि लाहौर के एक तंग मोहल्ले के एक बड़े भारी मकान में आग फूट पड़ी। यह मकान ४ मंजिला था। इसमें लगभग २० कमरे थे। इस मकान को कपड़े के एक स्थानीय व्यापारी ने किराये पर लिया हुआ था। उस ने कपड़े का गोदाम बनाया हुआ था। इसके अन्दर लाखों रुपए का कपड़ा था।

मुसलमानों के त्योहार शबेरात का दिन था। मुसलमान लड़के, और बीच में बड़े २ भी, पटाके, चुकुन्दर और अस्तबाजियां चला रहे थे। लड़के भी इसी सामग्री से खेल रहे थे। कोई बाज़ार में पटाका चला रहा था, कोई पथिकों के पैरों में चुकुन्दर छोड़ रहा था, कोई अनार को आग लगा रहा था, और कोई 'सुरर' को आग लगा कर दूसरे पर फैंक रहा था और कोई झूल—झड़ी या अन्य प्रकार की चुकुन्दर को आग लगाकर ऊपर की ओर छोड़ रहा था।

दुर्भाग्यवश इस मकान की खिड़की खुली थी। इधर एक लड़के ने जो चुकुन्दर छोड़ी वह सीधी छुरर करती हुई खिड़की के अन्दर घुस गई लड़कों ने अपनी खेल में इस पर कोई ध्यान नहीं दिया और वे यथा पूर्व अपने मनोरञ्जन में लगे रहे।

कोई दो घण्टे के बाद—रात के ८ बजे के लगभग—उसी खिड़की से अग्नि की ज्वालाएं दिखाई दीं और क्षण भर में उन्हों ने भयङ्कर रूप धारण कर लिया। मुहल्ले वालों ने मालिक को पता दिया। वह घबड़ाया हुआ वहां दौड़ा आया और टैलीफोन पर से 'फाइर इञ्जन' (अग्नि बुझाने के इञ्जन) को खबर करने गया। पर इतनी देर में आग ने भीषण रूप धारण करके अपनी दहकती हुई जिह्वाओं से सब कुछ भस्म करने को साध ली थी। अब आग मकान के बाहरी भाग में आ चुकी थी। नीचे दर्शकों को भीड़ लगी थी, कोई आग की ओर देख रहा था। कोई अपने पास वालों से आग लगने का कारण पूछ रहा था। कोई " यह किसका मकान है" का प्रश्न कर रहा था। कोई आग बुझाने के उपाय बता रहा

था। कोई कहता था 'अनर्थ होगया' कोई भगवान् का स्मरण करता था। मोहल्ले के सब लोग चिन्तित थे। उन्हें अपने २ मकानों की रक्षा की चिन्ता थी। वे पानी की बाल्टियां भर २ कर अपने मकानों पर छिड़क रहे थे। मालिक बेचारा घबराया हुआ 'फायर इञ्जन' की प्रतीक्षा में था। उसके चेहरे की कान्ति नष्ट हो चुकी थी रंग पीला पड़ गया था। बेचारे का लाखों का सामान क्षण भर में भस्म हुआ चाहता था।

इतने में घंटी बजाता हुआ और "मैं मैं" करता हुआ 'फाइर इञ्जन' आ पहुचा। लोगों की जान में जान आई। सब की आशाएं इन्हीं लोगों पर लग गईं। सभी इन्हीं की ओर देखने लगे। इतने में इञ्जन ठहर गया। उस के अन्दर से एक बड़ा हृष्ट पुष्ट और बलिष्ठ आदमी बाहर निकला। इस के लोहे के काले बूट पहने हुए थे। घुटनों तक का भाग भी लोहे से ढका था। सिर पर पीतल की चमकती हुई अंग्रेजी टोपी थी। हाथ में एक लम्बी पिचकारी थी।

इस के बाहर आते ही १५—२० और बहादुर सिपाही गाड़ी में से निकले। सब का वेष एक ही था।

इन सिपाहियों ने अत्यन्त फुरती से काम किया। किसी ने पानी के नल को उखाड़ा। किसी ने पम्प लगाया। किसी ने पानी की नाली को जोड़ा और झट इञ्जन को चालू करके क्षण भर में पिचकारियां छोड़नी शुरू कर दी।

पिचकारी की धारा बड़ी तीव्र थी। जल इस वेग से ऊपर को जाता था, मानो दुष्ट राक्षसी का संहार करने के लिये वरुणास्त्र चल रहा हो। कल के बल से पानी ४०–५० फुट तक

ऊपर जाता था। कुछ काल तक यह भीषण वर्षा जारी रही। पर ऐसा प्रतीत होता था कि अग्नि की प्रचण्डता और करालता के आगे इस पिचकारी भर पानी की कुछ सामर्थ्य नहीं। अग्नि अपना और भी भीषण रूप धारण करके बढ़ती ही गई, मानों दुश्मन का प्रतिरोध करने के लिये बजाज़ी के थानों की असंख्य सेना उसके पास है।

अन्त में जब आग किसी प्रकार न बुझी तो अपनी असफलता से द्विगुणित उत्साहित होकर 'फाइर ब्रिगेड' वालों ने एक और युक्ति की। एक बहादुर सिपाही अपनी जान को जोखो में डालकर मकान के अन्दर घुस गया। वहां जाकर उसने आग की बढ़ती हुई गति को रोकना चाहा। जहां तक आग पहुंच चुकी थी उसे वहीं रहने दिया। अवशिष्ट भाग का सुरक्षित करने का उसने यत्न किया। कपड़े के थानों को उठा २ कर वह बाहर फैंकता था। पानी फैंक कर उस ने मकान के कमरों में एक तालाब सा बना लिया। इसके पश्चात उस की सहायता के लिये २-४ और सिपाही भी अन्दर गये। और बड़ी बहादुरी और निर्भयता से काम करने लगे। कुछ लोग बाहर से आग के फैलाव को रोकने लगे। इस प्रकार बाहर भीतर से जब एक दम धावा बोला गया, तब वहीं जाकर आग का वेग कम हुआ। बस फिर क्या था; सब के सब अन्दर घुस गये और बात की बात में आग को विध्वंस कर डाला। अब दर्शक भी अन्दर चले गये। कई दर्शक अन्त तक जाकर अग्नि काण्ड के दृश्य को देखकर ही लौटे।

जो मनुष्य सबसे पहले अन्दर गया था उस की बहादुरी और निर्भीकता की सभी प्रशंसा करने लगे। एक दो स्थानों पर घाव

और चोटें आई थीं। परन्तु उनकी परवाह न करके उसने अपने कर्तव्य का पूर्ण रूप से पालन किया।

अब आग बुझ चुकी थी पर धूआँ अभी बन्द न हुआ था। मैदान में गिरे हुए असहाय और अशक्त सिपाही की तरह आग अब जल-मिली राख में सिसक २ कर प्राण त्याग रही थी। आग बुझने के बाद कई घण्टे तक राख और दीवारें गरम रहीं। आग बुझाकर अपना सामान इकट्ठा करके 'फाइर ब्रिगेड' वाले तो इञ्जन को चला कर घण्टी बजाते हुए चले गये। अब दर्शक भी कम हो गये थे। सभी अपने २ अभीष्ट स्थानों को चले गये। मोहल्ले वालों का अशान्ति भी दूर हुई और मालिक के अतिरिक्त हर कोई प्रसन्न नजर आता था और कहता था कि 'परमात्मा ने बड़ी कृपा की है। बहुत बचाव हो गया है।'

ईश्वर की दया से उस मकान में गोदाम ही रखा था। वहां रहता कोई न था। अन्यथा बच्चों और स्त्रियों को बाहर निकालना कठिन हो जाता। इस भीषण अग्निकाण्ड से जान का कोई नुकसान न हुआ। हां, कोई २०-३० हजार के मूल्य का मकान भस्म हो गया और कोई ४ लाख के लगभग का माल जल गया।

यदि वे खिलाड़ी उस समय जरा सी सावधानी करके मालिक को पता दे देते, तो शायद यह भीषण दृश्य देखने में न आता।

———

अभ्यासार्थ कुछ प्रस्तावों के शीर्षक

नीचे हम कुछ वर्णनात्मक प्रस्तावों के शीर्षक और संक्षिप्त भाव देते हैं। इनके आधार पर विद्यार्थी को प्रस्ताव लिखने का अभ्यास करना चाहिये। ये प्रायः पहले दिये प्रस्तावों के अनुसार ही हैं।

कुत्ता

साधारण परिचय—स्तनपायी, चतुष्पद, मांसाहारी पशु है। सर्वत्र सब रंगों का मिलता है। वह ३–४ फुट लम्बा, १–२ फुट ऊंचा। मुंह लम्बोतरा, २० या २२ नख, पाओं पंजेदार, उमर १०–१२ वर्ष। एक वार पांच सात बच्चों का प्रसव। शिकारी, ताजिया, गादा वाइसा आदि कई किस्में। अंग्रेजी कुत्तां ही में ग्रेहाउण्ड, बुलडोग, लैपडाग, सॅंट बर्नार्ड, स्पेनियल डोग आदि कई किस्में हैं।

विशेषताएं—सूँघने की शक्ति अतितीव्र। भूमि सूँघ कर मालिक के पास पहुंच जाता है, चोरों का पता लगाता है, डाकुओं का पीछा करता और छिपी या गुम हुई २ वस्तु को ढूँड लाता है। अत्यन्त बुद्धिमान और स्वामिभक्त है। इसे मनुष्य की बड़ी पहचान रहती है। चोरों और दुष्टों को आकृति से ही पहचान लेता है। स्वामिभक्ति में आदर्श, पर स्वजाति विरोधी है।

लाभ और उपयोग—अत्यन्त स्वामि-भक्त है (कुत्ते की स्वामि-भक्ति की कई कथाओं में से एक कथा लिखो) घर की चोकीदारी करता है। किसानों के खेतों और पशुओं की रक्षा करता है। गडरियों का परम मित्र और सहायक है। पहाड़ी पथिकों का साथी

है। शिकारियों का अनिवार्य मित्र और अमीरों का चौकीदार है। युद्ध में चिट्ठी पत्री भेजने का काम भी इस से लेते हैं। चोरों का खुरा लगाकर पोलीस का सहायक है। हानि—'रीझेगा तो चाटेगा, खीजेगा तो काटेगा' क्रोध में काटता है। इसे जल त्रास या हलक शीघ्र चढ़ता है उस समय अत्यन्त भयङ्कर और हानिकारक हो जाता है। जिस किसी को (गाय, भैंस, कुत्ता, बिल्ली, मनुष्य) यह पागलपन की अवस्था में काटता है, इसे भी हलक चढ़ने का भय रहता है और यदि उचित चिकित्सा न की जावे तो जीवन संशय में पड़ जाता है।

घोड़ा

साधारण परिचय—कद लम्बा और ऊंचा, देखने में सुन्दर उज्ज्वल नेत्र, उन्नत गरदन, गले पर बाल, बालों की दुम, चौड़ी पीठ आदि। उमर लगभग २० वर्ष। एक काल में एक बच्चे का प्रसव। कदम, दुलकी, पोंहिया, सरपट आदि चार गतिया। टट्टू आदि कई प्रकार। अत्यन्त समझदार, मालिक की पहचान, स्वामि-भक्त, स्वामी को सदा विपत्तियों से बचाता है।

लाभ—सवारी के काम आता है। युद्ध में जी तोड़ कर जान लड़ाता है। शिकार में वन, पर्वतों, नदी, नालों की परवाह नहीं करता। बग्घी, टाँगा खीचता है, बोझ ढोता है। क्षत्रियों, वा शिकारियों और सवारों का परम मित्र; टांगे वालों का अन्न दाता।

उपसंहार—भारत में घोड़े का विशेष महत्व, आजकल की अवस्था। घोड़ों का स्थान मोटरों ने ले लिया है।

बाँस

साधारण परिचय—दण्डाकार गोल ३०—४० फुट ऊँचा, ४ से ८—१० इन्च तक मोटा, कई प्रकार ठोस, खोखला, पोरीदार गांठें, वृक्ष झाड़ी की तरह ५—६ दण्डों का एकत्र उद्भव।

उपयोग और लाभ—मकान बनाने, ऊपर चढ़ने, सीढ़ी बनाने, नाना प्रकार के बरतन और टोकरियां, चटाइयां, चिकें, छड़ियां, लाठियां, पंखे, और कई प्रकार के कंडील और पतंगे बनाने के काम आता है। दुर्भिक्ष में इस के बीजों का आटा खाते हैं। इस से वंशलोचन निकलता है जो औषधियों में बरता जाता है। छोटे नालों पर बांस के पुल भी बनते हैं।

हानि—गर्मियों में आंधी से परस्पर टकराकर इस में आगपड़ जाती है जिस से स्वयं भी भस्म हो जाता है और पास के जंगल में भी आग लगा देता है।

उपसंहार—बांसों का व्यवसाय मन्द होने से दुर्गति।

रावी नदी

साधारण परिचय—निवास हिमालय; चम्बे से परे के बरफानी पहाड़ों से चलकर जेहलम नदी के साथ सिन्धु नदी में मिल जाती है।

इस के तट पर बसे हुए शहर—चम्बा, लाहौर सर्व प्रसिद्ध।

नहरें और उनका उपयोग—उपसंहार रावी की प्राचीनता और उपयोग।

पटना

साधारण परिचय तथा इतिहास—पुराना नाम पाटलिपुत्र या कुसुमपुर-पुराने इतिहास में इसका वर्णन, वायु, ब्रह्माण्ड आदि

पुराण, बृहत्संहिता, दशकुमारचरित, मुद्राराक्षस, बृहत्कथा आदि में इसका उल्लेख, शिशुनागवंशी राजाओं की राजधानी, राजगृह, मौर्य और गुप्त साम्राज्य की राजधानी, मैगस्थनीज का वर्णन—९ मील लम्बा १॥ मील चौड़ा। चारों ओर लकड़ी का घेरा ५४ फाटक ५७० मंच, घेरे के चारों ओर ४०० हाथ चौड़ी ३० हाथ गहरी खाई जो सोन के जल से भरी हुई। बाद में हानि—ह्यूनसांग की साक्षी "पाटलिपुत्र उजड़ गया है, केवल १००० घरों की बस्ती है। बौद्धों का प्रधान केन्द्र, बाद में शेरशाह से इसका पुनरुद्धार।

वर्तमान पटना—आजकल यह बिहार प्रान्त की राजधानी है। गङ्गा, गण्डक और सोन नदियों के सङ्गम पर स्थिति के कारण व्यापार का केन्द्र। इसके तीन भाग हैं पटना बांकीपुर और दानापुर पटना वाणिज्य व्यवसाय का केन्द्र। बांकीपुर अंग्रेजी शासन का केन्द्र। दानापुर छावनी का केन्द्र। सरकारी इमारतें प्रायः बांकीपुर और दानापुर के बीच में हैं। दानापुर में शीशा ढालना, चूड़ियां, खिलौने, दस्तकारी के कई पदार्थ बाहर को जाते हैं।

दर्शनीय स्थान—मानुव साहब की चित्रशाला, कुम्हड़ार, आप कुआं, गोलघर, खुदाबख्शखां की लाइब्रेरी आदि। पटने की देवी का मन्दिर हाई कोर्ट, जाफरखां का बाग।

उपसंहार—पटना कई बार बना और बिगड़ा। अपनी स्थिति के कारण और गौरव तथा व्यापार के लिये प्रसिद्ध।

कलकत्ता

साधारण परिचय—स्थिति; भारतवर्ष के पूर्वी प्रान्त बंगाल में गङ्गा के तट पर, काली देवी नाम से 'कालिकाता' और अपभ्रंश से कलकत्ता। अंग्रेज़ों के आगमन से इसका विशेष अभ्युदय। प्रारम्भ में छोटा सा गांव। २०-२२ मील का घेरा; ११ लाख से ऊपर आबादी। भारत सरकार की पहली राजधानी। १९१२ से राजधानी का परिवर्तन। जलवायु, सभी समुद्र तट। दर्शनीय स्थान चिड़ियाघर, राजमहल, सरकारी कचहरियां, जादूघर, अजायब घर, युनिवर्सिटी, टकसाल आदि।

उपसंहार—प्रसिद्धि, व्यापार, कला-कौशल का केन्द्र, शिक्षा का केन्द्र, कलें और कारखाने।

दरबार साहब (अमृतसर)

साधारण परिचय—स्थिति—अमृतसर, घण्टा घर के पास, एक रम्य तालाब के मध्य में, बनवाने का समय, सोने के गुम्बज,—तालाब के बीच के रास्ते, कमरे, बनावट, घाटीगरी, दीपमाला का दृश्य—दूर २ से आकृष्ट यात्रियों का आगमन।

प्रसिद्धि, उपसंहार—सिक्खों का पवित्र स्थान, यात्रियों की भीड़ आदि।

आगरा (हिन्दीरत्न १९३०)

साधारण परिचय—स्थिति—यमुना के तट पर एक रमणीक शहर, बाजार गन्दे और तङ्ग। पुराने ढंग के इक्के चलते हैं।

प्रसिद्धि —संगमरमर के खरल, खिलौने और पत्थर का सामान

यहां पर बड़ा अच्छा बनता है। ताजमहल के लिये विशेष प्रसिद्ध है। लाल किला, इत्मादुदौला का मकबरा, आदि ऐतिहासिक इमारतें।

ग्रीष्म ऋतु

साधारण परिचय—समय वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ के महीनों को ग्रीष्म ऋतु कहते हैं। सब ऋतुओं से अधिक कष्टप्रद, सूर्य की किरणों का सीधा ही पड़ना, इस से दिन बड़ा, रात छोटी।

विशेष वर्णन—ऊष्मा की प्रचण्डता, आँधियां, गरम लू का चलना, पानी का अभाव, फल पकना, फूल निकलना। जगलों में आग लगना, स्नान, अवगाहन से आनन्द, सायंकाल की रमणीयता, दोपहर की घोर आतप और सूर्यकिरणों की प्रखरता, रात्रि को बाहर खुली वायु में शयन आदि, प्लेग शीतला आदि का प्रकोप।

वर्षा ऋतु

समय :—आषाढ़-श्रावण-या श्रावण भाद्रपद महीनों को वर्षा ऋतु कहते हैं।

वर्णन—ग्रीष्म काल की प्रचण्ड ऊष्मा से भाप द्वारा ऊपर चढ़ा हुया समुद्रीय जल इस ऋतु में बरस पड़ता हैं। सूर्य भगवान के दर्शन नहीं होते। आकाश मेघाच्छन्न रहता है। गरमी से छुटकारा मिलता है। नदी नाले जल से भर जाते हैं। बिजली चमकती है। मूसलाधार वृष्टि, पर्वताकार श्यामवर्ण मेघों का गर्जन, बिजली की कड़क, अत्यन्ताह्लादक दृश्य, गरमी से झुलसाये वृक्षों पर सबजी और तरावत। खेती के लिये उपयोगी। आम आदि की बहार। धानों की खेती।

हानि—रास्तों में कीचड़, बड़े २ शहरों के तङ्ग बाज़ारों का बुरा हाल, मकानों का गिरना, साँप आदि का भय, मच्छरों का आधिक्य, हैज़ा, म्लेरिया आदि रोग इस ऋतु में बहुत होते हैं।

उपसंहार—वर्षा ऋतु की उपयोगिता। पानी का वर्ष भर के लिये संग्रह आदि। खेती के लिये अत्यन्त उपयोगी।

एक रेलवे दुर्घटना (रेलों की टक्कर)

दुर्घटना का स्थान तथा समय—कौन २ गाड़ी किधर से आ रही थी। कारण—स्टेशन मास्टर की असावधानी या सिगनैलर की भूल आदि। टक्कर बचाने के लिए दोनों गाड़ियों के ड्राइवरों की कोशिश और उसमें असफलता।

दुर्घटना काण्ड—टक्कर का परिणाम, धक्का, गाड़ी का पटरी से उतर जाना, मुसाफिरों की दुर्गति, माल असबाब से चोटें, जो बच गये उन आहतों की सहायता करना, स्त्री बच्चों की रक्षा, दारुण दृश्य का वर्णन। पता भेजकर सहायता मंगवाना, आहतों को अस्पताल में भिजवाना।

हानि—जान माल की हानि, आहतों की संख्या, और अन्य स्टेशन मास्टर आदि की असावधानी पर कड़ी टिप्पणी।

रेलगाड़ी (हिन्दीरत्न १९३१)

साधारण परिचय—इतिहास-जार्ज स्टीफेन्सन ने भाप के उपकारों का आविष्कार किया। सर जेम्सवाट ने उसमें परिपूर्णता प्राप्त की, भापइञ्जन बने। उनसे रेलगाड़ियाँ खींची जाने लगीं। एक गाड़ी में एक या दो इञ्जन। ८, १० से १०० तक यात्रियों के

डब्बे, जिनकी चार श्रेणियाँ होती हैं। पहला, दूसरा दरम्याना और तीसरा दरजा उनके नाम हैं। एक एक डिब्बे में भिन्न भिन्न संख्या में मुसाफिरों के बैठने का स्थान होता है। यह लोहे की पटरी पर चलती है। माल गाड़ी बहुत धीमी और डाकगाड़ी सब से तेज चलती है। इसकी गति २५,३०,४० मील प्रति घण्टा होती है। ५,७ या अधिक मील की दूरी पर यह ठहरती है, इसे स्टेशन कहते हैं। यहाँ यात्रियों के चढ़ाव उतराव के साथ आवश्यक सूचना, मार्ग शुद्धि का पता तथा इञ्जिन के लिये यथोचित पानी आदि भी ले लिया जाता है।

लाभ—यात्रा शीघ्रता से कटती है. आराम अधिक. कष्ट थोड़ा। सस्ता, बहुत समय की बचत, व्यापार की उन्नति का प्रधान साधन, लम्बे सफरों में जो पहले हानियां उठाना पड़ती थीं, उनसे रक्षा, आपत्ति के समय शीघ्रता से सहायक, बाहरी हमले के समय देश की रक्षक।

हानि—टकरा जावे या पटरी से उतर जावे तो दारुण हानि, सैकड़ों की मृत्यु और हजारों का नुकसान, बीमारियों के फैलाव में सहायक आदि।

विवरणात्मक प्रस्ताव

दशहरा

शीर्षकः—साधारण परिचय—दशहरे की तिथि और इतिहास।

विशेष वर्णन—दशहरा किस प्रकार मनाया जाता है—रामलीला, दुर्गापूजा, रामायणपाठ, झांकी आदि विविध प्रकार से।

लाभ—वीरस्मृति और वीरपूजा—भगवान् के जीवन से उपदेश—पितृभक्ति,, भ्रातृप्रेम, पतिव्रत धर्म—उत्साह, उमंग, प्रसन्नता, बच्चों में बहादुरी के भावों की जागृति, व्यापार-वृद्धि और सामाजिक जीवन का विकास।

उपसंहार—विजयादशमी या 'विक्टरी डे', दशहरे की महत्ता।

विजयादशमी या दशहरा हिन्दुओं का राष्ट्रीय महोत्सव है। यह हिमालय की ऊँची चोटी से लेकर कुमारी अन्तरीप तक सर्वत्र बड़े समारोह से मनाया जाता है। यह आश्विन मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर दशमी तक दस दिन होता है। दशमी के अन्तिम दिन विशेष धूम धाम होती है, कारण कि पूण विजय उसी दिन प्राप्त हुई थी, इसी से इसे विजया दशमी कहते हैं। दशहरा का अर्थ 'दश दिन तक होने वाला उत्सव' या दश—दशमुखधारी रावण का—हरण या हनन।"

पिता की आज्ञा पाकर अयोध्या के महाराजकुमार श्री रामचन्द्र अपने लघु भ्राता लक्ष्मण और प्यारी पत्नी सीता देवी के साथ १४ वर्ष के लिये वन को चले गये। वन में १३ वर्ष के निवास के उपरान्त १४वें वर्ष के प्रारम्भ में राक्षसी शूर्पणखा के षड्यन्त्र से रामचन्द्र का राक्षसों के साथ युद्ध छिड़ गया जिस में

दुष्ट रावण श्रीसीता जी को चुरा कर ले गया। रावण उस समय वहां का सर्वोपरि महाराजाधिराज था। उस की शक्ति का लोहा सब मानते थे। सभी उससे डरते थे। ऐसे विकट शत्रु के साथ श्री रामचन्द्र को पाला पड़ा, तो उसने अद्भुत नीतिकुशलता, असीम वीरता, और प्रखर प्रतिभा से काम लिया। वहां की वानर जाति के राजा सुग्रीव के साथ मित्रता करके रावण पर धावा बोल दिया। रावण अपनी शक्ति के मद में मत्त था। उसने राम की कुछ परवाह न की। परिणाम यह हुआ कि रावण का सारा कुटुम्ब, सारे सैनिक और सारी राक्षस जाति राम की वीरानल में भस्म होगई। अन्त में रावण की बारी भी आगई। रावण ने घोर संग्राम किया, पर अन्त को राम के तेज बाणों से कट कर यमपुरी को सिधार गया। जिस दिन राम ने रावण को मार कर उस पर विजय प्राप्त की थी वह आश्विन शुक्ला दशमी का दिन था। बस उसी दिन से यह वीर पूजा का पवित्र त्योहार आर्य सन्तान में प्रचलित होगया और प्रत्येक आर्य हिन्दू उस दिन अपने हृदयसम्राट वीर के चरणों में अपनी श्रद्धाञ्जलि चढ़ाता है।

दशहरे के महोत्सव में यही घटना—यही राम-रावण युद्ध—मनाया जाता है। पहले तीन दिनों में राम का जन्म, विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा और सीता स्वयम्वर, चौथे दिन विवाह, पांचवें दिन वनवास, छठे से नौवें तक वनचर्या—ऋषिसमागम, पंचवटी गमन—शूर्पणखा की भेंट, खरदूषण-वध, सीताहरण, सुग्रीव से मिलन, बालि वध तथा हनुमान द्वारा लंकादहन, मेघनाद और कुम्भकर्ण वध—आदि की लीला की जाती है। दशवें—दशमी के दिन रावण का वध किया जाता है।

रामलीला के दिनों में इन घटनाओं का अभिनय किया जाता है। शहर के बाहर खुले मैदान में सहस्रों नर नारियों के सामने यह लीला बड़ी धूमधाम से बाजेगाजे बजा कर रची जाती है। दशमी के दिन रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद की बांसों की बड़ी २ ऊंची मूर्तियां बनाई जाती हैं, जिनके बीच में बारूद के गोले और पटाखे रखे जाते हैं। बाहर से उन्हें रंगीन कागजों से मढ़ दिया जाता है। राम का तीर लगने से इन को आग लगा दी जाती है। नाना प्रकार के बैण्ड बाजों के साथ रामचन्द्र की सवारी बड़ी धूमधाम से सारे शहर में फिराई जाती है।

इन्हीं दस दिनों में शहर के चौराहों, मन्दिरों और धर्मगृहों में रामायण की कथाएँ होती हैं। शहर में रामचरित की नाना झांकियां निकाली जाती हैं।

बंगाल में यह उत्सव दुर्गापूजा के रूप में मनाया जाता है। महिषमर्दिनी भगवती चण्डी की प्रतिमा बना कर उसकी पूजा और झांकी उतारी जाती है। कहते हैं कि रावण पर चढ़ाई करने से पूर्व भगवान् राम ने शारदी दुर्गा का पूजन किया था। इसी के उपलक्ष्य में बङ्गाल में दुर्गा पूजा प्रचलित है।

यह त्योहार वास्तव में वीरस्मृति और वीरपूजा का त्योहार है। अपने वीरों की पूजा जाति का जीवन है। जाति का उच्च आदर्श और पूर्व पुरखाओं के कारनामे एकदम आंखों के सामने आजाते हैं जिनसे उत्साह, बहादुरी और वीरता की लहर बच्चे बच्चे के दिल में दौड़ जाती है। भगवान् राम के जीवन के उपदेश,

स्वार्थत्याग, पितृभक्ति और पत्नीभक्ति का सीधा मार्ग दिखाते हैं। भरत का भ्रातृप्रेम, लक्ष्मण की सेवा, सीता का पतिव्रत धर्म, हनुमान की स्वामिभक्ति, सुग्रीव का मित्रस्नेह हमारे जीवन को पवित्र बना देता है। हमारा पारिवारिक जीवन एक दम स्वर्गीय सुख का अनुभव करने लगता है। महोत्सव में परस्पर संमिलन से सामाजिक जीवन और परस्पर प्रेम बढ़ता है। जातीय जीवन की वृद्धि और परस्पर ईर्ष्या, द्वेष और कलह का नाश होता है। सर्वत्र आनन्द, मंगल, उत्साह, और सुख का राज्य दिखाई देता है। इस प्रकार के जातीय सामाजिक संगठन के लिए अत्यन्त उपयोगी होते हैं। जाति के बढ़ते हुए नवाङ्कुरों और देशके भावी कर्णधारों बच्चों पर इन घटनाओं और उत्सवों का ऐसा गहरा प्रभाव पड़ता है कि वे अपनी खेल कूद में महीनों बाद तक इसी को दोहराया करते हैं जिससे उत्साह और वीरता के भावों की जागृति के साथ साथ उन्हें जातीय वीरों के जीवनचरित्र का खेलकूद में ही पूरा परिचय प्राप्त हो जाता है।

कई स्थानों पर दसहरे के दिन बड़ी २ व्यापारिक मंडियां लगती हैं। व्यापारी लोग इस जन-सम्मिलन से लाभ उठाने के लिये अपनी वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते हैं। देहाती लोग भी अपने यहां की वस्तुएँ लाकर मेले में बेचते हैं। भारतवर्ष और तिब्बत की व्यापारिक मण्डी भी दसहरे के दिनों में लगती है। कुल्लू में जहां से हिन्दोस्तान-तिब्बत की सड़क प्रारम्भ होती है, तिब्बत के माल की इन्हीं दिनों मण्डी लगती है। कुल्लू में दूर २ के व्यापारी पहुंचते हैं और तिब्बत, लद्दाख, और यारकन्द आदि का सारा माल कुल्लू की मण्डी से खरीद कर देश देशान्तरों को ले

जाते हैं। इसी लिये कुल्लू का दसहरा प्रसिद्ध है और व्यापारिक दृष्टि से बड़े महत्व का है।

भारतवर्ष में दसहरा योरुप के 'विक्टरी डे' के समान जातीय व्यापकता रखता है। इसी दिन आर्यवंश चूड़ामणी भगवान् राम ने भारतवर्ष से राक्षस जाति का समूल नाश किया था। विन्ध्याचल को लांघ कर दक्षिणी भारत में आर्यसंस्कृति को ले जाने वाला भी राम ही था और रावण विजय के साथ मानों दक्षिण में आर्य संस्कृति की विजय का दिन भी यही विजया-दशमी का दिन था। आर्यऋषिपुङ्गव अगस्त्य आदि महर्षि जो राम से पूर्व दक्षिण में जाकर आश्रम बना कर बैठे थे और आय संस्कृति और आर्य-धर्म का प्रचार कर रहे थे, वहां के राक्षसों के हाथ में बुरी तरह सताये जारहे थे। उन्हें भी राक्षसों के अत्याचार से मुक्ति इसी दिन मिली थी। इसी दिन आर्य भारत का दक्षिण के साथ राजनीतिक सम्बन्ध भी स्थापित हुआ। वास्तव में आर्य-विजय का यह दिन था। अतः इसकी स्मृतिको मानने में आर्य जितना भी उत्साह और हर्ष प्रगट करें थोड़ा है। आर्यसभ्यता के इतिहास में यह दिन अनूठा था। इस दिन को जो हर्ष और उत्साह से नहीं मानता, मानों वह मनहूस, भाग्यहीन और जाति का द्रोही है।

शिवाजी (हिन्दी रत्न १९२७)

शीर्षकः—जन्म तथा वंश परिचय—जन्मतिथि, जन्मस्थान, माता-पिता का नाम और परिचय।

बाल्यकाल—विशेष घटनाएं—शिक्षा, दीक्षा ।

यौवनकाल—कार्य क्षेत्र में अवतरण ।

अन्त तथा मृत्यु तिथि—तथा सिंहावलोकन ।

उपसंहार—विशेष महत्व के कार्य, शक्ति, वीरता, देशभक्ति ।

जिस समय भारतवर्ष पूर्ण रूप से यवनाधिकार में हो चुका था, जब अकबर की सर्वग्रासी नीति ने भारत के बहादुर राजपूतों को अपने अधीन कर लिया था, जब भारत की स्वतन्त्रता के रक्षक मुगल सेना के सिपहसालार होने में अपना गौरव समझ रहे थे, संक्षेप से जब भारतीय स्वतन्त्रता की देवी पूर्ण रूप से निबिड़ जंजीरों से जकड़ी जा चुकी थी ऐसे दासता के युग में भारत रत्न महाराज शिवाजी का जन्म हुआ ।

शिवा जी महाराष्ट्र के भोंसलानामक वंश से थे । यह वंश अतिप्राचीन काल से ही वीरता और बहादुरी के लिये प्रसिद्ध था । शिवा जी के कई पूर्वज देशसेवा के लिये वीर गति को प्राप्त हो चुके थे । ऐसे सद्वंश और अड़े समय में शिवा जी ने जन्म लेकर अपने वंश की कीर्तिपरम्परा को स्थापित रखते हुए परतंत्रता की बेड़ियों को काट कर भारत की ऐसी लाज रखी कि इन के बाद फिर मुगल राज्य की नीव दृढ़ न हो सकी ।

शिवाजी के पिता का नाम शाहजी और माता का नाम जीजी बाई था । शाहजी की माता का नाम दीय बाई और पिता का नाम मल्लजी था । मल्लजी के पिता का नाम शम्भा पटेल था । शिवाजी के पिता शाहजी का जन्म १५९४ ई० में हुआ । यह युद्ध विद्या विशारद और बड़े कुशाग्रबुद्धि थे । पूना, सूपा और चाकन तथा शिवनेर तथा और बहुत सी स्थावर संपत्ति

इन्हें पैतृक रूप से प्राप्त हुई थी। अकबर के अहमदनगर पर हमला करने के समय से ही शाहजी के वंशवाले अहमदनगर के नवाब के सहायक थे। शाहजी के समय में भी अहमदनगर पर एक दो बार विपत्ति आई जिस में शाह जी ने असीम विजय दिखाई। इन की वीरता की ख्याति सर्वत्र फैल गई।

कहते हैं कि शिवाजी का जन्म बड़ी अशान्तिपूर्ण परिस्थिति में हुआ था। शिवाजी माता जीजी बाई बन्दी होकर शिवनेर दुर्ग में शत्रु की कैद में थीं। शाहजी शत्रुओं से बचकर कहीं निरापद स्थान में आश्रय लिये बैठे थे। इस प्रकार पिता की अनुपस्थिति में शिवाजी का जन्म बन्दी गृह में ही हुआ। इनके जन्म की तिथि वैशाख शुक्ला द्वितीया संवत् १६८४ विक्रम (सन् १६२७–२८ई०) बृहस्पतिवार बताई जाती है।

ऐसी परिस्थिति में जन्म लेकर शिवाजी बाल्यकाल से ही यवनों से घृणा करने लग गये। इन की माता बड़ी शिक्षिता और वीर माता थी। वह सदा इन्हें वीर गाथाएं सुनाकर इन में वीर भावों की जागृति करती रहती थीं। बड़ी बड़ी आपत्तियों में इन्हें छिपा छिपा कर इन की माता ने इन की रक्षा की। दस वर्ष की अवस्था में शिवा जी ने भी अस्त्र शस्त्र शिक्षा का ग्रहण किया आखेर की ओर इन्हें विशेष अभिरुचि थी। पहाड़ों पर घूमने का इन्हें बहुत शौक था। भारत को स्वतंत्र करने की बाल्यकाल से ही इन के दिल में प्रबल इच्छा थी।

निदान १७—१८ वर्ष की आयु में शिवा जी कार्य-क्षेत्र में उतर आए, और १६८६ में खुले ढङ्ग पर महाराष्ट्र के नेता बन गये। दो वर्ष के अन्दर ही इन्हों ने कई दुर्ग अपने अधीन कर

लिये। भीमा और वीरा नदियों के बीच के प्रदेश पर इनका पूरा अधिकार हो गया। सन् १६४९ से १६६२ के बीच में इन्हों ने अत्यन्त नीति-कुशलता और वीरोचित विक्रम से आसपास के दस और किलों पर अधिकार कर लिया।

सन् १६५९ में इनका बीजापुर के सेनाध्यक्ष अफ़ज़लखाँ से सामना हुआ। इन की प्रचण्ड वीराग्नि में अफ़ज़लखाँ को भस्म होते देर न लगी। अब इनका कोकण तक आधिपत्य हो गया। इन के राज्य का विस्तार १६० मील लम्बाई में और लगभग १०० मील चौड़ाई में होगया।

इस के अनन्तर १४ वर्ष शिवाजी के फिर रणक्षेत्र में ही बीते। इस बीच में इन्हों ने मुगल साम्राज्य पर आक्रमण किया, समुद्री बेड़े बनाए, औरंगजेब से सन्धि की, पकड़े जानेपर जेलखाने गये, वहां से भागे और अन्य कई वीरोचित अनुष्ठान किये। अन्त में १६७४ में इनका राज्याभिषेक हुआ। उस दिन से इनका राज्य दक्षिण में बढ़ता गया।

अन्त में सन् १६८० ई० में शिवाजी जानुव्यथा और घोर ज्वर के कारण ५ अप्रैल को स्वर्गलोक को सिधार गये। इस समय इन की आयु ५३ वर्ष की थी। मृत्यु के समय इन्होंने चार सौ मील का लम्बा चौड़ा राज्य छोड़ा। नर्मदा से कोकण तक इन का आधिपत्य था।

शिवाजी का सारा जीवन कर्म और अनुष्ठान का जीवन है। वीरोचित स्थिति में उत्पन्न होकर वीरवंश की कीर्ति को स्थित रखते हुए वीराग्रगामी बनकर इन्हों ने सारी आयु भर वीरता और विक्रम के साहसपूर्ण कार्य किये। सुदृढ़ मुगल साम्राज्य

को इन्हों ने ऐसा धक्का लगाया कि वह फिर न संभल सका। देशभक्ति, उदारता, सत्य परायणता, दृढ़ प्रतिज्ञता और धर्मभावुकता इन के जीवन के प्रधान गुण थे। मुख्यतः इन्हें अपनी भुजा पर भरोसा था। ये माता के परम आज्ञाकारी और पितृभक्त थे। मित्रता निभाना और शरणागत की रक्षा करना इन्हें ही आता था।

ये मुगलों के अत्याचारों के विरुद्ध खड़े हुए थे और अन्त तक लड़ते रहे। ये हिन्दूधर्म और आर्यसभ्यता के परम उपासक थे। शिवा जी जैसा सपूत कभी कभी भारत माता की कोख में खेलता है जो अस्त होते हुए भारतभाग्यभानु को फिर से चमका देता है।

सीता

शीर्षक—जन्म, बाल्य-काल।
स्वयम्बर तथा विवाह।
सुसराल तथा वनवास।
रावण द्वारा हरण और घृणित प्रस्ताव।
अग्नि परीक्षा—महारानी होने पर एक वार पुनः वनवास।
वाल्मीकि के आश्रम में पुत्रयुगलप्रसव। पुनः पतिसमिलन।

उपसंहार—चरित्र की महानता और आदर्श रमणी।

भगवती सीता माता को कौन नहीं जानता। सीता मिथिला के राजा जनक की पुत्री थी। कहते हैं कि निःसन्तान होने के कारण जनक ने सीता को बड़ी तपस्या के पश्चात् प्राप्त किया था। अपनी इकलौती बेटी होने के कारण जनक ने इसका पालन पोषण बड़े चाव और प्रेम से किया। सीता परम गुणवती और

अत्यन्त सुन्दरी थी । एक तो महाराजकुमारी, दूसरे इकलौती बेटी, जिस पर गुणवती और परम रूपवती होने से सीता का शैशव काल अत्यन्त सुख समृद्धि में व्यतीत हुआ ।

जब सीता की विवाह योग्य अवस्था हुई, तो पिता को उसके लिये अच्छा और अनुरूप वर ढूँढने की चिन्ता हुई । वह सीता का विवाह एक अत्यन्त शूरवीर और बाहुबलशाली पुरुष से करना चाहते थे । राजा जनक के पास एक बहुत पुराना शिवधनुष पड़ा था । वह इतना भारी था कि कोई शूर उसका चिल्ला चढ़ाना तो दूर, उसे उठा भी नहीं सकता था । कहते हैं कि यह धनुष उसे शिवजी के प्रसाद द्वारा प्राप्त हुआ था ।

जनक ने सीता के वर की वीरता की परीक्षा के लिये इसी धनुष का चिल्ला चढ़वाना पर्याप्त समझा । निदान उस ने यह घोषणा करादी कि जो वीर शिव-धनुष का चिल्ला चढ़ाएगा वही सीता के हाथ का अधिकारी होगा । एक नियत दिन पर दूर २ के शूर-वीर क्षत्रिय पधारे । शाही दरबार में सीता का स्वयम्वर रचा गया । एक एक करके सभी ने अपने बल की परीक्षा की, पर कोई भी क्षत्रिय वीर अपने मनोरथ में सफल न हुआ । अन्त में अयोध्या के महाराजकुमार रामचन्द्र ने उस धनुष को झट से उठाकर इतने ज़ोर से चिल्ला चढ़ाया कि धनुष कड़ाक से टूट गया । जनक अत्यन्त प्रसन्न हुये और सीता ने राम के गले में जयमाला पहना कर उन्हें सहर्ष अपना पतिदेव स्वीकार किया । बाद में यथाविधि दोनों का विवाह रचाया गया जिसके उपरान्त सीता देवी अपने पितृगृह को छोड़ कर पतिभवन में अयोध्या आगई ।

जिस सुख और सौहार्द से सीता देवी ने अपना शैशव बिताया था, ठीक उस के प्रतिकूल दारुण दुःख सुसराल में उस की परीक्षा कर रहा था। राम की सुतेली माता कैकेई ने षटयंत्र से राम को राज्याधिकार से च्युत करके १४ वर्ष का वनवास दिलाया। इस समय सीता देवी ने जिस विलक्षण धैर्य और आगाध पतिभक्ति को प्रकट किया, वह बहुत कम नारियों के भाग्य में होती है। राजमहलों में पली हुई सीता राज्याधिकार से विच्युत पति के साथ जङ्गलों में जाने के लिये आग्रह करती है। सीता के प्रगाढ़ प्रेम और निश्चल पतिभक्ति पर रीझ कर अन्त में राम ने उसे साथ चलने की आज्ञा दे दी।

जंगल के स्वाभाविक और प्राकृतिक कष्टों के साथ सीता के भाग्य में एक और दारुण दुःख लिखा था। वहां पर राम का राक्षसों के साथ युद्ध छिड़ जाने पर पापी रावण सीता को हर लेगया और उसे अपनी पत्नी बनाने का नीच प्रस्ताव किया।

अपने आचरण की शुद्धि की रक्षा करने के लिये इस समय सीता नितान्त असमर्थ थी। वह अकेली थी, असहाया थी, अबला थी। इस के विरुद्ध रावण क्रूर, अत्याचारी, बलिष्ठ और राक्षसों का सर्वोपरि महाराज था। सीता की परीक्षा का भी यही समय था। एक ओर राज-पाट था, और सुख समृद्धि थी। दूसरी ओर राज्याधिकार से हीन वनचारी पति था, उस का भी कोई पता नहीं। यह भी आशा न थी कि राम रावण से टक्कर लगा सकता है। रावण की शक्ति असीम थी। राम बेचारा असहाय परदेसी था। ऐसे विकट समय में भी सीता ने अपने सतीत्व को स्थिर रक्खा। रावण के प्रलोभनों

और सुखों पर लात मारी । रावण की शक्ति को ठुकराया । रावण के पाशविक बल का अपने सतीत्व बल से सामना किया । रावण जैसे चक्रवर्ती सम्राट को उस वीर देवी ने ऐसी फटकार चढ़ाई कि वह अपना सा मुँह लेकर रह गया । सीता के धैर्य और सतीत्व का प्रमाण इस से अधिक और क्या हो सकता है कि बन्दी और परवश होने पर भी वह सतीत्व रक्षा में सफल हुई । अन्त में राम द्वारा भेजे हुए हनुमान से पूर्ण परिचय प्राप्त करके उसे कुछ ढाढ़स हुआ और फिर पति संयोग की आशा बँन्धी ।

रावण की मृत्यु के बाद सीता ने अग्नि में अपने सतीत्व की परीक्षा दी । सीता के प्रचण्ड सतीत्व तेज के आगे अग्नि देव का तेज मन्द पड़ गया । सब को सीता की साधुता पर निश्चय हो गया ।

राम अयोध्या आगये । उन का राज्याभिषेक हुआ । सीता एक बार फिर महारानी की पदवी प्राप्त करके राजमहलों के सुख का अनुभव करने लगी । पर यह सुख चिरस्थायी न था । साधु महात्माओं के जीवन कष्ट से भरे होते हैं । कष्ट पर कष्ट आकर उन के सत्य और साधुता की परीक्षा करते हैं । इस से वे आग में तपाए हुए सोने की तरह कञ्चन बन जाते हैं, और सँसार उन को पूजा करता है । इसी प्रकार सीता की जीवनी भी दारुण दुःखों और कष्टों पर कष्ट झेलने की जीवनी है । इन्हीं कष्टों ने सीता को अमर कर दिया है । भारत की रमणियों में सीता ललामभूत हो गई है ।

अयोध्या के लोगों ने उटङ्कनाएँ और टिप्पणियाँ करनी शुरू कर दीं, 'वर्ष दिन रावण के पास रहकर भी सीता को राम ने अपना लिया'। कुछ दम्भियों के उत्तेजन से बड़ा भारी आन्दोलन खड़ा हो गया। प्रजा में राजभक्ति की मात्रा घटने लगी। विद्रोह की आशङ्का बढ़ गई। इस करण सीता की साधुता पर पूर्ण विश्वास रखते हुए भी प्रजा की शक्ति के लिये केवल राजनीतिक भावों से प्रेरित हो कर राम ने सीता को फिर अकेली निर्वासित कर दिया।

यह चोट सीता के लिये असह्य थी। बदनाम होकर पतिगृह से निकाला जाना और वह भी पति के हाथों से, स्त्रियों के लिये असह्य अपमान है। सीता ने इस को भी सहा। इस समय वह गर्भवती थी। इस कारण उसने आत्महत्या न की।

वह महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में चली गई। महर्षि अपने योगबल से सब कुछ जान गये। निदान वहां सीता को दो लड़के उत्पन्न हुए। उनका पालन पोषण भी महर्षि ने किया। एक का नाम लव और दूसरे का कुश रक्खा। महर्षि ने उन्हें यथाविधि शिक्षा दीक्षा देकर शस्त्रास्त्रप्रयोग में निपुण कर दिया। इन ही दिनों में महर्षि ने अपनी दिव्यवाणी के द्वारा उन के वंश की कीर्ति और इतिहास को रामायण के रूप में रचा। फिर रामायण के द्वारा उन्हें अपने वंश का सारा परिचय करा दिया।

कालान्तर में राम ने अश्वमेधयज्ञ रचाया। उस समय वाल्मीकि के आश्रम में सीता से राम की फिर भेंट हुई। वाल्मीकि के कहने पर राम ने सीता को फिर स्वीकार कर लिया।

पर अयोध्या के लोगों ने अग्निपरीक्षा का फिर से आग्रह किया। इस अपमान को न सह कर गर्भवती साध्वी सीता ने पृथ्वी माता से अपनी गोद में लेने की प्रार्थना की। पृथ्वी भी सीता के दुःख से पिघल गई। पृथ्वी एक दम फट गई और सीता उस गोदी में समा गई।

सीता का जीवन करुणा का जीवन है। पढ़ते हुए आँसू नहीं रुकते। विवाह से उस की आपत्तियों का प्रारम्भ होता है। दुःखों पर दुःख आते गये और उस अबला के कोमल हृदय को छीलते रहे। पर इन हर प्रकार की विकट से विकट विपत्तियों में भी सीता अपने सतीत्व से विचलित न हुई। इसी लिये सीता आदर्श रमणी है और भारत के नर नारियों के लिये पूजनीय है। सुख में—समता में—अनुकूल परिस्थिति में सतीत्व पालन कठिन नहीं, पर प्रतिकूल और विकट समय में धीर दृढ़ रह कर सतीत्व की रक्षा करना परम दुष्कर है। हम तो कहेंगे सीता आदर्श रमणी थी, पर राम आदर्श पति न था। आदर्श पुत्र और आदर्श राजा भले ही हो।

महाराजा हरिश्चन्द्र (हिन्दीरत्न १९३१)

शीर्षक—वंश तथा राज्य परिचय, कुटुम्ब।

विशेष गुण—सत्यवादिता, दृढ़-प्रतिज्ञता।

सत्यपरीक्षा—विश्वामित्र का अत्याचार।

उपसंहार—अन्त में सफलता तथा सिंहावलोकन।

महाप्रतापी राजा हरिश्चन्द्र सूर्यवंश चूड़ामणि रामचन्द्र

के पूर्वजों में से थे । ये भी अयोध्या के पवित्र सिंहासन को सुशोभित कर चुके थे । अपने प्रसिद्ध सूर्यवंश की कीर्ति परम्परा के अनुसार राजा हरिश्चन्द्र भी बड़े प्रजावत्सल और न्यायप्रिय महाराज थे । मंत्रीमण्डल तथा प्रजावर्ग दोनों ही इन से प्रसन्न और इन की न्यायप्रियता की प्रशंसा करते थे ।

इन के अनुरूप ही इन की महारानी शैव्या थी । यह भी अत्यन्त पतिपरायणा और पति के सुख दुःख की सङ्गिनी थी । परिस्थिति के अनुसार ही वह अपने आप को ढाल सकती थी । राज महलों के सुखों को लात मार वह सीता के लिये गृहदासी तक भी बन सकती थी । ऐसी ही आदर्श रमणियों के लिये सूर्यवंश प्रसिद्ध है और भारत का मस्तक संसार में उन्नत है ।

इन का इकलौता बेटा रोहित था । वह भी अपने माता पिता की तरह सत्य के लिये सहस्रों कष्ट प्रसन्नता से सहन कर सकता था । रोहित की अवस्था लग भग ८ वर्ष की थी, जब उसे कठिन परीक्षा के लिये प्रस्तुत होना पड़ा ।

महाराजा हरिश्चन्द्र की सत्यवादिता और दृढ़प्रतिज्ञता संसार में प्रसिद्ध थी । वे कहा करते थे :—

चन्द्र टरै सूर्य टरै, टरै जगत व्योहार ।
पै दृढ़-व्रत हरिश्चन्द्र को, टरै न सत्य विचार ॥

सत्य धर्म के लिये वे कठिन से कठिन कष्ट उठाने को उद्यत रहते थे । उन की इस दृढ़ धारणा का समाचार पाकर विश्वामित्र ने उन से उन का राज्य माँग लिया । राज्यप्राप्ति के पश्चात् दक्षिणा का धन मांगने का भी झगड़ा किया । भोले हरिश्चन्द्र ने

राज्यकोष से अपेक्षित धन लाकर देना चाहा, पर विश्वामित्र ने उसे स्वीकार न किया। वह कहने लगा कि जब राज्य मेरा है तो राज्यकोष भी मेरा है। अतः दक्षिणा का धन तुम अपनी ओर से चुकाओ। राजमहल, राजा के वस्त्र आभूषण रानी, के गहने और बहुमूल्य मुक्तामणि, हार आदि पर उस समय विश्वामित्र का आधिपत्य था। अब दक्षिणा का धन हरिश्चन्द्र कहां से चुकावें ?

राजा विश्वामित्र ने उन्हें कड़ी आज्ञा दी कि तुम प्रातःकाल से पहिले अयोध्या की सीमा से निकल जाओ और एक मास के अन्दर २ धन चुका दो।

अपने सत्य धर्म पर दृढ़ राजा हरिश्चन्द्र ने इस आज्ञा को सहर्ष पालन किया। वे पतिभक्ता शैव्या और प्यारे पुत्र रोहित के साथ अयोध्या को छोड़ कर निकल गये। कुछ दिनों में वे काशी नगर में पहुंचे। वहां पर हरिश्चन्द्र एक डोम के घर बिके और और अपनी पत्नी को एक धनी के यहां गृहदासी के रूप में बेच दिया। रोहित माता के साथ ही रहा। इस प्रकार दक्षिणा का धन चुकाया। सत्य की रक्षा के लिये पत्नी और पुत्र को छोड़ा, अपने आप को घृणित से घृणित कर्म करने पर बाधित किया, पर सत्य को न छोड़ा।

इतनी कड़ी परीक्षा पर भी विश्वामित्र प्रसन्न न हुए। उन्हों ने उन के कर्तव्य की और भी कड़ी जाँच करनी चाही।

मनुष्य के जीवन में कई बार 'कर्तव्यसंघर्ष' हो जाता है। दो प्रतिकूल कर्तव्य एक ही समय में आजाते हैं, और मनुष्य

यह निश्चय नहीं कर सकता कि किसे करे और किसे छोड़े। उस समय किंकर्तव्यविमूढ़ हो कर मनुष्य कई बार सत्पथ से च्युत होजाता है। महाभारत के मैदान में अर्जुन के सामने भी कर्तव्यसंघर्ष था जिस से अर्जुन दौर्बल्य प्रकट करने लगे। पर भगवान् कृष्ण ने उन्हें सत्पथ का उपदेश किया। विश्वामित्र हरिश्चन्द्र को भी ऐसे ही 'कर्तव्यसंघर्ष' में डालना चाहते थे, जिस से उन्हें सत्पथ से च्युत कर सकें।

डोम के यहां हरिश्चन्द्र श्मशान घाट पर कफ़न और कर लेने का काम करते थे। उनके स्वामी (डोम) की उन्हें आज्ञा थी कि बिना कफ़न और बिना कर प्राप्त किये किसी को शवदाह न करने दिया जावे।

विश्वामित्र की कृपा से रोहित को सांप ने डस लिया और वह तत्क्षण सदा के लिये अपनी माता और संसार से वियुक्त होगया। बेचारा गृहदासी शैव्या अपने पुत्र के शव को लेकर आधी रात के समय श्मशान घाट में पहुंची। शैव्या के पास न पैसे थे, न कफ़न। लकड़ियों के लिये भी कोई प्रबन्ध न था। अपनी धोती से ढाँपकर वह अपने बालक को आधी रात के समय कड़कती हुई बिजली और मूसलाधार वर्षा में लेकर गई। इस कर्तव्य द्वंद्व के समय हरिश्चन्द्र क्षण भर के लिये विचलित होने लगे। अपना प्यारा पुत्र मर गया है, पत्नी की यह अवस्था है कि उस के पास न तो पैसा है, न कफ़न। शोक, वात्सल्य, करुणा, ममता, दया, आदि भावों ने हरिश्चन्द्र के मन को द्रवित कर दिया। पर वह डोम के सेवक थे। स्वामी की आज्ञा का पालन करना परम धर्म है। वह अपने पुत्र को वहां कैसे जलाने दें। बड़ा संघर्ष था, एक ओर दया थी,

दूसरी ओर न्याय, एक ओर ममता थी, दूसरी ओर सत्य, एक ओर शोक था, दूसरी ओर कर्तव्य। इस असमञ्जस में हरिश्चन्द्र करें तो क्या करें ? निदान उन्हों ने ममता और शोक पर विजय प्राप्त की और अपने कर्तव्य पथ पर दृढ़ रहे।

इस कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण होकर हरिश्चन्द्र ने अपना नाम असार संसार में अमर कर दिया। विश्वामित्रने प्रसन्न होकर क्षमा माँगी और रोहित को योगबल से जीवन प्रदान करके राजपाट सब उन्हें लौटा दिया।

हरिश्चन्द्र की जीवनी 'सत्यपरायणता' की जीवनी है। सत्य के उपासक के मार्ग में कितनी विपत्तियां आती हैं कितनी विघ्न बाधाएँ उपस्थित होती हैं, कितने प्रलोभन आते हैं, कितनी बार 'कर्तव्यसंघर्ष' आता है, इन्हीं के भावों का दिग्दर्शन इनके चरित्र से होता है। पर धन्य है आर्यकुल ललाम, भारत संतान हरिश्चचन्द्र को जिन्हों ने सत्य की उपासना में सब कुछ सहन किया और सारे संसार में अपना जीवन आदर्श जीवन बना दिया।

———

प्रातः पर्यटन (हिन्दीरत्न १९२९)

शीर्षक—प्रात:काल की शोभा का वर्णन।

प्रात:काल पर्यटन करने से लाभ—पर्यटन का ठीक समय।

पर्यटन न करने मे हानि।

उपसंहार।

प्रातःकाल की शोभा भी अनूठी होती है। रात्रि का मलिन

अन्धकार चोर की तरह भागता है। दिशाएँ सूर्य भगवान् के आगमन के लिये शुभ्र, रक्त वस्त्र पहन कर अपने आप को सजाती हैं। पूर्व दिशा में अरुण भगवान् अपने अभिनव ताम्र वर्ण से सारे आकाश-मंडल को रञ्जित करते हैं। उषा देवी की छटा इस समय निराली ही होती है। चारों ओर पक्षियों का चहचहाना और मधुर कलरव वायुमंडल को गुञ्जरित कर देता है। निस्तब्ध, शान्त और गम्भीर वायुमंडल, तथा पुष्प गन्ध से सुगन्धित शीतल वायु शरीर में नई स्फूर्ति नई प्रफुल्लता और नई प्रसन्नता पैदा करते हैं।

प्रातःकाल की वायु बड़ी पवित्र होती है। उस में रात्रि के अवकाश के बाद कोई धूलि, कोई दुर्गन्ध और कोई विषैली गैस नहीं होती। इस शीतल वायु में शरीर को स्वस्थ, पुष्ट और चुस्त बनाने की दिव्य शक्ति होती है, इसके संपर्क से उद्यम आता है, कार्यसम्पादन शक्ति बढ़ती है। मनुष्य के रुधिर में रक्तकणों की वृद्धि होती है। विषैले पदार्थ नष्ट होकर रुधिर शुद्ध होता है और बढ़ता है। इसलिये प्रातःकाल की सैर को सभी सराहते हैं, सभी उसकी प्रशंसा करते हैं। डाक्टर लोग प्रातः पर्यटन की मुक्तकंठ प्रशंसा करते हैं। सौ दवाइयों की एक दवाई है प्रातःकाल की सैर। जिन मनुष्यों में रुधिर की कमी हो. पीलिया रोग हो. पाचन-शक्ति क्षीण हो, अजीर्ण रहता हो, दुर्बलता हो, ऐसे लोगों को प्रातः पर्यटन से बढ़कर और कुछ हितकर नहीं। दिमागी काम करने वालों के लिये सुबह की सैर बहुत ही लाभप्रद है। इससे दिमाग ताज़ा, मन प्रसन्न, शरीर हलका होकर काम करने की शक्ति बढ़ती है। मनुष्य नीरोग रहता है। छोटी मोटी व्याधियाँ आप से आप शान्त हो जाती हैं।

प्रातः पर्यटन प्रायः अरुणोदय के बाद और सूर्योदय से पूर्व करना चाहिये। अरुणोदय से पूर्व वायु में इतना हलकापन और इतनी स्वास्थ्यवर्द्धिनी शक्ति नहीं होती। सूर्योदय के पश्चात् वायु में ऊष्मा की मात्रा अधिक होने से वह स्फूर्तिविधायकता नहीं होती, जो सूर्योदय से कुछ काल पहले होती है। अतः डाक्टरों की सम्मति में सैर का ठीक समय सूर्य निकलने से एकाध घंटा पहले है।

ऐसे दिव्य, मनोहर और आह्लादक समय में जो मनुष्य निद्रा के अधीन होकर चारपाई पर ही पड़े रहते हैं और बाहर की वायु सेवन नहीं करते, वे उस स्वर्गीय शोभा के निरीक्षण से वंचित रहने के साथ साथ सदा रोगी और आलसी रहते हैं। उनका मस्तिष्क स्थूल और शरीर सुस्त रहता है। आये दिन कब्ज़ी, बदहज़मी और अन्य व्याधियाँ उन्हें सताती रहती हैं।

इस लिये प्रत्येक बुद्धिमान् मनुष्य को अपनी अपनी शक्ति के अनुसार प्रातः पर्यटन अवश्य करना चाहिये। इस में थोड़े किये नागा कभी न होने देना चाहिये।

प्रातः काल की वायु को, सेवन करत सुजान।
बुद्धि विद्या अरु बल बढ़े, उद्यम होत महान।

———

समाचारपत्र

शीर्षक—समाचार पत्र क्या हैं—भिन्न-भिन्न भेद, उद्देश्य तथा इतिहास।

इन का उत्तरदायित्य—सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक, लेखक और सम्वाददाता। फ्री प्रेस, एसोसिएटिड प्रेस, प्रेस एक्ट।

उपयोग और शक्ति—समाचारप्रकाशन, समाज सुधार, राजनीतिक आन्दोलन, व्यापारिक वृद्धि इत्यादि।

उपसंहार।

समाचार और खबरें छापने वाले पत्रों को समाचारपत्र या अखबार कहते हैं। इन के छपने के विशेष नियम होते हैं। ये नियत तिथियों पर छपते हैं। इन के छापने के लिये पहले सरकार से आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक है। इन के प्रचार के लिये सरकार ने डाक खर्च आदि की कई सुविधाएं भी दे रखी हैं।

कई समाचार पत्र दैनिक होते हैं। ये प्रतिदिन छपते हैं। योरुप आदि देशों में एक दिन में कई २ बार छपने वाले पत्र भी हैं। दैनिक के अतिरिक्त अर्धसाप्ताहिक, साप्ताहिक, पाक्षिक मासिक, त्रैमासिक, वार्षिक आदि समाचार पत्रों के प्रकाशन भेद से कई भेद हैं। भिन्न भिन्न पत्रों के उद्देश्य भी भिन्न भिन्न होते हैं। कई राजनीतिक, कई सामाजिक, कई धार्मिक, कई आर्थिक, कई वैज्ञानिक, कई शोधसम्बन्धी, कई ऐतिहासिक और कई सभा-सोसाइटियां के समाचारपत्र होते हैं। अपने उद्देश्य की पूर्ति में

अभिनव विचार और लेख प्रकाशित करना और समाचारों को छापना इन का उद्देश्य होता है ।

सब से पहला समाचारपत्र इटली के वेनिस नगर से निकला था । इङ्गलैण्ड में महारानी इलिज़बेथ के समय में समाचार पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हुआ । भारत में 'इण्डिया गज़ट' नामी सर्वप्रथम पत्र था जिसे भारत सरकार ने सन् १७४४ में निकाला । आजकल तो सभ्य देशों में सैंकड़ों दैनिक और दर्जनों मासिक पत्र निकलते हैं । भारतवर्ष में भी अब कई सौ समाचार पत्र छपते हैं, पर इन की ग्राहकसंख्या अत्यल्प और लेख इतनी उच्च कोटि के नहीं होते जितने पाश्चात्य देशों के पत्रों में होते हैं ।

समाचारपत्रों में कई लेखकों के लेख प्रकाशित होते हैं । समाचारों का संग्रह भी कई सम्वाददाताओं द्वारा होता है । समाचार संग्रह के लिये 'फ्री प्रैस', "एसोसिएटिड प्रैस", 'रूटर' आदि कई संस्थाएँ कार्य करती हैं । इन्हें भी डाक और तार की कई सुविधाएँ प्राप्त हैं ।

इन समाचारों और लेखों का सम्पादन एक मनुष्य के अधिकार में होता है; इसे 'सम्पादक' कहते हैं । कानूनी तौर पर लेखों का उत्तर-दायित्व सम्पादक पर होता है । कई बार अनुचित या कानूनविरुद्ध लेखों के छपने से कई समाचार पत्रों के सम्पादकों को दण्ड भुगतना पड़ता है ।

समाचारपत्रों के प्रकाशन आदि प्रबन्ध का उत्तरदायी 'प्रकाशक' होता है और छापने आदि का उत्तरदायित्व 'मुद्रक'

पर होता है। कानून विरुद्ध कोई बात छपने पर मुद्रक, प्रकाशक और सम्पादक तीनों ही कई बार धर लिये जाते हैं और तीनों को सरकारी दण्ड मिलता है। भारत में प्रैस कानून बहुत सख्त है; इस पर बहुत प्रतिबन्ध हैं; इसे वह स्वतंत्रता प्राप्त नहीं, जो पाश्चात्य देशों में है; इसलिये भारत में समाचार पत्रों का निकालना आपत्ति से शून्य नहीं। यहाँ बेचारे सम्पादकों, प्रकाशकों और मुद्रकाओं का जीवन हर समय सन्देह में रहता है। न जाने कब कानून की किसी धारा में नीचे उन पर अभियाग बन जावे। बेचारे पत्रों की सारी कमाइ जुर्माने और दण्ड भरते ही समाप्त हा जाती है। अन्य कारणों के साथ यह भी एक कारण है कि भारत में कोई पत्र चिरजीवी नहीं है। योरूप में दो दो सौ वर्ष के पुराने पत्र चल रहे हैं, पर भारत में पुराने पत्रों का कोई नाम भी नहीं जानता।

समाचार पत्रों का होना देश और जाति की सभ्यता का परिचायक है। राजा और प्रजा के भावों का प्रकाशन, उचित और देश हित के आन्दोलनों का खड़ा करना, खबरों का छापना, देशोन्नति के साधनों का प्रचार, और सामाजिक तथा आर्थिक सुधार आदि समाचार पत्रों द्वारा ही सम्पादित हो सकते हैं। इससे पढ़ने वालों की ज्ञानराशि में वृद्धि होती है। इन से देश की अवस्था का पता लगता रहता है और नई नई खबरें पढ़ने को मिलती हैं। गम्भीर और पाण्डित्य पूर्ण लेखों द्वारा विज्ञान और आविष्कारों का ज्ञान, व्यापारिक मंडियों के भावों का ज्ञान तथा सद्विचारों का फैलाव होता है। विज्ञापनों द्वारा व्यापार-वृद्धि के साधन भी समाचार पत्र ही हैं।

आजकल समाचार पत्रों की शक्ति का लोहा सभी मानते हैं। जिस व्यक्ति के ये विरुद्ध हो जावें, वह प्रजा की दृष्टि से गिर जाता है। जिस की यह प्रशंसा करें, वह नेतृत्व पद पर पहुंच जाता है। जिस अन्दोलन का ये पक्ष करें वह सफल होकर रहता है। निहत्थी प्रजा के भावों के प्रकाशन का यही महान् शस्त्र है। राज्य, प्रजा और चर्चधर्ममंदिर की शक्ति प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। पर समाचार पत्रों की यह अभिनव शक्ति आज कल के संसार में सर्वोपरि मानी जाती है।

इस शक्ति का दुरूपयोग करके कई स्वार्थी लोग अपना उल्लू सीधा करते हैं। वे प्रजा के दलों को परस्पर भड़का कर एकता और साम्यवाद का सत्यानाश कर स्वार्थ साधन करते हैं। ऐसे दुष्ट सम्पादकों के कारण ही यह व्यवासय बदनाम हो रहा है। परमात्मा इन्हें सुबुद्धि दे और भारत में सच्चे, उचितवक्ता, देश-भक्त, और सदाचार पत्र पैदा हों।

हवाई जहाज़

शीर्षक:—आकार वर्णन, आविष्कार का इतिहास, बनावट तथा, प्रकार आदि।

उपयोग—युद्ध और शान्ति में प्रयोग, विज्ञानवृद्धि, व्यापारवृद्धि।

उपसंहार—विज्ञान की लगन, प्राचीन भारत में इसका अस्तित्व।

हवाई जहाज़ को हिन्दी में 'व्योमयान' या 'वायुयान' कहते हैं। इसका प्राचीन नाम 'विमान' या 'आकाशयान' संस्कृत की पुस्तकों में आता है। आज कल के हवाई जहाज़ 'चील' की शकल के होते हैं। इनका ढाँचा लम्बा सा होता है, जिस के दोनों ओर प्लेन

लगे होते हैं। ये हलके पर पक्की लकड़ी तथा एलम्यूनियम जैसी हलकी धात के बने होते हैं। इन में वायु से हल्की हाईड्रोजन या हैलियम गैस भरी होती है जिस से ये ऊपर उड़ सकते हैं। गति की नियामकता के लिये एक मोटर लगी होती है जिस से ये ऊपर उड़ सकते हैं। इसी मोटर के द्वारा हवाई जहाज़ को जहां चाहें मोड़ सकते हैं, या ठहरा सकते हैं। अन्यथा हवाई जहाज को वश में रखना असम्भव हो जाये।

हवाई जहाज़ों के आविष्कार का इतिहास भी अत्यन्त रोचक है। स्थल पर तो मनुष्य की गति जन्मसिद्ध है। जल पर भी मनुष्यों ने "नौका', और पोत (जहाज़) आदि के द्वारा अति प्राचीन काल से अपना अधिकार कर लिया है। पर आकाश तथा वायु मण्डल में उड़ने की इच्छा मनुष्य के हृदय में शेष थी। सुन्दर मनोहर पक्षियों को आकाश में उड़ते देख कर मनुष्य अपनी अशक्तता पर आप ही लज्जित थे। प्रारम्भ में मनुष्यों ने इस के लिये बहुत प्रयत्न किये। कभी वे छीते लेकर ऊँचे मकानों को छतों पर से कूदे, कभी गुब्बारों में हवा भर कर उड़ने लगे। बच्चों के गुब्बारों को सभी जानते हैं। इन में हाईड्रोजन गैस, जो वायु से हल्की होती है, भरी होती है। बच्चे इन गुब्बारों को धागे से बाँधकर उड़ाते हैं। इसी प्रकार के बड़े गुब्बारों में अधिक मात्रा में उक्त गैस भरकर मनुष्यों ने उड़ने की चेष्टा की। इस में उन्हें कुछ सफलता प्राप्त हुई। पर गुब्बारे जब वायु में उड़ते थे, तो मनुष्य के वश में नहीं रहते थे। वे वायु के वशवर्ती होकर उधर ही बह जाते थे, जिधर वायु के झोंके उन्हें धकेल देते थे। इन से नीचे उतरना भी कठिन था। इससे कई बार मनुष्य अनभिष्ट स्थान

पर पहुँच जाते थे, कई बार समुद्र में गिर पड़ते थे। कई प्राणों से भी वियुक्त हो जाते थे।

इस प्रकार के गुब्बारे केवल उड़ने के कुतूहल की शान्ति मात्र कर सकते थे। इससे मनुष्य अपनी अभीष्ट सिद्धि प्राप्त न कर सकते थे। इन से लाभ की अपेक्षा हानि अधिक थी। इसलिये इन में और अधिक उन्नति करके ऐसे गुब्बारे तैयार किये गये जो इच्छानुसार उड़ सकते थे और मुड़ सकते थे। इन पर केवल एक या दो मनुष्य ही बैठ सकते थे। इस प्रकार धीरे २ मनुष्य ने वायुयानों का आविष्कार किया जिन में बीसियों मनुष्य बैठ सकते हैं और सैंकड़ों मन का बोझा भी रखा जा सकता है। हाल ही में एक ऐसा व्योमयान बना है जो ७०० फुट लम्बा और १५० टन भारी है। इस में बाज़ार और दुकानें भी हैं।

व्योमयान कई प्रकार के हैं—बौक्स काइट या पतङ्ग के नमूने के, ग्लाइडर या दो पंखों वाले, एक पत्री वाले इत्यादि। हाल ही में अमरीका के जार्ज ह्वाइट नाम के वैज्ञानिक ने एक ऐसा हवाई जहाज़ बनाया है, जो बिना ही इञ्जिन के चलता है। इसमें पङ्ख हैं और बाईसिकल की तरह पैरों ही से चलाया जाता है।

वायुयानों के बनने से मनुष्य का आकाश पर पूर्ण अधिकार हो गया है। वह समय दूर नहीं जब सर्वसाधारण इन की सैर किया करेंगे और मोटरों के समान अमीरों के घरों में एक एक हवाई जहाज़ भी मौजूद होगा।

अभी तक हवाई जहाज़ों का उपयोग युद्ध के लिये किया जा रहा है। युद्ध में शत्रु की गति-विधि का निरीक्षण, उस के बलाबल का ज्ञान, इन्हीं के द्वारा होता है। शत्रु पर बम्ब के गोले

गिरा कर या विषैली गैस या कोई घातक द्रव छिड़क कर शत्रु सेना का संहार भी इन्हीं के द्वारा होता है। उदण्ड या विद्रोही प्रजा को बम्ब बरसा कर भयभीत करना, दुष्टों का दमन करना आदि कार्य भी हवाई जहाज़ करते हैं।

शान्ति के समय में भी आकाशयान बड़े उपयोगी हैं। इन से यात्रा शीघ्र हो जाती है, समय बच जाता है। इन की गति २००, ३००, ४०० मील घण्टा होती है। इन के रास्ते में न पुल लाँघने पड़ते हैं, न सड़कें बनानी पड़ती हैं। नदी नाला,बन, पर्वत, ऊँचाई, नीचाई आदि की बाधाओं से ये 'ऊपर उठे' रहते हैं। इस से हिमालय आदि पर्वतों के अगम्य शिखरों पर भी लोग जाने लगे हैं।

डाक की आवागमन हवाई जहाज़ों पर होने से विलायत की चिट्ठी अब आठ दिन में मिल जाती है। व्यापार की वृद्धि में भी हवाई जहाज़ अत्यन्त सहायक होंगे। स्थान और समय की दूरी दूर होकर संसार में मिलाप बढ़ेगा। विज्ञान की उन्नति में भी वायुयान परम सहायक होंगे। दूरबीनों और दूसरे यंत्रों द्वारा दृश्यमान यह ज्योतिर्जगत और सौर मंडल अभी तक अज्ञात सा ही पड़ा है। अब लोग मंगल ग्रह तक जाने की चेष्टा कर रहे हैं। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के सम्बन्ध में भी नई जानकारी की रोचक बातें निकट भविष्य में पता लगाने की आशा है। पहाड़ों की ऊँची और दुर्गम चोटियों—जहाँ पक्षी तक भी नहीं जा सकते—हवाई जहाजों द्वारा पहुँचकर ऋतु-परिवर्तन, सूर्य किरणों, तथा अन्य कई वैज्ञानिक प्रश्नों के तजरबे किये जाने लगे हैं। इस प्रकार शान्ति के समय में ज्ञान विज्ञान की वृद्धि, वणिज व्यापार की वृद्धि तथा स्थान और समय की दूरी का अभाव, और समय की

बचत आदि कई लाभ हवाई जहाजों से होने की संभावना है।

आज कल वैज्ञानिक युग है। विज्ञान ही 'अघट घटन पटीयस' हो रहा है। सैंकड़ों वर्षों के निरन्तर परिश्रम, करोड़ों रुपयों के व्यय और सैंकड़ों मनुष्यों के नाश के उपरान्त यह वायुयान आविष्कृत हुआ है। धन्य है उन लोगों की साधना, परिश्रम और सच्ची लगन को जिस से आगे के विघ्नों की परवाह न करते हुए सतत कार्य द्वारा अन्त में ऐसे पदार्थों का आविष्कार करते हैं।

भारतवर्ष में विमानों का अस्तित्व अति प्राचीन काल में भी था। भगवान् राम अपनी सेना समेत पुष्पक नामी विमान पर बैठ कर लङ्का से अयोध्या एक दिन में पहुंचे थे। महर्षि व्यास के पुत्र अमरीका से जनक के पास ३—४ दिन में पहुँचे थे। देवताओं के पास भी विमान होते थे। नारद तो हर समय आकाश मार्ग से ही भ्रमण करते हुए मर्त्यलोक के समाचार इन्द्र लोक में पहुँचाते थे। पर इन बातों पर अब किसी को विश्वास नहीं। आजकल के आकाशयानों का आवि॰।र पाश्चात्य देशों में ही हुआ है। जर्मनी, अमरीका, इँग्लैंड और फ्रांस ही इस में सब से अग्रसर हैं। वे जातीय स्पर्धा से कार्य कर रहे हैं। भविष्य में जिस के पास आकाशयानों की शक्ति अधिक होगी वही देश विजयलक्ष्मी की जयमाला का अधिकारी होगा।

———— —

मलेरिया ज्वर

शीर्षक:—ज्वर का स्वरूप, भयङ्करता–निदान–कारण, एनोफिली–कारण ज्ञान का इतिहास—ज्वर के प्रतिरोध के उपाय–ज्वर की चिकित्सा।

उपसंहार।

मलेरिया शब्द मल–मैल–एरिया, से मिल कर बना है। इस का अर्थ है–मैले और गन्दे स्थानों में उत्पन्न होने वाला। इसे देसी भाषा में मौसमी बुखार या शीतज्वर कहते हैं। यह प्राय: बरसात के दिनों में होवा है। रोगी को एकदम बहुत सर्दी लगती है, झमाई आती हैं और पैर ठण्डे होने लगते हैं। सर्दी इतने ज़ोर की लगती है कि रोगी २–३ रज़ाइयाँ ओढ़ कर भी सन्तुष्ट नहीं होता। सर्दी के साथ २ प्यास भी लगती है और जब तक ज्वर पूर्ण रूप से चढ़ नहीं लेता, प्यास और सर्दी बराबर बनी रहती हैं। कई बार यह ज्वर १०५ और १०६ डिगरी तक या इससे भी ऊपर पहुँच जाता है। ज्वर चढ़ चुकने पर शीत और प्यास शान्त हो जाते हैं और रोगी को पसीना आने लगता है। पसीने से यह उतर जाता है। यह ३–४ घण्टे चढ़ने में और ४–५ घण्टे उतरने में लेता है। कई बार यह नित्य चढ़ता है, कई बार तीसरे दिन, कभी चौथे दिन। इस की बड़ी पहचान प्राय: जाड़ा लगना और पैरों का ठंडा होना ही है।

कई बार पुराना होने पर या कुपथ्य करने पर यह ज्वर बड़ा भयङ्कर रूप धारण कर लेता है, और हल्के बुखार के रूप में कई महीनों तक रोगी का पीछा नहीं छोड़ता। कभी २ यह क्षय रोग उत्पन्न करके प्राणान्त भी कर देता है।

पहले तो इस ज्वर का कारण यही समझा जाता था कि बरसात में पाचन शक्ति दुर्बल हो जाती है। नया पानी दुष्पच और काबिज होता है। अधिक वर्षा के कारण कीचड़ और दुर्गन्ध फैलती है। सूर्य की उष्मा से पानी के वाष्प हर समय पृथ्वी से उड़ते रहते हैं और मनुष्यों में दुर्गन्ध युक्त विषैली वायु को प्रविष्ट करते रहते हैं। इस कारण अग्निमान्द्य और कब्जी से यह ज्वर पैदा होता है पर आज कल डाक्टरों ने बड़ी खोज के बाद यह पता लगाया है कि मलेरिया ज्वर का कारण एक विशेष प्रकार के विषैले कृमि होते हैं जो एनोफिली नामक मच्छरियों के रुधिर में पाये जाते हैं। ये मच्छरियां जिसे काटती हैं, उस के रुधिर में ये कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं। इससे मनुष्य रोगी हो जाता है। फिर इस रोगी के विषाक्त रुधिर को आगे फैलाने का काम भी मच्छरियाँ ही करती हैं। रोगी को काट कर जब ये नीरोग मनुष्य को काटती हैं तो उसे भी ज्वर के कीटाणु दे देती है। इस प्रकार मच्छरों द्वारा यह ज्वर उत्पन्न होता है और फैलता है। सबसे प्रथम इन कीटाणुओं का पता फ्रांस के एक डाक्टर ने लगाया था। उसे मलेरिया के रोगी के रुधिर में कुछ कीटाणु दिखाई पड़े। उस ने उन्हें खुर्दबीन से देखा और अनेक रोगियों के रक्त में उन्हें पाकर यह निश्चय किया कि यही कीटाणु इस के कारण हैं। बाद में सरपैट्रिक मेलसन ने इस बात का पता लगाया कि इन कीटाणुओं का असली घर एक प्रकार की मच्छरी का खून हैं, जहां से ये मनुष्य के रुधिर में प्रवेश करते हैं। धीरे २ अब यह बात ज्ञात हो गई है कि सभी मच्छरों में ये कीटाणु नहीं होते। एनोफिली नामक जाति की मच्छिरियाँ ही इनकी जन्म दात्री हैं। ये मच्छरियाँ

गन्दे पानी, मोरियों, कच्चे तालाबों, घास और सबज़ी वाले स्थानों में पैदा होती और बढ़ती हैं। एशिया, अफ़रीका, अमेरिका, दक्षिणी योरुप और बाल्टिक सागर के किनारे प्रदेश इन मच्छरियों के घर हैं। बरसात में ये मच्छरियाँ अधिक संख्या में बढ़ जाती हैं।

भारतवर्ष में सर्वसाधारण में स्वास्थ्यसम्बन्धी ज्ञान के अभाव के कारण मलेरिये का प्रकोप इतना भयङ्कर और सर्वव्यापी होता है कि बरसात के दिनों में एक २ घर में चार चार पाँच पाँच चारपाइयाँ बिछ जाती हैं। प्रत्येक व्यक्ति बारी बारी ज्वर-ग्रस्त होता है। कई बार एक ही व्यक्ति को कई बार भुगतना पड़ता है। यदि हम ज़रा सा ध्यान देकर मच्छरियों से बच सकें तो हम मलेरिये से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। मलेरिया से बचने के लिये निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिये।

मच्छरों के काटने से अपने आप को बचाओ। रातको मच्छरों से बचने के लिये 'मच्छहरी'का प्रयोग करो। मच्छरों के विध्वंस के लिये सदा सावधान रहो। अपने घर की नालियाँ, सेहन, कमरे और दालान आदि को साफ़ सुथरा रखो। नालियों को फिनाइल से या पैराफीन छिड़क कर धुलवा दो। उन में पानी जमा न होने पावे। पानी के सब बरतन ढके रहें। कमरों में प्रतिदिन हवन या सुगन्धित पदार्थों का धुखाना भी श्रेयस्कर है। अपने घर के इरद गिरद की झाड़ियों को कटवा दो। कीचड़ न होने दो। साफ कपड़े पहनो। हलकी ताज़ा खुराक खाओ। इस बात पर विशेष ध्यान रखो कि तुम्हारा पेट साफ़ रहे। कबज़ न होने पाए। पाचन शक्ति क्षीण न हो। इस प्रकार सावधानी से मच्छरों की पैदायश

रोकने और मच्छरों से बचने से मलेरिया का प्रतिरोध किया जा सकता है।

मलेरिया होने पर इस के कीटाणु बड़ी प्रबलता से बढ़ते हैं। पीतज्वर आदि की भाँति मलेरिया की अभी तक ऐसी कोई वैक्सीन तैयार नहीं हुई। आज कल कुनैन ही मलेरिया की अव्यर्थ महौषध गिनी जाती है। कुनैन के प्रयोग से मलेरिया के कीटाणु मर जाते हैं। रोगी को कुनैन का प्रयोग अवश्य शीघ्र कराना चाहिये। एकाध विरेचन देकर रोगी को पेट साफ करके कुनीन देने से पूर्ण सफलता प्राप्त होती है। कुनीनसे जो ज्वर नहीं रुकता, उसे कुनीन का इञ्जैकशन (सूई द्वारा औषधी को रुधिर में प्रविष्ट करना) करके शान्त किया जाता है।

ज्वर होने पर शीघ्र ही उस की रोक थाम कर लेनी चाहिये, अन्यथा यह बहुत तङ्ग करता है। पुराना होने पर जीर्ण ज्वर का रूप धारण करके सारे रुधिर में फैल जाता है, और कई बार असाध्य हो जाता है। इस ज्वर में मनुष्य की प्लीहा बढ़ जाती है और यकृत खराब हो जाता है। ऐसी अवस्था में मलेरिया के कीटाणु प्लीहा के अन्दर छिपे रहते हैं और आठ दस दिन बाद फिर रुधिर में आ जाते हैं। इसलिये इनके समूल नाश के लिये ज्वर के उपरान्त भी एक दो सप्ताह तक कुनीन का प्रयोग रखना चाहिये। भोजन सादा और हल्का करना चाहिये। कब्ज न होने देनी चाहिये और प्लीहा की निवृत्ति के लिये ध्यान से चिकित्सा करनी चाहिये।

अभ्यासार्थ कुछ प्रस्तावों के शीर्षक

कृष्ण-जन्माष्टमी (हिन्दी रत्न १६२८)

साधारण परिचय—कृष्णाष्टमी की तिथि और कृष्ण भगवान् का जन्म-दिन-भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी-जन्म के सम्बन्ध की कथा-जन्म की परिस्थिति; कंस के अत्याचार से कृष्ण के माता पिता का जेल में होना वहां जन्म। विशेष वर्णन—मन्दिरों की सजावट, दर्शकों की भीड़-कृष्ण लीला के चित्र तथा कृत्रिम अभिनय-विशेष समारोह-लोगों का व्रत। जन्म समय आधी रात उत्साह और भक्ति-जन्म-भगवान् की आरती और कथा-लोगों का को कृष्ण का भाव, आचमन और प्रसाद।

उपसंहार—कृष्ण भारत का योगीराज, सर्व कला सम्पूर्ण-महापुरुष, परम नीतिज्ञ-गीता का उपदेशक। उसकी स्मृति में महोत्सव 'महापुरुष पूजा' और 'वीर पूजा' है। इस से नया उत्साह पैदा होता है। भक्तिभाव जागृत होता है। कृष्ण के वीरता के कार्य स्मरण हो आते हैं। त्योहार और महोत्सव जाति का जीवन हैं। इन का मनाना मुख्य कर्तव्य है।

महाराना प्रताप (हिन्दी रत्न १६२८)

प्रताप का वंश परिचय तथा काल, जन्म स्थान चितौड़, पिता का नाम उदयसिंह। चित्तौड़-राज्य मुगलों के अधीन; प्रताप का राज्यभिषेक और वीरता के कार्य:—पिता का देहान्त सन् १५७२ में मेवाड़ की तत्कालीन दुर्दशा—अकबर की सर्वग्रासिनी नीति। प्रताप में देश भक्ति की प्रबल भावना—हल्दी घाट का युद्ध

कुम्भलगढ़ के किले में रहना—मानसिंह की दुष्टता—प्रताप का जंगलों में फिरना—अनेक विपत्तियाँ-शक्तसिंह से झगड़ा—शक्तसिंह का अकबर से मिलना—मुगल युद्ध—बच्चे का रोटी के लिये बिलकना देखकर क्षण भर के लिये विचलित होना—सन्धि की प्रार्थना—फिर भीलों की सेना इकट्ठी करके एक बार फिर चित्तोड़ को छुड़ाना—इस में भामा शाह का प्रशंसनीय कृत्य।

मृत्यु सन् १६६७ में—मृत्यु-शय्या पर भी चित्तोड़ की स्वाधीनता की चिन्ता।

उपसंहार—स्वाधीनता का सच्चा उपासक, देशभक्ति का देवता, वीरता और बहादुरी का साक्षात् अवतार, सच्चा और पक्का राजपूत—अपनी आन पर मर मिटने वाला—अकबर के प्रलोभनों को लात मार कर जंगलों की विपत्तियों का स्वागत करने वाला—भारत का सपूत। इस की कीर्ति अमर और यश अक्षय है।

श्रीरामचन्द्र (हिन्दी रत्न १९२९)

जन्म स्थान अयोध्या, पिता सूर्यवंश दीपक दशरथ—चार भाई—माता कौशल्या—सब से बड़े राम।

बाल्यकाल और विवाह—लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा—ताड़का और सुबाहु का हनन। शिव धनुष को तोड़ कर सीता स्वयम्वर और विवाह।

बनवास-कैकई के षड़यन्त्र से राज्याधिकार छीन कर बनवास मिलना। प्रसन्नता से बन जाना—ऋषि दर्शन अगस्त्याश्रम—पञ्चवटी, शूर्पणखा की नाक का काटना—खरदूषण युद्ध, सीता—

हरण-सुग्रीव से मैत्री—हनुमान द्वारा लङ्का दहन—रावण युद्ध—राक्षस विजय—अयोध्या प्रत्यागमन—राज्यतिलक ।

उपसंहार—राम की महत्ता—गौरव । भारत को राक्षसों से सदा के लिये मुक्त किया । दक्षिण में आर्य राज्य, आर्य धर्म और आर्य सभ्यता के प्रचार का मार्ग दिखाया; इत्यादि ।

(विशेष विवरण के लिये देखो 'दशहरा' पर प्रस्ताव)

अभिमन्यु

अर्जुन और सुभद्रा का पुत्र—महावीर बालक ।

उत्तरा से विवाह—महाभारत के कौरव पाण्डव युद्ध में द्रोणाचार्य द्वारा निर्मित चक्रव्यूह में जाने का साहस—अर्जुन की अनुपस्थिति में पाण्डव पक्ष में और कोई वीर न था जो चक्रव्यूह का भेदन कर सके । युधिष्ठिर उदास थे । अभिमन्यु ने वीरोचित भाषा में सब को निश्चय दिलाया और व्यूह भेदन का बीड़ा उठाया । व्यूह में महापराक्रम—बड़े २ महारथियों का आश्चर्य से चकित होना । अभिमन्यु की वीरता और कौरव दल में चिन्ता । अन्त में ७—८ महारथियों द्वारा मिलकर युद्ध नियमों के विरुद्ध अभिमन्यु की हत्या करना । तिस पर अर्जुन की प्रतिज्ञा-सूर्यास्त से पूर्व जयद्रथ को मार कर अभिमन्यु की मृत्यु का बदला लेना ।

उपसंहार—अभिमन्यु शस्त्रास्त्र निपुण, शूरवीर और महापराक्रमी था—भारत का बच्चा बच्चा उस के जीवन से उत्साहित होता है । ऐसे वीर बालकों के नाम से ही आज भी भारत का क्षत्रियत्व जीवित है ।

दीवाली

कार्तिक अमावस्या—रामचन्द्र के राज्याभिषेक का दिन—लोग दीपक जलाते हैं-घरों में, बाजारों में, दुकानों में दीपक जलाए जाते हैं। लक्ष्मी का पूजन होता है। घरों को सजाया जाता है। बाजारों में भीड़ होती है। दुकानें सजाई जाती हैं।

उपयोग—घरों का सफाई और सजावट से स्वास्थ्य वृद्धि।

रोगनाश—हर्ष, और सम्मिलन; सर्वत्र सुख आनन्द, उत्साह।

कुरीति—द्यूत खेलना आदि अवश्य बंद होना चाहिये।

उपसंहार—दीवाली लक्ष्मी की रात्रि है। व्यापारिक वर्ष इस दिन से प्रारम्भ होता है। बरसात के गन्दे और रोग पूर्ण मौसम के बाद शरद ऋतु में रास्ते आदि खुलने से व्यापार वृद्धि; नया माल आता है। सर्दियों के माल का बाजार गर्म होता है। अत: वर्ष भर के हानि-लाभ के हिसाब का दिन।

पुस्तकालय

पुस्तकालय किसे कहते हैं—शिक्षा प्रचार में पुस्तकालय की उपयोगिता। प्रत्येक स्कूल, कालेज के साथ अपना २ पुस्तकालय होने की आवश्यकता। अवकाश में पुस्तकालय का उपयोग—स्वाध्याय में रुचि पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त अध्ययन क्षेत्र की वृद्धि और उससे लाभ। पुस्तक और समाचार पत्रों का संग्रह और प्रचार सर्वसाधारण को शिक्षित करने का सर्वोपयोगी साधन, इत्यादि।

चांद बीबी

जन्म, बाल्यकाल, विवाह ।

उस समय राज्य की अवस्था—पति की मृत्यु ।

चांद बीबी की वीरता—मंत्रियों की दुष्टता—पुनः अड़े समय पर चांद बीबी को देश रक्षा के लिये बुलावा ।

एक बहादुर क्षत्राणी की तरह चांद बीबी युद्ध करती है; और बड़े २ वीरों के छक्के छुड़ाकर अहमदनगर की रक्षा करती है ।

उपसंहार—चांदबीबी वीर, धार्मिक, दयाशील और परम रूपवती थी। फ्रांस की 'जोन आव आर्क' की तरह जिस समय वीरों के कलेजे दहले हुए थे, ऐसे निकट समय में अपूर्व धैर्य और उत्साह से अपने देश की रक्षा की। भारत की वीर नारियों में चांदबीबी का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है ।

मुद्रण कला (छापाखाना)

परिचयः—मुद्रण कला का इतिहास—प्रथम लकड़ी पर उल्टे अक्षर खोद कर छापने का प्रयास। पन्द्रहवीं शताब्दी में लारेन्स वस्टर ने सिक्के का टाइप बनाया और मुद्रण यंत्र का आविष्कार किया। सब से प्रथम मुद्रणालय लण्डन में सन् १४७१ ई० में स्थापित हुआ। धीरे २ पैरिस और जर्मन आदि में इस का प्रचार। 'टाइप' का शफर धातु से बनना; स्टोन होप ने यंत्र बना कर कई पुस्तकें छापी। बाद में उन्नति करके स्टीप प्रेस का बनना जिससे २००० पृष्ठ प्रति घंटा छपते थे। फिर वाष्प के स्थान बिजली का प्रयोग। इस से ३०००० पृष्ठ प्रति घण्टा छपते हैं।

आज कल तो कम्पोज करना, स्याही लगाना आदि सब कुछ मशीनों से होता है ।

उपयोग और लाभः—विद्या और शिक्षा के प्रचार में मुद्रण कला का हाथ । पुस्तकों का सुलभ होना-समाचार पत्रों का छपना-देश की वस्तुओं के गुणों के प्रकाशन से व्यापार वृद्धि-बड़े बड़े विद्वानों से मानसिक मिलाप, सभ्यता, और देशीय अन्दोलनों तथा समाज सुधार में मुद्रण कला का प्रयोग ।

उपसंहारः—अमुक उपयोगी आविष्कार है । मानव समाज और मानुषिक मास्तिष्क की उन्नति और वृद्धि जितनी इस आविष्कार से हुई है अन्य से नहीं ।

शीतला (चेचक)

परिचय—अति प्राचीन बीमारी, भारत वर्ष में इस का अति प्राचीन काल से अस्तित्व मसूरिका-दानों का निकलना-प्रबल ज्वर, मुंह और आंखों का रंग; लाल दानों का फूलना; अत्यन्त भयंकर महा रोग-योरूप में इस की भयङ्करता कई राजा महाराजा इस के ग्रास बने । लोग इससे थर्थर कांपते थे । जब यह फैलती है, तो ग्रामों के ग्राम उजाड़ पड़ जाते हैं इसे महामरी कहते हैं ।

प्रतिरोध और चिकित्सा—भारत वर्ष में इस के प्रतिरोध के के उपाय-शीतला देवी का पूजन-आचमन-रोग के दिनों में रोगी को राख से ढाँपना और जल के अतिरिक्त कुछ न देना । इस से ८० प्रतिशत नीरोग होते थे । १९ वीं सदी तक योरूप में इस की चिकित्सा अज्ञात थी । वैकसीन का आविष्कार-तथा प्रचार-कानूनी तौर पर टीका लगवाना जरूरी है । टीके का लाभ आदि ।

विचारात्मक प्रस्ताव

सन्तोष (हिन्दी रत्न १९२९)

शीर्षक—सन्तोष क्या है ? आलस्य और सन्तोष में भेद।
असन्तोषी की दुर्शदशा।
सन्तोष प्राप्ति के उपाय।
उपसंहार—सन्तोष की महता—सन्तोष और स्वास्थ्य, सन्तोष और समाज।

आत्मा की प्रसन्नता का नाम सन्तोष है। ससार की दौड़ धूप में पूरा भाग लेते हुए भी, संग्राम में वीर सैनिक की भान्ति अग्रसर होते हुए भा मन की दृढ़ता और आत्मा की प्रसन्नता को स्थिर रखना सन्तोष है। (हार हो या जीत, सुख हो या दुःख, विपति हो या संपति,) सफलता हो या असफलता, बीमारी हो, निर्धनता हो, या कोई और अनिष्ट हो -संक्षेप से कैसा हो कड़े से कड़ा समय हो, कैसी ही विकट से विकट विधि वामता हो, हर अवस्था में हर प्रकार की परिस्थिति में (आत्मा की प्रसन्नता को न छोड़ना सन्तोष है)। (सन्तोष का सम्बन्ध मनुष्य के आत्मा और मन से है। सन्तोषी मनुष्य का मन सदा स्थिर और प्रस्ताव रहता है।

(सन्तोष के वास्तविक अर्थ को न समझ कर कई लोग 'कायरता' और 'आलस्य' को ही सन्तोष मान बैठते हैं। यह अपनी दुर्बलता को छिपाने का एक ढोंग मात्र है। 'प्रयत्न न करना' आलस्य है। 'कार्यभीरुता' को कायरता कहते हैं, पर सन्तोष इन से सर्वथा पृथक है। कर्मवीर होते हुए, पूर्ण प्रयत्न करके फल

प्राप्ति में आत्मिक प्रसन्नता को स्थिर रखना सन्तोष है। बस कर्तव्य में हमारा अधिकार है, फल ईश्वराधीन है, इस विचार-दृढ़ता से फल की प्राप्ति या अप्राप्ति के सम्बन्ध में मन को चिन्तित एवं दुःखी न होने देना सन्तोष है। हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहना और करना धरना कुछ न, तिस पर सन्तोष को रट लगाना, आध्यात्मिक दम्भ के अतिरिक्त और कुछ नहीं। जो मनुष्य जिस परिस्थिति में है, जिस कुल में उसका जन्म है, जितनी उसकी शक्ति, विद्या और कमाई है, उस के अनुसार प्रसन्नता से जीवन व्यतीत करना सन्तोष है और तिस पर हाय हाय करके दुःखी रहना, मन को अशान्त रखना और मारे मारे फिरना, सच-झूठ, पाप-पुण्य करके अधिक का लालच करना असन्तोष और महापाप है।

असन्तोषी मनुष्य का मन अत्यन्त चञ्चल और अस्थिर होता है। वह अपनी परिस्थिति से असन्तुष्ट रहता है। वह सदा दूसरों की बढ़ती देखकर जला करता है। जिन बातों पर उसका वश नहीं, जैसे—रूप, धन, गुण सम्मान आदि—उन्हें देख २ कर हर समय वह दुःखी रहता है। उसका सारा जीवन निराशता और दुःख का जीवन व्यतीत होता है। कालान्तर में उस की यह अवस्था हो जाती है कि वह किसी भी काम के योग्य नहीं रहता। उसका स्वभाव अत्यन्त चिड़चिड़ा और रूखा सा हो जाता है। अपने असन्तोष के कारण उसे संसार में कोई भी वस्तु प्रिय नहीं लगती। यदि ५०) से बढ़कर उसका वेतन १००) हो जाता है तो भी उसे प्रसन्नता नहीं होती क्योंकि १००) से अधिक वालों को देखकर वह जलता है और उसकी इच्छाएं

और भी बढ़ जाती हैं। ज्यों ज्यों मनुष्य में असन्तोष की मात्रा बढ़ती जाती है, त्यों त्यों उस के जीवन का रस-स्वाद-सुख कम हो जाता है। वह आठ पहर अपनी अशक्तता पर दिल ही दिल में कुढ़ता रहता है। संसार में इच्छाओं और वासनाओं का अन्त नहीं। अतः असन्तोषी मनुष्य के विश्राम का भी कोई स्थान नहीं।

असन्तोषी मनुष्य की धारणा यह होती है कि 'सुख की उपलब्धि सांसारिक भोग सामग्री से होती है; पर उसे यह पता नहीं कि यह मिथ्या भ्रान्ति है। "सुख है बीच विचारदे" के अनुसार सुख का सम्बन्ध वाह्य सामग्री से नहीं अपितु आन्तरिक सोच विचार से है। सुख बाहर से नहीं आता, अन्दर से पैदा होता है। दिन भर खेतों में हल चलाने वाला और छोटी सी पुरानी झोंपड़ी में रहने वाला एक सन्तोषी किसान अपनी जौ की रोटी खाकर और फटे पुराने मैले कपड़े पहन कर अपने आप को पूर्ण सुखी अनुभव करता है, पर असन्तोषी करोड़पति महलों में रहकर और पलंगों पर सो कर भी उस मानसिक शान्ति से वंचित रहता है जो एक ऐसे गरीब मज़दूर के भाग में है जो अपने भाग्य से पूर्ण सन्तुष्ट है। सच बात तो यह है कि सांसारिक भोग सामग्री जितनी बढ़ती जावे, सुख की मात्रा उतनी कम होती जाती है। वास्तविक सुख सन्तोष, प्रेम, आनन्द और विचार में है। असन्तोषी मनुष्य अधिक के लालच में आकर कई बार पाप पुण्य करने से भी नहीं घबराता जिसका दुष्परिणाम उसे शीघ्र ही भुगतना पड़ता है।

सन्तोष एक ऐसी वस्तु है जो मनुष्य के स्वभाव में ही होती

है। यदि मनुष्य स्वभाव से सन्तोषी नहीं, तो उस के लिये सन्तोष की प्राप्ति दुष्कर सी ही समझनी चाहिये। सन्तोष प्राप्ति के लिये 'ईश्वर-विश्वास' एक अच्छा साधन है। 'ईश्वरेच्छा गरीयसी'—(जो ईश्वर करता है हमारे भले के लिये ही करता है) का विश्वास मनुष्य के मन को स्थिर और आत्मा को प्रसन्न करने में विशेष रूप से सहायक होता है। जहां असन्तोषी मनुष्य अपनी शक्तियों पर विश्वास करके अपने यत्न से अधिक भोग-सामग्री की प्राप्ति का यत्न करके अशान्त और दुःखी रहता है, वहां सन्तोषी मनुष्य ईश्वरेच्छा पर निर्भर रहकर निश्चिन्त और सुखी रहता है। पर इस 'ईश्वर-समर्पण' का यह भाव नहीं कि मनुष्य अकर्मण्य होकर आलसी बनकर पड़ा रहे। आलस्य मनुष्य का महान शत्रु और महापाप है। अपनी शक्ति के अनुसार यत्न करके ईश्वर प्रदत्त फल पर सन्तोष करके अपनी परिस्थिति से प्रसन्न रहना ही 'ईश्वर समर्पण' है। अपने से अधिक सुखी मनुष्यों को देखकर प्रसन्न होना, सब से मित्रता भाव, प्रेम और सौजन्य आदि गुण भी सन्तोष-प्राप्ति में सहायक होते हैं। ईर्ष्या, द्वेष, मत्सरता आदि दुर्गुणों से बचना, मन को प्रसन्न रखना, अपने से अधिक दुःखियों की ओर देखकर ईश्वर का धन्यवाद करना आदि कतिपय गुण हैं जिन्हें मनुष्य शनैः २ अपने स्वभाव में प्रविष्ट कर सकता है।

'सन्तोषी सदा सुखी' के अनुसार संसार में सुख प्राप्ति का साधन सन्तोष है। संसार में मनुष्य क्या, प्रत्येक प्राणी सुख का अभिलाषी है। मनुष्य की प्रत्येक चेष्टा, प्रत्येक प्रवृत्ति सुखार्थ होती है, पर भ्रान्त प्राणी दुःख में सुख की सम्भावना करके मरुस्थल में

जलतृष्णा की भान्ति भटकता फिरता है। वह समझता है धन में सुख है, धन के लिये टक्करें मारता है, दौड़ धूप करता है, सब कष्ट सहता है, पर धन प्राप्त करके भी वह अनुभव करता है कि मैं सुख से वंचित हूं। इसी प्रकार पुत्र, कलत्र, मकान, जायदाद, सम्मान, विद्या, अधिकार, राजपाट आदि पदार्थों में सुखप्राप्ति की आशा करने वाले बाद में पश्चात्ताप करते हुए ही दृष्टिगोचर होते हैं। वास्तविक सुख सन्तोष में है, 'सन्तोषः परमं सुखम्' जिन्हों ने सन्तोषामृत का पान किया है वह पूर्ण सुखी हैं। मनुष्य के मन को जहां विश्राम मिले, वही सुख है। इच्छाएं तो पूर्ति से घृतसिक्त आग की तरह बढ़ती ही जाती हैं। उन में मानसिक विश्राम या आत्मिक तोष नहीं। मन को सन्तोष द्वारा ही विश्राम मिलता है। वहीं आत्मिक तोष की उपलब्धि होती है। सन्तोष में ही सच्ची शान्ति और निश्चिन्तता प्राप्त होती है। चिन्ता-चिता से भी तभी छुटकारा मिलता है जब मनुष्य अपने लिये यही सिद्धान्त बना लेता है :—

जाबिध राखै राम ताबिध रहियै—

सन्तोष आध्यात्मिक उन्नति की प्रथम सीढ़ी है। मन को एकाग्र और स्थिर करने का प्रथम सोपान है। योग सीखने वालों के लिये, मैस्मरेज़्म और हिप्नौटिज़्म के जिज्ञासुओं के लिये सन्तोष पहली श्रेणी है जिसे उन्हें अवश्य उत्तीर्ण करना पड़ता है। सन्तोष से मनुष्य में आकर्षण शक्ति बढ़ती है। वह अपनी प्रसन्नता से चारों ओर 'प्रसन्नता' की एक लहर फैला देता है जिस की परिधि में आकर प्रत्येक प्रभावित हो जाता है।

मानव समाज के आध्यात्मिक, सामाजिक, मानसिक और

मस्तिष्क सम्बन्धी विकास के लिये सन्तोष का मनुष्य के स्वरूप पर भी विशेष प्रभाव पड़ता है। मन शान्त रहने से स्वास्थ्य ठीक रहता है। भोजन खूब हज़म होता है। रुधिर में प्रतिरोधिनी शक्ति बढ़ती है जो सैंकड़ों व्याधियों से मनुष्य को बचाती है। किन्तु—मन चिन्तित और व्याकुल रहने से पाचन शक्ति क्षीण होती है। हृदय दुर्बल हो जाता है।

आत्मसंयम (हिन्दी रत्न १९२७)

शीर्षक—लक्षण और व्यापकता।

आत्म संयम की आवश्यकता, आत्मसंयम न करने से हानि।

आत्मसंयम के लाभ, आत्मसंयम के उपाय।

उपसंहार—आत्मसंयम की महत्ता, आत्मसंयम और समाज, आत्मसंयम और स्वास्थ्य।

अपनी इन्द्रियों और मन को वश में रखने का नाम आत्म-संयम है। परमात्मा ने मनुष्य को कार्य करने और ज्ञान प्राप्ति के लिये दस इन्द्रियां दी हैं और मन को इनका राजा बनाया है। हाथ, पैर, जिह्वा और मल-मूत्रोत्सर्ग की इन्द्रियां कर्मेन्द्रियां कही जाती हैं। इनके सदुपयोग से इनको वश में रखने से मनुष्य आत्मिक रूप में उन्नत होता है, और इन पर निग्रह न रखने से ये विपथगामी होकर जीवन का सत्यानाश कर डालती हैं। इन्द्रियों की घोड़ों से तुलना की गई है और मन को सारथी कहा गया है। आत्मा इस रथ का सवार माना जाता है। यदि सारथी और घोड़े सवार --या स्वामी—के वश में रहेंगे तो जीवनयात्रा सुखपूर्वक

कटेगी। अगर सारथी प्रमादी होगया और घोड़े वश में न रहें, तो समझ लो कि स्वामी की कुशल नहीं। इन्द्रियां विषय-गामिनी हैं। इनका काम विषयों में विचरना है। क्रोध, लोभ, मोह और अहङ्कार पांच विषय हैं जिन से मनुष्य को इस संसार में युद्ध करना होता है। इन विषयों की सृष्टि तो मानवीय जीवन के विकास के लिये विशेष उपयोगी है, पर सीमा के अन्दर। यदि सीमा से बाहर होगये तो सर्वनाश में देरी नहीं। जैसे यदि रथ सड़क की सीमा के अन्दर चलता रहे, तो उसे कोई खतरा नहीं, पर सीमा को उलंघन करके घोड़े, रथ, सारथी और मालिक किसी को भी कुशल नहीं। जो मनुष्य सावधान होकर इन पर कड़ी दृष्टि रखता है, वह भवसागर से पार होता है, पर ज्योंही मनुष्य ने असावधानी की कि ये विषय उसे डुबो देते हैं।

मन एक विचित्र पदार्थ है। इस की गति अत्यन्त चञ्चल और प्रकृति अस्थिर है। यह क्षण भर में लाखों कोसों की यात्रा कर सकता है, भूत भविष्यत का पता ला सकता है, असम्भव को सम्भव कर सकता है। यही मनुष्य के बन्ध और मोक्ष का साधन है। इसे रोकना कोई सहज बात नहीं। इस को वश में रखना अत्यन्त दुष्कर और कठिन कार्य है। बड़े २ योगीराज, धीर, तपस्वी, धुरन्धर विद्वान, शास्त्रों के बड़े बड़े पण्डित, बड़े बड़े महर्षि, त्यागी और संन्यासी इससे हार गये। सांसारिक माया का प्रभाव इस पर अत्यन्त शीघ्र होता है। यह क्षण भर में बीसियों रूप बदलता है। कभी सात्विक वृत्ति में पड़ा पड़ा महात्मा बन जाता है और अनुपम उदारता दिखाता है। कभी पाई पाई के झगड़े के लिये खून लेने पर उतारू

हो जाता है, कभी सद्गुणी बन कर बड़े बड़े प्रलोभनों को जीत लेता है और कभी एक छोटी सी बात के लिये मनुष्य का अधः पतन कर देता है। कभी कभी उपयोगी परिस्थिति पाकर भी विषयों के वशीभूत नहीं होता, पर कभी छोटी सी तुच्छ वस्तु पर भी फिसल पड़ता है। भाव यह है कि एक बार मन को जीत लेने से यह निश्चय नहीं कि भविष्य में भी वह निग्रह में रहेगा। इस लिये आत्मसंयम या मनोनिरोध के लिये पग पग पर प्रतिक्षण मनुष्य को अत्यन्त सावधान रहने की आवश्यकता है।

जिस मनुष्य का अपने आप पर निग्रह नहीं, जिस ने अपनी इन्द्रियों और मन को नहीं जीता, वह संसार में कभी सफल जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। वह किसी को प्रभावित नहीं कर सकता। उस में तेज, बल, शक्ति, क्षमता, आकर्षण, प्रभाव और शील नहीं रह सकता। आत्म-संयम सब सद्गुणों का प्रभव और उत्पत्तिकारण है। अनात्म-संयमी का समाज में सत्कार नहीं, घर में मान नहीं, मित्रों में आदर नहीं और नौकरों पर प्रभाव नहीं रहता। वह समाज का एक कांटा समझा जाता है। कुल का नाशक और देश का घातक माना जाता है। घर वाले उसे 'कुल-कलङ्की' कह कर उस से घृणा करते हैं। मित्र उस से बात चीत करते लजाते हैं और नौकर लोग उस की हंसी उड़ाते हैं। अनात्म-संयमी का जीवन घोर घृणित और अत्यन्त अपमान का जीवन होता है। न उस पर किसी को विश्वस होता है न प्रेम। सब कोई उस के पापमय जीवन से घृणा करते हैं।

इस के प्रतिकूल आत्म-संयम से मनुष्य में तेज आता है, उस का मान और सत्कार बढ़ता है। बल, वीर्य, विद्या, शक्ति और

प्रभाव में वह अग्रसर होता है। संसार उस की प्रतिष्ठा करता है। आत्मसंयमी में सब गुण विद्यमान होते हैं। जिसने मन को वश में कर लिया, मानो उसने तीक्ष्ण से तीक्ष्ण शत्रु को जीत लिया, बड़े से बड़े सम्राट् को वश में कर लिया।

वास्तव में आत्मसंयम सभ्यता का लक्षण है। मनुष्य और पशुओं में जो भेद है, वह आत्म-संयम का ही है। मान लो तुम एक मित्र के यहां गये हो। उस की मेज़ पर लड्डुओं की एक थाली भरी पड़ी है। अगर अब तुम 'आत्म-संयमी हो' तुम्हें अपनी जिह्वा और मन पर निग्रह है तो तुम लड्डुओं की ओर देखना भी पसंद न करोगे। तुम्हारे मित्र के आग्रह करने पर भी तुम लज्जा से एकाध लड्डू लेकर ही शिष्टाचार का परिचय दोगे, पर यदि उसी कमरे में एक बन्दरिया या कुत्ता आजावे, तो क्या वह शिष्टाचार की बाबत कुछ सोचेगा—वह तो झट लड्डूओं पर झपटा पड़ेगा और उन्हें खाने की करेगा। बस यही भेद है। उसे अपनी मनोवृत्तियों पर निग्रह नहीं, पर तुम्हें भूख लगी होने पर भी तुम लड्डू उठाना पसंद न करोगे। इसी प्रकार यदि मित्र की मेज पर कुछ रुपयों का ढेर लगा है और मित्र तुम्हारे आतिथ्य सत्कार के लिए अन्दर गया हो, तो तुम मौका मिलने पर भी उन रुपयों को उठाना पाप समझोगे। पर एक अनात्मसंयमी पुरुष तो धोके से भी मित्र को अन्दर भेज कर रुपये जेब में डालने की करेगा।

इस से स्पष्ट है कि आत्मसंयम सब गुणों का मूलाधार, सभ्यता का प्रथम चिन्ह, धर्म का प्रथम लक्षण और पाशविक जीवन के भेद का परिचायक हैं।

आत्मसंयम मनुष्य को साधुसङ्गति, सदाचार शिक्षा, उत्तम

विद्या. और निरन्तर अभ्यास से आता है। कहते हैं कि एक बार स्वामी रामतीर्थ बाजार में जा रहे थे। उन की दृष्टि सबजी वाले की दुकान पर सजा कर रखे हुए निम्बुओं पर पड़ी। स्वामी जी का चित्त ललचाया और निम्बू खाने के लिए बाधित करने लगा। उन दिनों स्वामी जी आत्मसंयम का अभ्यास कर रहे थे। मन के आवेग और प्रथम प्रलोभन को रोकना उन्हें अभीष्ट था। उन्होंने निम्बू न खरीदा और आगे चले गये। आगे जा कर मन ने और भी बाधित किया और स्वामी जी को वह निम्बू खरीदने पर राजी कर लिया। वे लौट आए, पर दुकान के पास पहुँच कर एक बार फिर मन को फटकार चढ़ाई और बिना खरीदे ही चले गये। आगे जा-कर फिर मन ने तंग किया। इस प्रकार स्वामी जी २-३ बार आए और लौटे। निदान स्वामी जी मन को रोक न सके और उन्होंने निम्बू खरीद लिया। निम्बू लेकर वे घर आ गये। निम्बू की लुभावानी आकृति को देख कर उन की जिह्वा में पानी भर आया। उन्होंने फिर मन को रोका और निम्बू को अलमारी में रख दिया। इस प्रकार कई बार वे निम्बू को उठाते और खाने के लिये तैयार होते, पर फिर मन को समझाते और रुक जाते। तीन चार दिन तक यही युद्ध जारी रहा। अन्त में पाँचवे दिन स्वामी जी ने देखा कि वह निम्बू सड़ गया है। उस समय मन को उस से घृणा थी। प्रयत्न करने पर भी मन उसे खाना न चाहता था।

बस यही हाल आत्म-संयम के अभ्यासी का होता है। पहले तो 'विषय' उस को अपनी ओर बुरी तरह से लुभाता है। पर यदि वह आत्म-संयम में सफल हुआ, तो 'विषय' में स्वयमेव वह आकर्षण शक्ति नष्ट हो जाती है और मन स्वयं उससे घृणा करने

लगता है। इस लिये आत्म-संयम के लिये दृढ़ता और निरन्तर अभ्यास की अत्यन्त आवश्यकता है।

आत्मसंयम एक व्यापक धर्म है। बिना आत्मसंयम के कोई धर्म कर्म सफल नहीं हो सकता। समाज के संगठन और उन्नति के लिये आत्मसंयम अत्यन्त उपयोगी है। आत्मसंयम सुख, शान्ति का साधन है और अनात्मसंयम लड़ाई, झगड़े, दुःख और उपद्रव का मूल है। अनात्मसंयमियों की किसी समाज में नहीं पट सकती। वे मानवीय समाज की उन्नति में कोई भाग नहीं ले सकते। देश, जाति, धर्म और समाज का कल्याण आत्मसंयम से होता है। आत्म-संयमी महानीरोग और हृष्ट पुष्ट होता है। जिनका अपनी ज़बान पर निग्रह नहीं, जो इन्द्रियों के दास हैं, जो विषयों के लोलुप हैं, वे कदापि स्वस्थ नहीं रह सकते। इस प्रकार व्यक्तिगत जीवन और समष्टिगत जीवन दोनों के लिये ही 'आत्मसंयम' अत्यन्त उपयोगी और परम आवश्यक है।

मित्रता (हिन्दीरत्न १९२९)

शीर्षक—मित्रता क्या है ? मित्रता की आवश्यकता और व्यापकता। मित्रता किन में होती है ?—कैसे होती है ? मित्रता का प्रधान अङ्ग, अन्य सहयोगी। सच्चे मित्र का लक्षण—उदाहरण। कपटी मित्र का लक्षण—

उपसंहार—सन्मित्र की महत्ता—सन्मित्र संग्रह में यत्न।

हार्दिक मिलाप या दिली मेल-जोल को मित्रता कहते हैं। दोस्ती, प्रीति, प्रेम आदि मित्रता के ही पर्यायवाचक हैं। मित्रता

एक दैवी शक्ति है जो दो हृदयों को ऐसी दृढ़ता के साथ जकड़ देती है कि उनमें कार्य कारण का ज्ञान असम्भव हो जाता है। जिन के साथ हमारा रक्त-सम्बन्ध नहीं, जिन से हमारा जातीय सम्बन्ध नहीं, धार्मिक सम्बन्ध नहीं—यहां तक कि नाममात्र का भी सम्बन्ध नहीं—ऐसे अपरिचित, अदृष्टपूर्व और अभिनव व्यक्तियों से कई बार ऐसी गूढ़ मित्रता हो जाती है कि बन्धु-बान्धवों का प्रेम उस के आगे कुछ वस्तु नहीं। मनुष्य स्वभाव से ही सामाजिक जीव है। यह अकेला नहीं रह सकता। इसे पग पग पर समाज-साथी-की आवश्यकता रहती है। साथी के बिना इसका जीवन नीरस होजाता है। कारावास में जिस मनुष्य को कड़े से कड़ा दण्ड देना हो, उसे उसके साथियों से पृथक् करके एकान्त-वास का दण्ड देते हैं। इस दण्ड से मनुष्य डरता भी इसी लिये है क्यों कि वह अपनी इस त्रुटि से पूर्ण परिचित है कि एकान्तवास से जीवन दुःखी, कष्टमय और नीरस हो जावेगा। यदि और सूक्ष्म दृष्टि से देखा जावे तो मनुष्य प्रेमी या मित्रता का पुतला है। इस की उत्पत्ति 'प्रेम' से होती है। इस का पालन प्रेम से होता है। इस का वर्द्धन और विकास भी प्रेम से होता है। यह प्रेम से जीता है, और प्रेम के बिना मर जाता है। प्रेम ही इस का जन्मदाता है। प्रेम ही इसके जीवन का आधार है, और प्रेम ही के लिये यह सब कुछ करता है। उसकी सारी कामनाएं, सारी प्रवृत्तियां, सारे कर्म और सारा जीवन प्रेम के दिव्य स्रोत से प्रवृत्त हो कर प्रेम जल से सिञ्चित तथा परिप्लावित होते हैं। प्रेम में ही यह सुख अनुभव करता है और प्रेम के कारण ही यह दुःख का मान भी नहीं करता। इस कष्ट परिपूर्ण और दुःखमय संसार में

प्रेम का दीपक ही इस हृदयमन्दिर में प्रकाश रखता है और प्रेम का सूत्र ही इस संसार से जकड़ कर जीने की इच्छा और यत्न शील बनाए रखता है। बस प्रेम ही इस के जोवन का सहारा है। प्रेम ही इस का परम लक्ष्य है प्रेम ही इस का पिता और परमात्मा है।

अतः मनुष्य के लिये मित्रता या प्रेम एक अनिवार्य और परमावश्यक पदार्थ है जिस के विना इसका जीवन नीरस और दुर्वार हो जाता है। मित्रता वह चिन्तामणि है जिसे प्राप्त करके मनुष्य सांसारिक कष्टों की परवाह न करके बन्धुबाधवों को ठुकरा कर जीवन संग्राम में अग्रसर होता है।

मित्रता होने का कोई नियम नहीं बताया जा सकता। यह एक आन्तरिक उल्लास है जो कृत्रिम साधनों की अपेक्षा नहीं रखता। मित्रता के लिये किसी 'शर्तनामे' की आवश्यकता नहीं। शर्तनामे से की हुई मित्रता, मित्रता नहीं कहलाती ; वह तो स्वार्थ साधन, या सन्धि हो जाती है। मित्रता के लिये कुल, रूप, धन, शक्ति आदि की आवश्यकता नहीं। मित्रता का बीज या प्रधान अङ्ग 'प्रेम' है और 'प्रेम' कभी बाह्य आडम्बरों के वशीभूत नहीं होता। मित्रता तो हृदय का मेल है। इस में हृदय की सफाई और पवित्रता की आवश्यकता है। हृदय हृदय को खींचता है। इस लिये मित्रता ईश्वरीय प्रेरणा या हार्दिक आकर्षण से होती है। जहां प्रेम होगा वहीं मित्रता हो सकनी है। 'समान शीलता' और 'समान व्यसनिता' भी कुछ सीमा तक मित्रता के सहयोगी अङ्ग हैं। साधारणतया समान आयु वाले, समान कुल वाले, समान आर्थिक अवस्था वाले, इकट्ठे पढ़ने वाले, इकट्ठे काम करने वाले, समान

धर्म वाले, समान विचार वाले, समान स्वभाव वाले और समान प्रयोजन वालों में मित्रता होने की बड़ी सम्भावना होता है। इन्हीं में मित्रता की अनुकूल परिस्थिति होती है, और प्रायः इन्हीं में मित्रता होती है। अननुकूल परिस्थितिवालों में—'पुष्ट विपुष्टों में' परस्पर मित्रता नहीं होती। परस्पर प्रेम, और परस्पर विश्वास मित्रता की पुष्टि के लिये परमावश्यक गुण हैं। संमति, सत्यता और सहानुभूति मित्रता निभाने के मुख्य मंत्र हैं। इस प्रकार ईश्वरीय या आन्तरिक प्रेरणा से उत्पन्न, प्रेम जल से अङ्कुरित और विश्वास-वारि से सिञ्चित और संमति, सत्याचरण और सहानुभूति के खाद्य से परिवर्द्धित मित्रतावल्ली उन अमृतरसमय मधुर दिव्य फलों को देती है जिन की तुलना इस संसार में नहीं।

सच्चा मित्र एक अमूल्य रत्न है जिस की प्राप्ति सुकर नहीं। यह भाग्य से ही किसी महापुरुष को मिलता है। मित्र के प्रेम के सन्मुख माता की ममता, पिता का प्रेम, बहिन का स्नेह, भाई का प्रेम और बन्धुबान्धवों का अनुराग सब भूल जाता है। जो बात हम पिता से कहते हुए डरते हैं, भाई से कहते हुए शर्माते हैं, माता से कहते हुए लजाते हैं, वह बात हम मित्र से निःसङ्कोच और निःशङ्क कह डालते हैं। मित्र हमारे हृदय के अन्तस्तल में विराजमान होता है। उस से कोई रहस्य छिपा नहीं। वह हमारे सुख दुःख का सङ्गी है, विपत्ति में सहायक और अड़े समय में काम आने वाला है।

एक हिन्दी कवि ने सच्चे मित्र के सम्बन्ध में लिखा है :—

कुपथ निवारि सुपन्थ चलावा। गुण प्रकटहिं अवगुणहिं दुरावा॥

देत लेत मन शङ्क न धरहीं । बल अनुमान सदा हित करहीं ॥
विपति काल कर शतगुण नेहा । श्रुतिकर सत्य–मित्र गुण येहा ॥

सच्चा मित्र जितना उपकारी है, कपटी मित्र उस से कहीं अधिक हानिकारक है । मनुष्य को कपटी मित्र से सदा बचना चाहिये । कपटी मित्र स्वार्थी होता है । वह सुखों में आगे रहता है, दुःख में छोड़ जाता है । मनुष्य को शत्रु से इतने भय की आशङ्का नहीं होती, जितनी कपटी मित्र से । कपटी मित्र का लक्षण यह है:—

आगे कह मृदु वचन बनाई । पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥
जाकर चित अहिगति सम भाई । अस कुमित्र परिहरे भलाई ॥
सेवक शठ, नृप कृपण, कुनारी । कपटी मित्र, सूलसम चारी ॥

भारत के इतिहास में सच्ची मित्रता के उदाहरणों की कमी नहीं । भगवान् कृष्ण और सुदामा की कथा को सभी जानते हैं । कृष्ण और सुदामा की मित्रता 'आदर्शमित्रता' समझी जाती है । इस की तुलना अन्यत्र नहीं मिलती । राम सुग्रीव की यद्यपि राजनीतिक मित्रता थी, पर सत्पुरुषों की नैमित्तिक मित्रता भी आदर्श मित्रता के रूप में परिवर्तित हो जाती है ।

सच्चा मित्र वास्तव में ईश्वर की दया से ही मिलता है । मनुष्य को प्रारम्भ में बड़ी सावधानी से मित्र बनाना चाहिये, मित्र के चुनाव में बड़ी बुद्धिमत्ता से काम लेना चाहिये । पर जब बड़े निरीक्षण और परीक्षण द्वारा जांच करके मित्र बना लिया जावे, तो उसे फिर लोहे की जंजीरों के समान अपने हृदय में

जकड़ लेना चाहिये और कभी किसी भी परिस्थिति में मित्रद्रोह या मित्रघात न करना चाहिये।

सन्मित्र संग्रह से मनुष्य की शक्ति बढ़ती है। इस का मान होता है। शत्रु उससे डरते हैं। उसे विविध कार्यों में सफलता मिलती है। सन्मित्रता सामाजिक जीवन का प्रथम मूलमंत्र है। समाज की सृष्टि मित्रता से प्रारम्भ होती है। सामाजिक विकास के लिये प्रेम और मित्रता मुख्य अङ्ग हैं।

पति-भक्ति (हिन्दीरत्न १९३१)

शीर्षक—पतिभक्ति क्या है?—पतिभक्ति की आवश्यकता।

पतिभक्ति के लाभ—पतिभक्त रमणियों के जीवन।

उपसंहार—भारतवर्ष में पतिभक्ति की महिमा—स्त्री जाति के चरित्र का उच्चतम आदर्श और उन्नततम विकास।

पति की तन-मन से सेवा करने का नाम पति भक्ति है। अपने आचरण से, अपने कर्म से, अपने मधुर भाषण से, अपने अनन्य और सच्चे प्रेम से पति को रिझाने और प्रसन्न रखने को पति-भक्ति कहते हैं। एक पति-भक्त नारी के लिये उस का सब कुछ पति-देव है। उस का स्वामी उस का भर्ता, उस का पूजनीय इष्टदेव, उस का प्रियतम प्रणयपात्र, उस के हृदय मन्दिर का देवता, उस की आत्मा का अधीश, उस के शरीर का मालिक, उसकी आराधना का देवता सब कुछ पति है। वह माता की ममता को त्यागती है, पिता के प्रेम को छोड़ती है, भाई बहिनों से बिछुड़ती है, मायके के मोह-पाश तोड़ती है और सादर पति-चरणों में उपस्थित रह कर उसी के नाम की माला जपती है। उसी के सुख-दुःख की

वह सङ्गिनी है। वह उसके हर्ष में हर्ष, और विषाद में विषाद मनाती है। उस की प्रसन्नता में प्रसन्न और उस के दुःख से वह दुःखी होती है।

पति अन्धा हो, लूला हो, लङ्गड़ा हो, रोगी हो, एक पति-भक्त नारी के लिये वही उस का सर्वस्व है। वह उसी की आराधना में तत्पर रहती है। विकट से विकट विपत्ति के समय भी वह उस को नहीं छोड़ती। यहाँ तक कि पति के स्वर्गवास होने पर भी वह अतीत स्मृतिवश अपने चरित्र की पालना करती है और सांसारिक रूप में अपना विध्वंस करके भी पति से ही मानसिक सम्बन्ध रखती है।

संसार में मनुष्य प्रेम का पुजारी है। उसे जीवनसंग्राम के लिये 'साथी' की आवश्यकता है। वह अकेला कुछ नहीं कर सकता संसार वृद्धि के लिये भी उसे सहचरी की आवश्यकता है। इसी प्राकृतिक नियम के अनुसार मनुष्य का विवाहसम्बन्ध होता है। स्त्री को उसका साथी या सहचर मिल जाता है और पुरुष को उस की सहचरी मिल जाती है। वैवाहिक सम्बन्ध के साथ उन के हृदयों का भी संमिलन हो जाता है और प्रेम के दृढ़ रज्जुपाश से वे दोनों बान्ध दिये जाते हैं। अब यदि पारिवारिक जीवन को स्वर्गीय, दिव्य सुखका केन्द्र बनाना हो, यदि वास्तविक आनन्द का अनुभव करना हो, यदि संसार की दुर्गम घाटियों की यात्रा के कष्टों के निवारण के लिये शीतल मन्द वायु की आवश्यकता हो तो पति पत्नी को प्रेम और आत्म-समर्पण के भावों से प्रेरित होकर बरतना होगा। इसी आत्म-समर्पण को पतिभक्ति या पत्नीभक्ति कह सकते हैं। यदि पत्नी में प्रेम नहीं, यदि उसने

पति के हृदयमन्दिर में आसन प्राप्त नहीं किया, यदि उसने पति के पवित्र चरणों पर अपने आप को नहीं चढ़ाया, तो मान लो कि उस परिवार में सुख का नाम नहीं। सम्पत्ति वहां से कोसों दूर भागेगी। वहां कलह और विपत्ति का राज्य होगा। वहां आगे सन्तान भी ऐसी उत्पन्न होगी जो कुल का नाश, जाति का ह्रास और देश का अधःपतन करेगी। पति पत्नी में जहां परस्पर विश्वास नहीं, सहिष्णुता नहीं, भक्ति नहीं, वहां की जीवन-लतिका मुरझाई हुई ही समझनी चाहिये। अतः जीवन को सुखी, सम्पत्तिशाली, शान्त और आनन्दमय बनाने के लिये, जीवनसंग्राम में डटकर भाग लेने के लिये और प्रेमरस का वास्तविक आस्वादन करने के लिये तथा संसार को उत्तम सन्तान देने के लिये स्त्री को पति-भक्ता होना नितान्त आवश्यक है। अपतिभक्त नारियां पति से तिरस्कृत होकर, गृहजनों से अपमानित, और बन्धु बांधवों से निन्दित होती हैं। उनका जीवन दुःखी और घृणित होता है। उनके कृत्य बहुधा नारकीय हो जाते हैं।

पतिभक्ति से इस संसार में ही स्वर्ग मिल जाता है—इस में सन्देह नहीं। जो नारी अपने सद्गुणों से पति को प्रसन्न कर सकती है वह परमात्मा को भी प्रसन्न कर सकती है। पति-भक्ति से सुख मिलता है, यश मिलता है, कीर्ति मिलती है, सर्वत्र मान, प्रतिष्ठा और पूजा होती है। समाज उसे नारीरत्न समझता है। माता पिता ऐसी पुत्री से अपने आप को गौरवान्वित समझते हैं। पति उसे हृदयेश्वरी और हृदय की पटरानी बनाता है। पतिभक्ति से अबला नारी में वह दिव्य-शक्ति पैदा

हो जाती है जिस के बल से असहाया सीता ने रावण जैसे महाबली को फटकार दिया और द्रौपदी ने कीचक को मरवा दिया। स्त्री का सतीत्व उस की सदा रक्षा करता है। चरित्रबल महान् बल होता है और इसकी प्राप्ति पतिभक्ति द्वारा होती है।

भारतवर्ष में सीता, सावित्री, दमयन्ती आदि के नाम आज भी सादर लिये जाते हैं। मुगल समय में भी सैंकड़ों वीर राजपूत-रमणियां ऐसी हुई हैं जिन्हों ने पतिव्रत-धर्म के पालन में असीम विक्रम दिखाकर अपने नाम को अमर कर दिया है। दुर्गावती और पद्मावती के नाम सब जानते हैं।

भारतवर्ष में अतिप्राचीन काल से पतिभक्ति की बड़ी महिमा मानी गई है। भारतवर्ष की स्त्रीजाति ने अपने चरित्र का जो उच्चतम विकास इस पहलू में दिखाया है, उसकी उपमा अन्यत्र नहीं मिलती। कहा जाता है भारत की स्त्रियां असभ्य और अनपढ़ हैं। हम पूछते हैं सभ्यता किसे कहते हैं। अगर सभ्यता सचाई, सादगी, साधुता, सतीत्व और चरित्र की उच्चता में है तो भारत जैसी सभ्य नारियां कहीं मिलेंगी? हां, अगर सभ्यता मक्कारी, झूठ, धोखा देने और चरित्रभ्रष्टता का नाम है तो भारत की स्त्री-जाति भले ही असभ्य कही जावे। स्त्रियों के इस उच्च आदर्श के कारण भारत का मस्तक आज भी ऊंचा है। पारिवारिक जीवन का जो सुख भारत में आज भी विद्यमान है, उस का लेश भी सभ्य और उन्नत कहाने वाले देशों में नहीं है।

स्वदेशी आन्दोलन (हिन्दी रत्न १९२८)

शीर्षक—स्वदेशी आन्दोलन क्या है ?

स्वदेशी आन्दोलन की आवश्यकता, इतिहास तथा साधन।

स्वदेशी से लाभ—राजनीतिक, व्यापारिक, आर्थिक, शिल्प और कला की दृष्टि से।

उपसंहार—देशभक्ति और स्वदेशी, स्वराज्य और स्वदेशी।

अपने देश की बनी हुई वस्तुओं के प्रयोग की सार्वजनिक प्रेरणा को स्वदेशी-आन्दोलन कहते हैं। एक समय था जब हमारा देश अपनी आवश्यकताओं को आप पूरा कर, लेता था। पर विदेशी राज्य के प्रादुर्भाव के साथ पाश्चात्य सभ्यता का भी आगमन हुआ और उस की चकाचौंध से भारतवासी बुरी तरह चुन्धिया गये और अन्धों की तरह उसकी ओर बह गये। परिणाम यह हुआ कि भारतवासियों की आवश्यकताएं बदल गईं और बढ़ गईं। अब उन्हें अंग्रेजों का अनुकरण करने के लिये उन्हीं जैसे घर और उन्हीं जैसी अन्य जीवन सामग्री की आवश्यकता हुई। इन की प्राप्ति भी उन्हीं के देश से हो सकती थी। इधर अंग्रेज—जिन का भारत के साथ प्रथम संपर्क व्यापारी के रूप में हुआ था—अपने व्यापार की वृद्धि के लिये अपना माल यहां भेजने लगे। अंग्रेजों को अपना माल बेचने के लिये भारतवर्ष एक अच्छी मंडी मिल गया जहां पर करोड़ों रुपयों के माल की खपत होने लगी। परिणाम यह हुआ कि भारतवासी दिन प्रतिदिन कङ्गाल होने लगे और विदेशी मालामाल हो गये।

इस प्रकार नदीप्रवाह में बहते हुए देश के धन को देखकर देश के विचारक और सुधारकों ने यह सोचा कि देश की आर्थिक दशा को उन्नत करने के लिये यह आवश्यक है कि लोगों को स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग की प्रबल प्रेरणा की जावे जिस से देश का धन देश में ही रहे। इस के लिये अखबारों में लेख लिखे गये, व्याख्यान दिये जाने लगे और अन्य प्रकार से स्वदेशी की प्रेरणा की जाने लगी। इस आन्दोलन के प्रचार का नाम ही स्वदेशी-आन्दोलन है।

कहने को तो स्वदेशी की रट बहुत दिनों से लगाई जा रही है. और कांग्रेस के जन्म के साथ ही इस का भी जन्म हुआ मानना चाहिये, पर वास्तविक रूप से उद्योग और सफलता इसे बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही हुई है। बङ्ग-विच्छेद के समय यह आन्दोलन बङ्गाल से उठा, पर चिरस्थायी न रह सका। इस के पश्चात् इसे महात्मा गांधी ने अभिनव रूप दिया और सन् १९१९ से यह बराबर जारी है। बीच में कभी कभी शिथिल हो जाता है और कभी कभी फिर ज़ोरों पर आ जाता है।

स्वदेशी-आन्दोलन के लिये प्लेटफार्म और प्रैस की सहायताके अतिरिक्त पिकिटिंग भी किया जाता है। कई नवयुवक और स्त्रियाँ बाज़ारों में खड़े होकर विदेशी वस्तुएँ खरीदने वालों को व्यक्तिगत रूप में मना करते हैं। इसी प्रकार व्यापारियों और दुकानदारों को भी विदेशी माल न मंगवाने की प्रेरणा करते हैं। स्वदेशी की सर्वप्रियता के लिये प्रदर्शनियों की आयोजना की जाती है। इस प्रकार स्वदेशी-आन्दोलनों को सफल बनाने के लिये कई साधन प्रयोग में लाये जाते हैं।

स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग न करने से कोई भी देश अधोगति से नहीं बच सकता। जहां देश के करोड़ों रुपये विदेशी माल को खरीदने के लिये बाहर चले जाते हैं, वहां देश के अपने कारीगर और शिल्पी भूखे मरने लगते हैं। देश की अद्भुत कलाओं का नाश हो जाता है देश में बेकारी बढ़ जाती है। भारत जैसा पुरातन देश जो एक समय सभ्यता, कलाकौशल और व्यापार में सब देशों का अग्रणी थी, आज विदेशी वस्तुओं के प्रयोग के कारण भूखा मर रहा है। काश्मीर के शाल दोशाले और ढाके की मलमल को बनाने वाले कारीगर आज भीख मांग रहे हैं। भारत का कला कौशल नष्ट हो रहा है। यह स्मरण रखना चाहिये कि देश की साधारण सम्पत्ति में वृद्धि करने वाले वे लोग नहीं हो सकते जो सरकारी नौकरियां से हज़ारों रुपये मासिक कमाते हैं, वे भी नहीं जो वकीली या डाक्टरी करके धन इकट्ठा करते हैं। वे केवल धन को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने वाले व्यक्ति हैं। इन की कमाई से देश के 'साधारण धन' में कोई वृद्धि नहीं होती। देश के वास्तविक धन के उत्पादक तथा वर्द्धक हमारे शिल्पी, हमारे व्यापारी और हमारे कृषक लोग हैं। इन्हीं की कमाई से देश के साधारण धन में बढ़ती हो सकती है।

स्वदेशी के अभाव में हमारे शिल्पी भीख मांगते हैं, कृषक पेट भर भोजन नहीं पाते और व्यापारी केवल विदेशी व्यापारियों के ऐजण्ट मात्र रह जाते हैं। स्वदेशी से ही हम भारत की प्राचीन कलाओं की उन्नत्ति के साथ २ आधुनिक औद्योगिक धन्धों के प्रचार द्वारा देश को समृद्ध और सम्पत्तिशाली बना सकते हैं।

स्वदेशी से हम अपने करोड़ों देश भाइयों को 'काम' और 'रोटी' दे सकते हैं। स्वदेशी से ही हम अपने व्यापार में उन्नति कर सकते हैं। देश की बेकारी, गरीबी, और बहुत सीमा तक दासता और परतन्त्रता को स्वदेशी से ही दूर किया जा सकता है।

राजनीतिक रूप में हम स्वदेशी के द्वारा ही अपनी स्वाधीनता प्राप्त कर सकते हैं। इस से विदेशों के व्यापार को हानि पहुंचेगी। भारत जैसी समृद्ध मण्डी उन के हाथ से जाती रहेगी। फिर वे अपना घाटा पूरा करने के लिये हम से सन्धि करने पर बाधित होंगे। इस प्रकार एक पराधीन देश के पास राजनीतिक दृष्टि से 'स्वदेशी' वह अमोघ और उग्र शास्त्र है जिस के प्रहार से सफलता निश्चित है।

व्यापारिक और आर्थिक दृष्टिकोण से भी स्वदेशी उपादेय है। कई बार व्यापारी भावना से यह कहा जाता है कि विदेशी सस्ती चीज़ के मुक़ाबिले में हम देशी महंगी चीज़ क्यों लें? यह मिथ्या भ्रान्ति है और अदूरदर्शिता पर निर्भर है। मान लो एक देशी लोहार हमें चार आने में चाकू देता है और एक विदेशी चाकू हमें तीन आने में मिलता है। अब देखना यह है कि लोहार के चार आने सांझ पड़ते ही हमारे पास पहुंच जाएंगे। वह खाने के लिये आटा लेगा, पहनने के लिये कपड़े लेगा और अन्य जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये हमारे पास ही आएगा। इस प्रकार उस के चार आने तो देश की सम्पत्ति हैं। हां, उसे और उसके कुटुम्ब को उसके परिश्रम और मेहनत के लिये रोटी और कपड़े आदि मिल गये। पर विदेशी चाकू पर व्यय किये हुए तीन आने झट सात समुद्र पार पहुंच

जावगे और उन में से आपके देश में कमीशन के रूप में एकाध पैसा रह जावे तो रह जावे, नहीं तो कुछ न रहेगा। इसी प्रकार यदि चमार अपने शस्त्र लोहार से न ले, और लोहार अपने जूते चमार से न ले और दोनों ही विदेशी जूते और शस्त्र खरीदने लगें तो परिणाम यह होगा कि दोनों ही भूखे मरेंगे।

इस प्रकार व्यापारिक भावना से स्वदेशी वस्तुओं को महंगा कहना भ्रममात्र है। अतः प्रत्येक वस्तु खरीदते समय हमें स्वदेशी की वृद्धि की ओर पूरा ध्यान रखना चाहिये। भूल कर भी विदेशी वस्तु न लेनी चाहिये।

स्वदेशी न केवल राजनीतिक आन्दोलन है, अपितु इस में व्यापारिक और आर्थिक उन्नति, समाजोद्धार, धर्म, पुण्यकर्म, और देशभक्ति सब कुछ कूट २ कर भरा पड़ा है। स्वदेशी से ही हम अपने देश का उद्धार कर सकते हैं। भारत में फिर से सुख शान्ति और समृद्धि की नदियां बहा सकते हैं। आर्थिक उन्नति के साथ कला कौशल शिल्प की उन्नति होगी। देश से कंगाली दूर होगी। स्वदेशी से ही भारत को स्वाधीनता मिल सकती है। स्वदेशी से ही स्वराज्य प्राप्त होगा और स्वदेशी से ही देश में ऐसी उपयोगी परिस्थिति उत्पन्न की जा सकती है जिस से मस्तिष्क का विकास होगा और देश वासी भी नए नए आविष्कार करने और क्रियोन्नति में पाश्चात्य देशों की भान्ति अग्रसर होंगे।

एकता (हिन्दीरत्न १९३१)

शीर्षक—एकता का लक्षण, आवश्यकता और व्यापकता। एकता से लाभ, एकता न होने से हानि—उदाहरण।

उपसंहार।

बहुत सारे मनुष्यों का मिल कर कार्य करना या इकट्ठ करने को एकता कहते हैं। किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिये मिल जाना या मिलाप करना भी एकता है। वैसे भी आत्मरक्षा, शान्ति और समृद्धि के लिये मिल जुल कर रहना एकता कहाती है। एक मत, सहानुभूति, सहिष्णुता, भ्रातृभाव आदि से वर्ताव करना भी एकता का चिन्ह है। बरादरी, जाति, समाज आदि सब एकता के ही अवान्तर रूप हैं।

संसार में एकता अत्यन्त आवश्यक गुण है। सफलता और सिद्धि के लिये एकता का होना नितान्त आवश्यक है। एकता एक सर्वव्यापिनी शक्ति है जिस का प्रभाव सर्वत्र दृष्टि-गोचर होता है। एक घास का तिनका अकिंचन और अकार्थ है, पर उन के इकट्ठ से—उन की एकता से—बनी हुई रस्सी उद्दण्ड से उद्दण्ड हाथी को भी वश में रखने में समर्थ है। एक मिट्टी का रेणु निकम्मा और व्यर्थ है, पर रेणुओं के इकठ्ठ से बनी हुई ईंट और ईंटों के इकट्ठ से बने हुए मकान और महल अत्यन्त उपयोगी और चिरस्थायी होते हैं। पानी के एक २ बिन्दु से तालाब भर जाते हैं, नदियों में भयानक बाढ़ आ जाती है और समुद्र में भयानक तूफ़ान आ जाते हैं जो बड़े २ जहाज़ो को भी डुबो देते हैं—क्या यह पानी की बूंदों की एकता का परिणाम नहीं? इस लिए एकता ही संसार में शक्ति है. एकता ही बल है

और एकता ही सफलता की कुंजी है। छोटी २ चींटियां भी मिल कर एक महान् सर्प को वश में कर लेती हैं। इस से भी सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो संसार में अकेली कोई वस्तु कोई काम नहीं करती। यह संसार भी परमाणुओं के इकट्ठ से बना है। एकता में सुन्दरता भी है। अकेला फूल, अकेला मोती, अकेला हीरा शोभायमान नहीं होता, पर माला के रूप में—एकता करके—उसकी शोभा दिव्य हो जाती है; उसका मूल्य बढ़ जाता है, उपयोग बढ़ जाता है और शक्ति बढ़ जाती है। अतः एकता में शक्ति और सौन्दर्य दोनों का वास है।

इसी प्रकार अकेला मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। वह अत्याचारों का प्रतिरोध नहीं कर सकता। आत्मरक्षा नहीं कर सकता। किसी कार्य को नहीं उठा सकता। कोई व्यापार नहीं कर सकता। यहां तक कि अपनी आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर सकता। उसको जीवित रहने के लिए, कार्य करने के लिए, व्यापार करने के लिए, अपना सुधार करने के लिए, एकता की परम आवश्यकता है।

एकता के बिना कोई परिवार, कोई जाति, कोई समाज और कोई देश उन्नति नहीं कर सकता। बीमारी में, आपत्ति में, सङ्कट में, दु:ख में,एकता ही काम आती है। विरोधियों का दमन, शत्रुओं का नाश, प्रतिद्वन्द्वियों का मुद्रण सब एकता से ही सिद्ध होते हैं। यदि घर में एकता है तो सुख है, शान्ति है तो आनन्द है। यदि एकता नहीं तो दु:ख है, कलह है, और अन्त को विध्वंस है। जो जाति एकता से रहती है, वह सदा उन्नति करती है। अपने अपने दु:खों का प्रतिवाद कर सकती है। जिस जाति में एकता

नहीं, वह पद-दलित होकर परतन्त्रा की बेड़ियों से जकड़ी जाती है और सिसक सिसक कर मर जाती है। यही हाल देश का है। जितने भी उन्नत देश हैं उन में एकता की शक्ति पाई जाती है। उनका मत, उनका वेश, उनका उद्देश्य, उनका विधेय सब एक हैं। वे मिल कर कम्पनियां बना कर व्यापार करते हैं, मिल कर सभायें बना कर—समाजोद्धार करते हैं, बड़े २ आन्दोलन करते हैं—जो चाहते हैं करा लेते हैं। एकता का पूर्ण आदर्शरूप हमारे शासक अंग्रेज़ हैं। इनका देश देखो एक छोटा सा टापू है—पहाड़ी इलाका है—जहां मारे सरदी के और कुछ नहीं। लोहे और कोयले के सिवाय कुछ और वस्तु प्राप्त नहीं—पर उनकी शक्ति देखो, उन के साम्राज्य का प्रसार और विस्तार देखो, उनकी सभ्यता का प्रचार देखो—उनके बल, बुद्धि और मस्तिष्क का चमत्कार देखो तो संसार अवाक् रह जाता है। यह सारा चमत्कार एकता का है। उनका शिष्टाचार, भाषा, वेश, यहां तक कि चलते समय उनकी गति भी एक होती है। इन के प्रतिकूल हमारे देश की दुर्दशा देखो—यह सोने की चिड़िया, यह इतना बड़ा और उपजाऊ देश, इतनी प्राकृतिक समृद्धि यहां पर होने पर भी अपनी फूट, कलह, वैमनस्य, अनेकता के कारण सदियों से दासता के पंजे में है। यहां के ध्येय अलग, इष्टदेव अलग, शिष्टाचार अलग, वेष, भाषा और भोजन अलग। यहां के लोग मिल कर व्यापार नहीं कर सकते। किसी एक उद्देश्य की सिद्धि के लिए मिल नहीं सकते। किसी एक आन्दोलन में पूरा योग नहीं दे सकते। किसी बात के लिए सभा में उपस्थित तक नहीं हो सकते। इसी लिए ये अपने अत्याचारों का प्रतिकार नहीं

कर सकते। इन में बल नहीं, शक्ति नहीं। यह सब कुछ फूट या अनेकता का दुष्परिणाम है। परमात्मा करे भारतवासियों को भी एकता के दिव्य यन्त्र की महिमा मालूम हो और ये एकता के सूत्र में बन्ध कर अपना, अपनी जाति और अपने देश का कल्याण करें।

अभ्यासार्थ कुछ प्रस्तावों के शीर्षक

—:०:—

धैर्य (हिन्दी रत्न १९३०)

धैर्य का लक्षण—स्थिरता और दृढ़ता का नाम धैर्य है। चित्त को विपत्ति और सङ्कट के समय भी विचलित न होने देना—दु:ख के समय न घबराना धैर्य है। संपत्ति और सुख के समय भी चित्त को स्थिर रखना—अभिमान, और घमण्ड न करना—अपने आप से बाहर न होना भी धैर्य है।

धैर्य की आवश्यकता और व्यापकता—धैर्य स्वभाविक गुण—धर्म का प्रथम लक्षण है।

संसार के सारे कार्य धैर्य से सिद्ध होते हैं। जिसका मन जितना स्थिर और दृढ़ है, वह उतना ही सफलमनोरथ और कृतकार्य होता है। अधीर-चपल-मनुष्य प्रायः नाम को बिगाड़ देते हैं। जो थोड़े में घबरा जाते हैं, उन की बुद्धि और विवेक नष्ट हो जाते हैं। वे कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान से शून्य होकर विपत्ति का प्रतिकार नहीं कर सकते। ऐसे ही मनुष्य चित्त-विक्षोभ के

कारण कई बार आत्महत्या तक कर लेते हैं। धीर मनुष्य का मन विचलित नहीं होता, वह बुद्धि और विवेक द्वारा दुःख और आई हुई विपत्ति को टाल देता है।

उदाहरण:- असहाय राम ने निर्जन वनों में अपनी अद्भुत धीरता के कारण विजय प्राप्त की। युधिष्ठिर की धीरता देखो। सावित्री और सीता के धैर्य का उदाहरण देखो। संसार में वणिज व्यापार, कृषि, विद्याध्ययन, और अन्य कार्य धैर्य से ही चलते हैं। अधीर होकर कुछ नहीं बनता।

उपसंहार—धैर्य ही विलक्षण गुण है जिस के बिना धर्म कर्म कुछ नहीं बनता। न लोक में सफलता मिलती है, न परलोक सुधरता है। अध्यात्मिक उन्नति और सामाजिक संगठन के लिए धैर्य अत्यन्त उपयोगी गुण है। धीर मनुष्य उस अटल चट्टान की तरह है जो समुद्र की लहरों की विघ्न बाधाओं की कुछ परवाह न करके डट कर जमी रहती है। अधीर पुरुष तो प्रवाह में बह जाते हैं।

व्यायाम

व्यायाम का लक्षण तथा प्रकार—स्वास्थ्य—वृद्धि के लिए शारीरिक श्रम का नाम व्यायाम है। कसरत करना या वरजिश करना इसी को कहते हैं। दण्ड पेलना, बैठक निकालना, भागना, कुश्ती लड़ना, आदि व्यायाम के कई प्रकार हैं। खेलना, कूदना, भ्रमण करना, सैर करना, तैरना, शिकार खेलना आदि भी व्यायाम में सम्मिलित हैं।

व्यायाम के लाभ—इस से शरीर संगठित होता है, स्वास्थ्य

बढ़ता है। मनुष्य नीरोग और प्रफुल्ल बदन रहता है। रुधिर साफ होता है और बढ़ता है। पाचन शक्ति बढ़ती है। अङ्ग सुसंगठित और बलिष्ठ होते हैं। मन प्रसन्न होता है; चुस्ती, फुरती आती मस्तिष्क तेज होता है। बुद्धि तीक्ष्ण हो जाती है। व्यायाम से स्वास्थ्य और स्वास्थ्य से सब कार्य व्यवहार चलते हैं।

व्यायाम कितना करना चाहिए? अधिक व्यायाम से हानि—व्यायाम साधारणतया पसीना आने तक करना चाहिये। व्यायाम करते समय अपने शरीर की शक्ति और बल का पूरा ध्यान रखना चाहिए। शक्ति से बढ़ कर व्यायाम करना—थक कर चूर होना—क्षीणता का कारण है। इस से फेफड़े खराब हो जाते हैं। मनुष्य क्षय रोग के पंजे में फंस जाता है। मस्तिष्क मन्द पड़ जाता है, और मनुष्य क्षीणायु होता है।

उपसंहार—व्यायाम युक्तियुक्त अत्युपयुक्त है, पर असंयम से किया हुआ हानिप्रद है। व्यायाम के साथ अच्छे भोग करना आवश्यक है।

भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि

(हिन्दीरत्न १९२७)

राष्ट्रनिर्माण के लिए एक राष्ट्रभाषा और एक लिपि की आवश्यकता—परस्पर संगठन और संव्यवहार के लिए एक भाषा अत्यन्त आवश्यक है।

राष्ट्र भाषा कौन सी भाषा हो? भारतवर्ष में प्रचलित प्रान्तिक भाषाओं में हिन्दी राष्ट्र भाषा होने के योग्य है। इसका प्रसाद

और विस्तार सब से अधिक है—सब प्रान्तों में समझी जाती है। इसका साहित्य सब से अधिक और उच्च कोटि का है। इसका शब्द भण्डार प्रत्यक प्रकार के साहित्य की उन्नति के लिए उपयोगी है। अन्य वंगाली, मराठी, पंजाबी आदि स्थानीय भाषाएँ होने से राष्ट्र भाषा नहीं बन सकतीं। अँग्रेज़ी भी राष्ट्र भाषा नहीं हो सकती। लिपि भी देवनागरी सब से उत्तम है। सर्वत्र पढ़ी जाती है। यह वैज्ञानिक और परिपूर्ण लिपि है। इस में भारत की सभी भाषाएँ लिखी जा सकती हैं। बस हिन्दीभाषा और देवनागरी-लिपि ही राष्ट्र भाषा और राष्ट्र-लिपि हो सकती हैं।

उपसंहार—हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाए बिना हमारा निस्तार नहीं। देश की उन्नति, समाजोद्धार, स्वराज्य और साहित्यिक उन्नति इसके बिना न होगी। प्रत्येक देशवासी का प्रधान कर्तव्य है कि हिन्दी को अपनाएँ और इसका प्रचार करें।

द्वेष (हिन्दी रत्न १९३३)

द्वेष क्या है ? दूसरे का अनिष्ट चिन्तन—दूसरे की बढ़ती देख कर दुःखना और उस से दुश्मनी करना। द्वेष हृदय की कृपणता और छोटेपन की निशानी है।

द्वेष से हानि—द्वेष से मनुष्य का हृदय अशान्त रहता है। स्वास्थ्य बिगड़ता है, आदमी सदा दुःखी रहता है। उसका स्वभाव चिड़चिड़ा होता है। द्वेष करने से द्वेष्य को कोई हानि नहीं, करने वाले का ही हानि होती है। सामाजिक जीवन की जड़ों पर कुठाराघात द्वेष ही करता है। द्वेष से ही जातियां

और देश नष्ट होते हैं। भ्रातृद्वेष से महाभारत युद्ध हुआ। फूट और द्वेष से ही राजपूतों की बहादुरी मट्टी में मिली। द्वेष से ही भारत नीचे गिरा।

उपसंहार—द्वेष एक घुन के कीड़े की तरह है जो मनुष्य को अन्दर ही अन्दर खा जाता है। यह अत्यन्त घृणित दुर्गुण है जो मनुष्य में अन्य गुणों की उत्पत्ति को रोकता है। किसी को द्वेष नहीं करनी चाहिए।

स्त्री-शिक्षा

शिक्षा का अर्थ—शरीर, मन, मस्तिष्क और आत्मा की छिपी शक्तियों को विकसित और परिवर्द्धित करना शिक्षा कहाता है।

स्त्री शिक्षा की आवश्यकता—स्त्रियों को भी पढ़ी लिखी होना चाहिए। अनपढ़ स्त्रियां घर और समाज पर भार हैं। समाज रूपी रथ के पुरुष और स्त्रियां दो पहिये हैं। एक शिक्षित और दूसरा अशिक्षित होने से वह समाज रथ गति-शील और उन्नति-शील नहीं हो सकता। स्त्री घर की देवी है। गृह प्रबन्ध के लिए भी शिक्षा की आवश्यकता है। अनपढ़ स्त्रियां न अच्छी पत्नियां बन सकती हैं, न अच्छी माताएँ। अनपढ़ स्त्रियों की सन्तान भी उस शिक्षा से वंचित रहती है जो माता की ओर से उसे मिलती है। बच्चे ही देश के भावी कर्मधार हैं और बच्चों का सुधार शिक्षित माता ही कर सकती है।

स्त्री शिक्षा के हानि-लाभ—भारत में मत भेद—एक दल स्त्री पढी हुई शिक्षा के पक्ष में। दूसरा विरुद्ध। पक्षवाले दल की

युक्तियां—विरुद्ध दल की युक्तियां—धर्म विरुद्ध, अनाचार की बाहुल्याशा, पढ़ने की हानियां—इनका समर्थन या खण्डन। गार्गी, सीता, शकुन्तला आदि पढ़ी हुई नारियों के उदाहरण। कैकेयी का दशरथ के साथ युद्ध में जाना और भाग लेना जिस पर ही दो वर प्राप्त करना। वेद मन्त्रों की द्रष्टा स्त्रियां, इत्यदि।

स्त्री-शिक्षा कैसी होनी चाहिये?—बालक और बालिकाओं का प्राकृत, मानसिक, शारीरिक और कर्तव्य सम्बन्धी भेद। इससे शिक्षा में भी भेद की आवश्यकता। बालकों की शिक्षा कन्याओं को देने से दारुण हानि। बालकों की शिक्षा पाई हुई स्त्रियां न अच्छी पत्नियां बन रही हैं न अच्छी माताएं। उनका स्वास्थ्य, उनकी मानसिक अवस्था, उनका सदाचार, उन्हें माता के कर्तव्य से च्युत कर देता है। अतः कन्याओं के लिये बालकों से भिन्न शिक्षा की आवश्यकता और उपयोगिता।

उपसंहार—भारतीय उन्नति में शिक्षित नारियों का हाथ। सामाजिक कुरीतियों को और अविद्यान्धकार को पढ़ी हुई स्त्रियां ही दूर कर सकती हैं।

विज्ञान की उपयोगिता

विज्ञान का लक्षण—प्रकृति पर मनुष्य का अधिकार—मस्तिष्क की वृद्धि—खोज और अनुसन्धान से उच्चशिक्षा और उच्चज्ञान की प्राप्ति।

विज्ञान के उपाय—वैज्ञानिक पदार्थों से मनुष्य-जाति का कल्याण, धन और समय की बचत, आवागमन की सुविधाएं, वाणिज्य व्यापार की वृद्धि, सभ्यता का प्रसार, इञ्जन, बिजली,

तार, रेल, हवाई जहाज, मुद्रणकला, फ़ोटोग्राफी, चिकित्सा सम्बन्धी चमत्कार। इनसे मनुष्य समाज का उपकार। देश और जाति की उन्नति, आर्थिक लाभ, इत्यादि।

इतिहास के अध्ययन की उपयोगिता

इतिहास क्या है—प्राचीन घटनाओं का वर्णन।

इतिहास पढ़ने के लाभ—ज्ञान-वृद्धि, देश की भूत दशा का ज्ञान, इससे आत्मगौरव के भावों की जाग्रति और चिन्ता-प्राचीन महापुरुषों के जीवन और वीरचरित जाति में नया जीवन फूंकते हैं। उन से उत्साह, बल और सद्गुणों की वृद्धि होती है। जातीय-उत्थान में इतिहास का भाग—राजपूतों का चरित आज भी एक श्रोता के हृदय में जोश पैदा कर देता है। भूत परिस्थितियों, वासनाओं और भिन्न २ भावनाओं के ज्ञान से भविष्यत् के लिये पथ-प्रदर्शन।

उपसंहार—इतिहास देश और जाति का उत्तम धन-कोष है। यह वह अमृत-स्रोत है जिस के दान करने की पग पग पर आवश्यकता पड़ती है। यह वह प्रकाश है जो पीछे की ओर से आकर अगले मार्ग को प्रकाशित करता है। सभ्य देश राज-पाट से बढ़कर अपने जातीय इतिहास की प्रतिष्ठा करते हैं।

अछूतोद्धार (हिन्दी रत्न १९२७)

अछूतों को अपने साथ मिलाना अछूतोद्धार है। इस की आवश्यकता—राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोणों से। अछूत वास्तव में हिन्दू हैं। इन का समाज से पृथक रहना राजनीतिक रूप में हमें निर्बल बनाता है और दूसरे धर्म वाले उन्हें अपने में मिलाकर बलिष्ठ हो रहे हैं।

सामाजिक जीवन के लिये अछूतपन क्षय रोग है जो सदा हमारे समाज को क्षीण कर रहा है। यह एक सामाजिक अत्याचार है और दूसरी समाज के नाम पर अपयश का धब्बा है। हम अपने ही भाइयों से घृणा करते हैं। किसी भी सभ्य समाज के लिये यह अत्यन्त अपमान की बात है। धार्मिक रूप में यह अन्याय है। धर्म तो एक ईश्वर और एक आत्मा की सत्ता में विश्वास देता है। वह 'प्रेम' का प्रचारक है। धर्म में घृणा, अन्याय और अत्याचार का काम नहीं। यह हमारे प्राचीन धर्म में नहीं था। धर्म के नाम पर कलङ्क और अत्याचार।

अछूतोद्धार में मत भेद—धार्मिक लोगों में मत भेद—अछूत अस्पृश्य हैं, उन से छूने से धर्म जाता है, अछूतोद्धार शास्त्र और धर्म विरुद्ध है इत्यादि युक्तियां—उन का खण्डन या मण्डन।

अपनी सम्मति—

उपसंहार—अछूतपन को भारत से बाहर निकलना प्रत्येक शिक्षित नर-नारी का कर्तव्य है। इसी से हमारी जाति बलवान और संगठित होगी। हिन्दू धर्म की डगमगाती नौका को अछूतोद्धार ही पार कर सकता है।

———

उत्तम विद्या लीजिये यदपि नीच पै होय ।
परो अपावन ठौर में सोना तजै न कोय ।।

(हिन्दी रत्न, १९२८)

विद्या की आवश्यकता और महत्ता—विद्या एक प्रकाश है, एक आंख है जो कई गुप्त बातों को प्रकट कराती है । इस के ग्रहण में सर्वथा उद्यत रहना चाहिये । विद्या में स्थानीय या भौगोलिक भावनाएं काम नहीं आती । एक चाकू तो भारतीय, अमरीकन, जर्मन, या इंगलिश कहा जा सकता है, पर विद्या इन भौगोलिक उपाधियों से वंचित है । उसे जहां कहीं से भी हो प्राप्त कर लेना चाहिये । अपवित्र से अपवित्र स्थान में पड़े हुए सोने को कोई नहीं छोड़ता । सोने की महता और उपयोगिता उसे स्थान सम्बन्धी अपवित्रता से ऊँचा रखती है । इसी प्रकार विद्या का तेज, प्रकाश और स्वच्छता उसे स्थान सम्बन्धी बाधाओं से ऊंचा रखते हैं । अपने से छोटे से भी कुछ सीखने में कुछ लज्जा नहीं होनी चाहिये विद्या बड़प्पन का लक्षण है, आयु नहीं । अतः नीच से भी विद्या ग्रहण करने में सङ्कोच न करना चाहिये ।

कोयल का को देत है, कागा का सो लेत ।
'तुलसी' मीठे वचन से जग अपनो कर लेत ।।

(हिन्दी रत्न, १९२९)

काक और कोयल एक से हैं—उनका काला रंग, उन का आकार प्रकार सब एक सा है, पर कौआ लोकनिन्दित है, और कोयल सब को प्यारी है । क्या कोयल किसी को कुछ देती है

और कौआ किसी का कुछ हर लेता है ? नहीं—तो फिर क्या ? कारण स्पष्ट है। तुलसी दास कहते हैं—कोयल मीठा बोलती है और कौआ कठोर कां कां करता है। बस इसी से मदुर भाषण का महत्व समझ लो। मधुर भाषण में मोह लेने की दिव्य-शक्ति है। इस में आकर्षण और प्रभाव है। मधुरभाषी सब को वश में कर लेता है। कटु बोलने वाला सदा अप्रिय लगता है। कटु बोलने वाले में यदि अन्य गुण हों भी तो भी उन को कोई नहीं पूछता—उस से सब घृणा करते हैं। सर्वत्र उसका तिस्कार होता है। मधुर-भाषी सर्वत्र सम्मानित और विजयी होता है।

संगृहीत निबन्ध*

[नीचे हम हिन्दी के प्रसिद्ध लेखकों के कुछ निबन्ध देते हैं। इन्हें पढ़ कर विद्यार्थी इनका "संक्षेप" बनावें, और इन के शीर्षक स्वयं तैयार करें। इन का विश्लेषण करके इन में दिये गये भावों को संक्षिप्त रूप में अङ्कित करें और उन के आधार पर फिर अपनी भाषा में प्रस्ताव लिखें। इस प्रकार 'संक्षेप' और 'विस्तार' का पूर्ण अभ्यास करें। ये निबन्ध विद्यार्थियों को पथ-प्रदर्शन का काम देंगे, तथा भावसंग्रह और भावसञ्चय में परम सहायक होंगे। इस से उपदेश और शिक्षा के साथ साथ उन की ज्ञान-राशि में भी विशेष वृद्धि होगी।]

---

* ये निबन्ध प्रायः हिन्दी के पुराने पत्रों 'हिन्दी प्रदीप' और स्वदेश 'वान्धव' आदि से उद्धृत किये गये हैं। हम इन के लेखकों और सम्पादकों का सहर्ष धन्यवाद करते हैं। इन के "भाव" और "भाषा" विद्यार्थियों के बुद्धिगम्य हैं। इसलिये अभ्यास के लिये ये विशेष उपयोगी हैं।

कर्त्तव्य-पालन

कर्त्तव्य-पालन में कुछ कठिनाई अवश्य होती है; किन्तु इससे हमें बुरा नहीं समझना चाहिये। कर्त्तव्य-परायण मनुष्य को कभी कभी सांसारिक आमोद प्रमोद से भी वञ्चित रहना पड़ता है, कष्ट भी कभी भोगने पड़ते हैं, कभी कभी दुरात्माओं द्वारा उसका अपमान भी किया जाता है और उस की हंसी भी उड़ाई जाती है, परन्तु इतना सब कुछ होने पर भी विद्वानों का मत यही है कि कर्त्तव्य-पालन में दृढ़ रहो। कर्त्तव्य को अपना शासक समझना ठीक नहीं है; किन्तु उसे अपना सच्चा मित्र और सखा समझना चाहिये, क्योंकि वह मनुष्य को साँसारिक चिन्ताओं से बचाकर, शान्तिनिकेतन के पथ की ओर अग्रसर करता है। कर्त्तव्य-पालन करते हुए, संसार की बहुत सी बातें छुट जाँयगी। कुछ उन में से बुरी भी होंगी और कुछ भली भी; किन्तु जो भली बातें छुट जांयगी उनका मूल्य कर्त्तव्य के समक्ष बहुत कम है। किसी मनुष्य ने अपने जीवन को स्त्री-प्रेम ही में आनन्द समझ कर बिताया। किसी मनुष्य ने प्रसिद्धि प्राप्ति करने की चेष्टा ही में और किसी मनुष्य ने धन प्राप्ति ही में जीवन व्यतीत किया, परन्तु कर्त्तव्य को भूल कर इन मार्गों पर चलने से इन्होंने अपयश भी खूब उठाया। यह सम्भव है कि कर्त्तव्य-निष्ठ मनुष्य अधिक धन सम्पत्ति से वञ्चित रहे, तो भी वह जिस कुल या जाति में जन्म लेता है, उसके अन्तरात्मा में बड़ी ही सम्पत्ति छोड़ जाता है। जो धन कर्त्तव्य-पालन करते हुए प्राप्त होता है, उसी से सच्चा आनन्द प्राप्त होता है। अन्यथा वह चिन्ता, भय और दुःख का कारण होता है और अनुचित बातों में व्यय होता है। यदि सोच विचार कर और

कर्त्तव्य-तत्पर रहकर धन कमाया जाय और उसका सदुपयोग किया जाय, तो स्वयं और दूसरे जन भी उससे बड़ा आनन्द भोगते हैं। धनाढ्य पुरुष कर्त्तव्य-हीन होने से अपने ऊपर दुःख और आपत्ति लादता रहता है और मरने के साथ ही उस का नाम भी मर जाता है।

कर्त्तव्य के पथ पर चलना मनुष्य का धर्म तो है ही; किन्तु वैसा करने से वह कर्त्तव्यहीन और चरित्रहीन मनुष्यों में भी कर्त्तव्य-निष्ठता और उत्साह की जागृति करता है। कर्त्तव्य-पालन से मनुष्य को प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि तथा हृदयको शान्ति प्राप्त होती है और मनुष्य का जीवन सफल होता है। धन्य हैं वे जो अपने कर्त्तव्य-कार्य्यों को करते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं। विशेष कर धन्य वे हैं जो अपने देश की कल्याण-कामना से अपने स्वार्थ पर लात मार कर कर्त्तव्य कार्य्य करते हैं। एक बार स्पेन वालों और पुर्तगाल वालों में लड़ाई हुई। स्पेन में मूलो मोलक नामक एक पुरुष रोगग्रस्त था। इसने अपनी खाट पर पड़े पड़े सोचा कि मुझे मरना तो पड़ेगा ही, फिर खाट में पड़ा पड़ा क्यों मरूँ? स्पेन के प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने देश की रक्षा के लिये युद्ध करे। फिर मैं भी रणभूमि में जाकर क्यों न शरीर त्यागूँ? ऐसा सोच समझकर वह युद्ध-स्थल में गया और वहाँ जाकर खूब लड़ा। लड़ते ही लड़ते उसने अपना शरीर त्यागा। परन्तु क्या उस का नाशमान् शरीर स्पेनवालों को आज तक कर्त्तव्य-निष्ठा का उपदेश नहीं दे रहा है? रोगग्रस्त अवस्था में भी उसके लड़ने का फल यह हुआ था कि स्पेनवाले खूब लड़े। इसी प्रकार हम भी उसी रोगी के समान हैं जिस की मृत्यु निश्चित

है। मरना तो पड़ेगा ही, फिर हम क्यों न कर्त्तव्य करते हुए आनन्द से मृत्यु की गोद में जा पधारें। मृत्यु का भय कायरों और कर्त्तव्य-हीन पुरुषों को होता है। कर्त्तव्य-निष्ठ पुरुष मृत्यु की कुछ भी चिन्ता नहीं करते। वे मृत्यु को आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में परिवर्तन होना समझते हैं। जिन्होंने गुरु गोविन्द सिंह और सुकरात आदि पुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़े हैं, वे इस बात को भली भान्ति जानते हैं। जब यह बात है, तब कर्त्तव्य-कार्य्यों के करने में मृत्यु का भय क्यों करना चाहिये ? डरना चाहिये अधर्म और अपकीर्ति के कार्य्यों से। कर्त्तव्य-पालन में चाहे जितने दुःख उठाने पड़ें, परन्तु कर्त्तव्य से विचलित न होकर पुरुषार्थ से जो काम लेता है, पुरुष वही है। चरित्रवान् पुरुष के चरित्र और नाम पर कर्त्तव्य-कार्य्यों को करते हुए जेलखाने में जाने पर भी कलङ्क नहीं लगता। कर्त्तव्य-तत्पर पुरुष के लिये जेलखाना भी कीर्त्तिलाभ करने का भवन हो जाता है। ऐसे पुरुष चाहे जिस दशा में रहें, उसी में उनका गौरव है और कीर्ति तो मरने पर भी उनका पीछा नहीं छोड़ती। उनकी मृत्यु हो जाने पर भी उनके सत्कार्य्यों के कारण उन का नाम अमर हो जाता है। साहित्य और इतिहास पुराने समय के ऐसे अनेक महान् पुरुषों के नाम और काम आज तक बखान कर रहे हैं।

हम लोग अनर्थकारी कार्य्यों में रात-दिन लगे रहते हैं और उनके करने के लिये अनेक प्रयत्न करते रहते हैं; परन्तु हमको अच्छे काम करने का बहुत कम अवसर प्राप्त होता है। कार्य्य करने से कभी भी न घबराना चाहिये। काम करने के पीछे ही आनन्द और सुख मिला करता है। सफलता प्राप्त होने में यदि देरी हो तब भी

न घबड़ाओ। यदि सफलता शीघ्र प्राप्त हो जाय तो फूल कर कुप्पा न बन जाओ। धैर्य्यपूर्वक कार्य्य करने ही से संसार में सफलता बहुधा प्राप्त हुआ करती है।

कर्त्तव्य-कार्य्यों को करते हुए धैर्य्य को कभी न त्यागना चाहिये। धैर्य्य ही कर्त्तव्य का सखा और सहायक है। श्रीराम, हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिर आदि कर्त्तव्य-निष्ठों पर बड़ी बड़ी विपत्तियां भी आ पड़ीं, परन्तु धैर्य्यपूर्वक उन्होंने सब कुछ सहा। उनके उस समय के कार्य्य हमारे जीवन के लिये पथ-प्रदर्शक हैं। रानी एलीज़बेथ से पहले इङ्गलैंड में प्रोटेस्टेण्ट पादरियों पर बड़ा अत्याचार किया गया था। कितने ही जीते जला दिये गये थे। दो पादरी जब आग में जलाये जा रहे थे, तब एक ने दूसरे से कहा था, "भैया रिडली! आनन्द पूर्वक मनुष्य का कर्त्तव्य करो। आज हम ऐसी बत्ती जला रहे हैं जो यदि ईश्वर की कृपा हुई तो इङ्गलेण्ड में कभी न बुझेगी।" कर्त्तव्य ही मनुष्य को सच्चे आनन्द और सुयश का दाता है, इससे सदैव दृढ़ता से अपने कर्त्तव्य में लगा रहना चाहिये।

(उद्धृत)

शिक्षा-प्राप्ति का उद्देश

मनुष्य जब बालक रूप में इस संसार में आता है, तब सर्वथा, अज्ञान अवस्था में होता है वह दूसरों ही से सब बातें सीखता है। इसलिये शिक्षा की मनुष्य मात्र को बड़ी आवश्यकता है। शिक्षा का आरम्भ मनुष्य जिस दिन से संसार में आता है, उसी दिन से होने लगता है और जीवन भर यह काम चलता रहता है। हम बोलना चालना, चलना फिरना, खाना पीना और काम करना दूसरों ही से सीखते हैं। जितना जो अधिक सीखता है, उतना ही उसका जीवन अधिक उपयोगी होता है, परन्तु शिक्षा ही हमें हमारे जीवन को आनन्द की ओर ले जाने का पथ है। निस्सन्देह शिक्षा मनुष्य को आनन्द-कानन में पहुंचा देने की पक्की सड़क है और आनन्द ही शिक्षा प्राप्त करने का मुख्य उद्देश है। शिक्षा बड़ी आवश्यक है, शिक्षा द्वारा ही हम अपनी इन्द्रियों का उपयोग करना सीखते हैं। शिक्षा का यह अर्थ नहीं है कि किताबें पढ़ने ही में हम सफलता समझ लें। अपने माता पिता और शिक्षकों से सीख लेने पर भी हम को बहुत कुछ सीखना रह जाता है। जिन्होंने शिक्षा प्राप्त की है उन्होंने बहुत अच्छा काम किया है, परन्तु अपने अपढ़ भाइयों से घृणा करना बुद्धिमान् का काम नहीं है। पढ़ना लिखना, विद्या प्राप्त करने का साधन है। अध्ययन को उचित प्रकार से व्यवहार में लाना चाहिये। एक अङ्गरेज विद्वान् का कथन है कि "हमें अपने अध्ययन से पलङ्ग की भान्ति आराम का काम नहीं लेना चाहिये और न इस को एक ऊँची मीनार बनानी चाहिये जहां से हम लोगों को नीचे खड़ा देखें। अपने अध्ययन को न तो दूसरों से लड़ने का किला बनाओ और न सदा सौदा करने की दूकान, किन्तु

अपने अध्ययन को भगवान् की महिमा का कोष बनाओ और उस से अपने जीवन का सुधार करो।"

एक बार एक देश-हितैषी ने अपने व्याख्यान में देश के शिक्षितों के प्रति कहा था—"भाइयो! अपने अशिक्षित भाइयों को घृणा की दृष्टि से न देखकर, उन्हें शिक्षित बनाने का जितना कुछ यत्न कर सकते हो करो।" एपिक्टिटस ने इस विषय में कहा है—"वे ही मनुष्य सर्वसाधारण की सब से अधिक सेवा करने वाले हैं, जो ऊँचे मकान न बनवाकर लोगों के आत्मा को ऊँचा करते हैं। यह अच्छी बात है कि उच्च पुरुष छोटे मकान में हों, किन्तु पराश्रित न हों। क्षुद्र पुरुषों के अधीन बन कर ऊँचे मकान में रहना अच्छा नहीं लगता है ।"

बहुत से विद्यार्थी समझा करते हैं, कि विद्यालय ही शिक्षा के आरम्भ और समाप्ति का स्थान है, परन्तु विद्वानों का मत है कि शिक्षा का काम विद्यालय ही में समाप्त नहीं होता। शिक्षा इतनी ऊँची वस्तु है कि जीवन के अन्त तक इस का उपार्जन करना चाहिये। आज कल यूरुप के जर्मन आदि देशों में ऐसे बूढ़े लोग पाये जाते हैं, जो वृद्धावस्था में भी और और देशों की भाषा और नवीन विषयोंका सीखना प्रारम्भ करते हैं। शिक्षा बड़ी ही महत्व की वस्तु है। यह हमें युवावस्था और वृद्धावस्था और सांसारिक व्यवहार के लिये तैयार करती है। शिक्षा हमें जीवन और मरण का तत्व बता कर कल्याण के मार्ग पर लाती है। बहुधा लोग समझा करते हैं कि हमें शिक्षा केवल इस लिये प्राप्त करनी पड़ती है कि हम उस से रुपया प्राप्त कर सकें। आज कल ऐसे लोगों की संख्या कम नहीं है। ऐसे लोग साहित्य और काव्य-शास्त्र से विमुख होते हैं।

पुस्तकें पढ़ने में जो एक प्रकार का अनुपम स्वर्गीय आनन्द प्राप्त हो सकता है उस से ये पराङ्मुख हैं। रुपया कमाना भी एक आवश्यक कार्य्य है और यह भी शिक्षा से प्राप्त होता है, किन्तु शिक्षा का परिणाम एक यही नहीं हो सकता है। शिक्षा से रुपया प्राप्त कर गृहस्थी का पालन पोषण तो करना ही चाहिये; किन्तु शिक्षा के परिणाम-स्वरूप स्वयम् आनन्द प्राप्त करते हुए, दूसरों की सुख समृद्धि को बढ़ाना भी उचित है। मनुष्य-जन्म की शोभा इसी में है।

कोई कोई लोग रुपये को बड़ा और विद्या को छोटा समझते हैं। कोई विद्या को प्रधान मानते हैं और रुपये को दूसरे स्थान पर रखते हैं। कुछ लोग केवल रुपए ही को समझते हैं। कुछ लोग विद्या ही को सर्वस्व समझते हैं। जिन्हों ने विद्या को रुपये से बड़ा ठहराया है वे पण्डित हैं। जिन्हों ने विद्या को सर्वस्व मान रखा है वे तत्ववेत्ता हैं। जिन्हों ने रुपए को विद्या से उत्तम माना है वे साधारण मनुष्य हैं; परन्तु जिन्हों ने रुपये को अपना जीवन का लक्ष्य मान और सर्वस्व मान रक्खा है, वे बुद्धिमान् कभी नहीं कहे जा सकते। दुनिया में ऐसे लोगों को भी पाओगे जो धनाढ्यों की खुशामद किया करते हैं, उनका वैभव भी अधिक देख पड़ेगा; परन्तु शिक्षाहीन होने से और विद्यादेवी का पूजन न करने से, वे जीते भी मृतक के समान हैं। यूरुप और अमरीका के बड़े बड़े धनाढ्यों ने यह सिद्धान्त निकाला है कि विद्या रुपये से उतनी ही बड़ी है जितनी माता अपनी सन्तान से बड़ी होती है। प्रत्येक धनाढ्य को समझ लेना चाहिये कि शिक्षा के विस्तार करने से बढ़ कर अच्छा उसके लिये दूसरा कोई काम नहीं है। बच्चों के

शिक्षा प्राप्त कराने में इस बात का विचार रखना चाहिये कि उनके मस्तिष्क में कोरी बातें न भरी जावें ; किन्तु उनमें विचार करने आदत डाल देनी आवश्यक है। ऐसा करने से बच्चों को विद्या की चाट लग जायगी। जितनी जितनी शिक्षा वे प्राप्त करते जाँयगे, उतनी ही किताबें पढ़ने की उनमें सामर्थ्य बढ़ती जायगी। केवल किताबों को पढ़ डालना ही लाभकारी नहीं होता। हर्बर्ट स्पेनसर ने लिखा है "पुस्तक शिक्षा प्राप्त करने का गौण साधन है, प्रधान साधन नहीं। पुस्तकों से कुछ सीखना मानों दूसरे की आँखों से देखना है। विषय का विचार और मनन ही हमारी उन्नति का मार्ग है।" इससे विचारवान् पुरुष चाहे थोड़ी ही पुस्तकें पढ़े, परन्तु वह उनके विषयों को अपना कर लेता है। बड़े बड़े तत्ववेत्ताओं के पास बहुधा कम पुस्तकें देखी गई हैं। शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे हम अपने स्वार्थ और परमार्थ के कर्त्तव्य को भली भाँति समझ कर, कल्याण के मार्ग पर चलने लग जावें।

(उद्धृत)

———

काव्य और लोक-शिक्षा

मानव जीवन को उन्नत करने के लिये काव्य भी बड़ा प्रभाव रखता है, कवि भी यदि प्रतिभाशाली हो और उसकी कविता सर्वाङ्गसुन्दर हो तो वह मनुष्य के हृदय में वीरत्व और महत्व का भाव उन्नत कर सकता है। मानव समाज में धर्मभाव उद्दीप्त करके वह बहुत कुछ काम कर सकता है। यह बात भी सिद्ध है कि उच्चश्रेणी के काव्य द्वारा लोग यथेष्ट शिक्षा लाभ कर

सकते हैं। उन्नत-हृदय प्रतिभाशाली कवियों को समाज का शिक्षक ही समझना चाहिये। इस विषय को अधिक पुष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। रामायण और महाभारत इन दोनों काव्यों ही को लीजिये। इनकी रचना को कितना काल बीत गया है और पश्चिमी शिक्षा के प्रकाश ने भारत में अपनी चकाचौंध भी फैला दी है, तो भी रामायण और महाभारत की शिक्षा को भारत नहीं भूला है। आज भी हिन्दू नर नारियों को हृदय में वाल्मीकि और वेद व्यास स्वर्ण-सिंहासन पर विराजते हैं। श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और भीष्म, अर्जुन, व युधिष्ठिर हिन्दू जीवन के आदर्श हैं। हिन्दू नारी भी सीता व सावित्री के धर्म्ममय चारित्रों को ध्यान से अनुकरण करके सतीत्व के गौरवतम पथ पर अग्रसर हो रही हैं। उत्कृष्ट काव्य के द्वारा जैसा मनोरञ्जन होता है और जैसी लोग शिक्षा लाभ करते हैं, वह इन दोनों काव्यों से भली भांति प्रमाणित है। काव्य यद्यपि इतना प्रयोजनीय है, तथापि फिर भी प्रतिभाशाली कवियों के काव्य के मर्म्म को समझने वाले कम ही होते हैं, जैसा कि किसी कवि ने कहा है—

"तत्वं किमपि काव्यानां" जानाति विरलो भुवि।
मार्मिकं को मरन्दानामन्तरेण मधुव्रतम्॥"

अर्थात् काव्य के तत्व को कोई विरला ही जानता है, मधुव्रत (भौंरा) के सिवाय पुष्पों के मधुर रस का मर्म और स्वाद जानने वाला कौन है? काव्य से क्या क्या लाभ होते हैं इस विषय में विद्वानों की सम्मति आगे पढ़िये। काव्य से लाभों के विषय में मम्मटाचार्य ने काव्य-प्रकाश में यों लिखा है—"काव्य से यश मिलता है, द्रव्य का लाभ होता है, व्यवहार-ज्ञान की वृद्धि होती

है, दुःख का नाश होकर शीघ्र ही परमानन्द मिलता है ! कविता कान्ता के समान रमणीय उपदेश करती है ।" बङ्गला के परम प्रसिद्ध लेखक बाबू बङ्किमचन्द्र अपने "विविध-प्रबन्ध" ग्रन्थ में लिखते हैं—उद्देश्य और सफलता दोनों की विवेचना करने पर यह विदित होता है कि राजनीतिवेत्ता, धर्म्मोपदेष्टा नीतिवेत्ता, दार्शनिक वैज्ञानिक इन सब की अपेक्षा कवि ही श्रेष्ठ हैं । कविता करने के लिए जितनी मानसिक समझ की आवश्यकता है उसके लिए कवि ही उपयुक्त मनुष्य है । कवि लोग जगत् के श्रेष्ठ शिक्षादाता और उपकार कर्त्ता होते हैं और सब से अधिक मानसिक शक्ति सम्पन्न होते हैं । बहुधा काव्य को चित्रकला की उपमा दी जाती है । कविता एक बोलती हुई तसवीर है और चित्रकला गूङ्गी कविता है । सब कलाओं में कविता सर्व प्रधान है; क्योंकि यह भगवान् की अनन्त महिमा को अच्छी तरह प्रकाशित करती है । कवि शब्दों द्वारा ही काव्य-चित्र खींच देता है और नक्काशी का भी काम अच्छा कर देता है , शब्दों द्वारा यह बड़े बड़े महल और वन पर्वत खड़े कर देता है । संसार भर की सैर करा देता है । इसको सब कलाओं का केन्द्रस्थल ही समझना चाहिए । वास्तव में सच्ची कविता चित्रों और चरित्रों का प्रदर्शनागार ही है ।

काव्य सच पूछिये तो भगवती प्रकृति की रचना है , क्योंकि प्रकृति ही कवि बनाती है । कविता करने के लिए मानव हृदय में बुद्धि, प्रेम और विचार चाहिए । कवि के सागररूपी हृदय में अनेक तरंगें उठा करती हैं । कवि का हृदय विचारों का मन्दिर ही समझना चाहिए । कवि के हृदय में कभी कभी एक एक विचार ऐसा महत्वपूर्ण उठता है कि उसको असंख्य मनुष्य दण्डवत करते हैं ।

प्लेटो सा विद्वान् भी कवियों को देवताओं की सन्तान व मनुष्य और देवताओं के बीच का द्विभाषिया बतलाता है। इसी कारण वाल्मीकि, व्यास और तुलसीदास आज भी पूजे जाते हैं। शेक्सपियर और मिल्टन आदि के रहने के घरों को विद्वान् श्रद्धापूर्वक देखते हैं।

एक विद्वान् अँग्रेज़ कविता की प्रशंसा में कहता है—

"कविता हमारे लिए अमृत के एक महानिधि के समान है। उसकी शब्द रूपी सुधा का पान करने से चित्त प्रफुल्लित होता है। और आयु बढ़ती है। कविता संसार के सौन्दर्य्य को अमरता प्रदान करती है। कविता हमारी मानसिक दृष्टि से उस परदे को उठाती है, जिस ने हमारे अस्तित्व के भेद को छिपा रखा है। कविता हमारी विद्या का सर्वस्व है। कविता भूतकाल का दर्शन करा कर भविष्यत् वर्तमान को देदीप्यमान करती है। कविता स्थान और समय से बंधी नहीं है। स्वतन्त्र मानव हृदय ही उसका निवास-स्थान है।"

कवि टेनीसन ने एक बार कहा था "कवि अपनी कविता के विषय में यह प्रसिद्ध कर सकता है कि ऐसी कविता करना एक बड़ा काम है कि जिस के द्वारा किसी जाति के हृदय में उत्साह पैदा हो।" यह बात भी स्पष्ट ही है कि कविता रचनेवाला कवि यदि धार्मिक है और उसका निर्मल हृदय यदि महद्भाव से परिपूर्ण है, तो उसका काव्य भी मनुष्यों को धार्मिकता की ओर ले जायगा और उस से समाज का कल्याण और लोकशिक्षा का सच्चा काम होगा।

भारत अपने काव्य-निधि के लिए सदैव प्रसिद्ध है। अब भी

उस में कुछ कविता होती है। परन्तु अब कवियों को अपनी कवित्व शक्ति को देश के कल्याण की ओर लगाना चाहिए। भारत-महिमा की कविता ने देश में अपू ् ज्योत्स्ना उद्दीप्त कर दी है। कविता वही है जो निर्जीव जाति के मनुष्यों में भी एक बार फिर जीव दान कर देवे। वर्त्तमान समय में परकीया नायिका के प्रेम के फौवारे छोड़ने वाली कविता की आवश्यकता नहीं है। आज कल तो ऐसी भावपूर्ण कविता होनी चाहिए जिस से सर्व-साधारण की देशोन्नति का उत्साह हो। देश का कल्याण और सर्वसाधारण का लाभ इसी में है। इस से जिन पुरुषरत्नों को भारतीय माता ने कविता करने की मानसिक शक्ति प्रदान की है, उनसे विनय है कि वह ऐसी कविता करने की कृपा करें जिस से नवयुवकों में वीरत्व पौरुष, आत्मत्याग, स्वदेश-प्रेम, कर्त्तव्य-पालन, आध्यात्मिक उन्नति और धार्मिकता के भाव उत्पन्न हों। आपस के रगड़े झगड़े और स्वार्थ की बातें छोड़ कर लेखकों और कवियों को "श्रेष्ठ शिक्षा-दाता" और "उपकार-कर्त्ता" बनना चाहिए।

(उद्धृत)

साहित्य की महत्ता

(श्रीयुत महावीर प्रसाद द्विवेदी)

ज्ञान-राशि के सञ्चित कोश ही का नाम साहित्य है। सब तरह के भावों को प्रकट करने की योग्यता रखने वाली और निर्दोष होने पर भी यदि कोई भाषा अपना निज का साहित्य नहीं रखती तो वह रूपवती भिखारिनी की तरह कदापि आदरणीय नहीं हो

सकता। उसकी शोभा, उसकी मान मर्यादा उसके साहित्य ही पर अवलम्बित रहती है। जाति-विशेष के उच्च-नीच भावों का, उस के धार्मिक विचारों और सामाजिक संगठन का, उस के ऐतिहासिक घटनाचक्रों और राजनीतिक स्थितियों का प्रतिबिम्ब देखने को यदि कहीं मिल सकता है तो उस के ग्रन्थ-साहित्य ही में मिल सकता है। सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक अशक्ति या निर्जीविता और सामाजिक सभ्यता तथा असभ्यता का निर्णायक एक मात्र साहित्य है। जिस जाति-विशेष में साहित्य का अभाव या उसकी न्यूनता आपको देख पड़े, आप यह निस्सन्देह निश्चित समझिए कि वह जाति असभ्य किंवा अपूर्ण सभ्य है। जिस जाति की सामाजिक अवस्था जैसी होती है उसका साहित्य भी ठीक वैसा ही होता है। जातियों की क्षमता और सजीवता यदि कहीं प्रत्यक्ष देखने को मिल सकती है तो उनके साहित्य-रूपी आईने में ही मिल सकती है। इस आईने के सामने जाते ही हमें यह तत्काल मालूम हो जाता है कि अमुक जाति की जीवन शक्ति इस समय कितनी या कैसी है और भूतकाल में कितनी और कैसी थी। आप भोजन करना बन्द कर दीजिए या कम कर दीजिए आपका शरीर क्षीण हो जायगा और अचिरात् नाशोन्मुख होने लगेगा। इसी तरह आप साहित्य के रसास्वादन से अपने मस्तिष्क को वञ्चित कर दीजिए वह निष्क्रिय हो कर धीरे धीरे किसी काम का न रह जायगा। बात यह है कि शरीर के जिस अङ्ग का जो काम है वह उससे यदि न लिया जाय तो उस की वह काम करने की शक्ति नष्ट हुए बिना नहीं रहती। शरीर का खाद्य भोजनीय पदार्थ है और मस्तिष्क का खाद्य साहित्य। अतएव यदि हम अपने मस्तिष्क को निष्क्रिय और

कालान्तर में निर्जीव सा नहीं कर डालना चाहते तो हमें साहित्य का सतत सेवन करना चाहिए और उसमें नवीनता तथा पौष्टिकता लाने के लिए उस का उत्पादन भी करते जाना चाहिए। पर याद रखिए विकृत भोजन से जैसे शरीर रुग्ण होकर बिगड़ जाता है उसी तरह विकृत साहित्य से मस्तिष्क भी विकार-ग्रस्त होकर रोगी हो जाता है। मस्तिष्क का बलवान् और शक्ति सम्पन्न होना अच्छे ही साहित्य पर अवलंबित है। अतएव यह बात निर्भ्रान्त है कि मस्तिष्क के यथेष्ट विकास का एक मात्र साधन अच्छा साहित्य है। यदि हमें जीवित रहना है और सभ्यता की दौड़ में अन्य जातियों की बराबरी करना है तो हमें श्रमपूर्वक बड़े उत्साह से सत्साहित्य का उत्पादन और प्राचीन साहित्य की रक्षा करनी चाहिए और यदि हम अपने मानसिक जीवन की हत्या कर के अपनी वर्तमान दयनीय दशा में पड़ा रहना ही अच्छा समझते हों तो आज ही इस साहित्य-सेवा के आडम्बर का विसर्जन कर डालना चाहिए।

आंख उठा कर ज़रा और देशों तथा और जातियों की ओर तो देखिएगा। आप देखेंगे कि साहित्य ने वहां की सामाजिक और राजकीय स्थितियों में कैसे कैसे परिवर्तन कर डाले हैं। साहित्य ही ने वहां समाज की दशा कुछ की कुछ कर दी है; शासन प्रबन्ध में बड़े बड़े उथल-पुथल कर डाले हैं, यहां तक कि अनुदार धार्मिक भावों को भी जड़ से उखाड़ फेंका है। साहित्य में जो शक्ति छिपी रहती है वह तोप, तलवार और बम के गोलों में भी नहीं पाई जाती। योरोप में हानिकारिणी धार्मिक रूढ़ियों का उत्पाटन साहित्य ही ने किया है। जातीय स्वातन्त्र्य के बीज उसी ने बोये हैं, व्यक्तिगत

स्वातन्त्र्य के भावों को भी उसी ने पाला पोसा और बढ़ाया है, पतित देशों का पुनरुत्थान भी उसी ने किया है। पोप की प्रभुता को किसने कम किया? फ्रांस में प्रजा की सत्ता का उत्पादन और उन्नयन किस ने किया है? पादाक्रान्त इटली का मस्तक किसने ऊँचा उठाया? साहित्य ने, साहित्य ने, सहित्य ने। जिस साहित्य में इतनी शक्ति है जो साहित्य मुर्दों को भी ज़िन्दा करने वाली संजीवनी ओषधि का आकर है, जो साहित्य पतितों को उठाने वाला और उत्थितों के मस्तक को उन्नत करने वाला है उसके उत्पादन और सँवर्धन की चेष्टा जो जाति नहीं करती वह अज्ञानान्धकार के गढ़े में पड़ी रह कर किसी दिन अपना अस्तित्व ही खो बैठती है। अतएव समर्थ होकर भी जो मनुष्य इतने महत्वशाली साहित्य की सेवा और अभिवृद्धि नहीं करता अथवा उससे अनुराग नहीं रखता वह समाज-द्रोही है, वह देशद्रोही है, वह जातिद्रोही है किं बहुना वह आत्मद्रोही और आत्महन्ता भी है।

कभी कभी कोई समृद्ध भाषा अपने ऐश्वर्य के बल पर दूसरी भाषाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेती है जैसा कि जर्मनी, रूस, इटली आदि देशों की भाषाओं पर फ्रेंच भाषा ने बहुत समय तक कर लिया था। स्वयं अंग्रेजी भाषा भी फ्रेंच और लेटिन भाषाओं के दबाव से नहीं बच सकी। कभी कभी यह दशा राजनीतिक प्रभुत्व के कारण भी उपस्थित हो जाती है और विजित देशों की भाषाओं को जेता जाति की भाषा दबा लेती हैं। तब उनके साहित्य का उत्पादन यदि बन्द नहीं हो जाता तो उस की वृद्धि की गति मन्द अवश्य पड़ जाती है। पर यह अस्वाभाविक दबाव सदा नहीं बना रहता। इस प्रकार की दबी या अधःपतित भाषायें बोलने

वाले जब होश में आते हैं तब वे इस अनैसर्गिक आच्छादन को दूर फेंक देते हैं। जर्मनी, रूस, इटली और स्वयं इङ्गलैंड चिरकाल तक फ्रेंच और लैटिन भाषाओं के माया जाल में फंसे थे पर बहुत समय हुआ, उस जाल को उन्हों ने तोड़ डाला। अब वे अपनी ही भाषा के साहित्य की अभिवृद्धि करते हैं। कभी भूलकर भी विदेशी भाषाओं में ग्रन्थ रचना करने का विचार तक नहीं करते। बात यह है कि अपनी भाषा का साहित्य ही स्वजाति और स्वदेश की उन्नति का साधक है विदेशी भाषा का चूड़ान्त ज्ञान प्राप्त कर लेने और उसमें महत्व पूर्ण ग्रन्थ-रचना करने पर भी विशेष सफलता नहीं प्राप्त हो सकती और अपने देश को विशेष लाभ नहीं पहुंच सकता। अपनी माँ को निःसहाय, निरुपाय और निर्धन दशा में छोड़ कर जो मनुष्य दूसरे की माँ की सेवा-शुश्रूषा में रत रहता है उस अधम की कृतघ्नता का क्या प्रायश्चित होना चाहिए, इसका निर्णय कोई मनु, याज्ञवल्क्य या आपस्तम्ब ही कर सकता है।

मेरा यह आशय कदापि नहीं कि विदेशी भाषायें सीखनी ही न चाहिए। नहीं; आवश्यकता, अनुकूलता, अवकाश होने पर हमें एक नहीं, अनेक भाषायें सीख कर ज्ञानार्जन करना चाहिए, द्वेष किसी भी भाषा से न करना चाहिए, ज्ञान कहीं भी मिलता हो उसे ग्रहण कर लेना चाहिए। परन्तु अपनी भाषा और उसी के साहित्य को प्रधानता देनी चाहिए; क्योंकि अपना, अपने देश का, अपनी जाति का उपकार और कल्याण अपनी ही भाषा के साहित्य की उन्नति से हो सकता है। ज्ञान, विज्ञान, धर्म्म और राजनीति की भाषा सदैव लोकभाषा ही होनी चाहिए। अतएव अपनी अपनी भाषा के साहित्य की सेवा और अभिवृद्धि करना सभी दृष्टियों से, हमारा परम धर्म है। (उद्धृत)

देशभक्ति

ईश्वर का यह अटल नियम है कि जो जिस देश में उत्पन्न होता है उसको उससे अन्य देशों की अपेक्षा अधिक प्रेम होता है। स्वदेश-प्रेम पशु पक्षियों और वृक्षों तक में पाया जाता है। आपने देखा होगा कि आम का वृक्ष जब कि छोटा होता है तभी उसे अपनी जन्म-भूमि अथवा उस मिट्टी से जिस में वह उत्पन्न हुआ है, इतना प्रेम होता है कि यदि वह अन्य देश में ले जाया जाय, तो वह बिलकुल निर्मूल हो जाता है; क्योंकि वह उस भूमि से पृथक कर दिया गया है जिससे उसने शरीर धारण किया था। यदि हम पशु पक्षियों की ओर दृष्टि उठाकर देखते हैं, तो उन में भी अपने स्थान का बड़ा प्रेम पाते हैं। यदि आप बर्रों के छत्ते में एक ढेला मारें तो सब की सब आपको चिपट जायगी और छोटी होने पर भी आपको कुछ समय के लिये बेसुध करे देंगी। इसका क्या कारण है? वह आप से उस दुर्व्यवहार का बदला लेने के लिये ऐसा करेंगी, जो आपने उनके घर (छाता) को नाश करने के लिये किया है। क्योंकि उनको अपने घर से प्रेम है और वह चाहती हैं कि उनके रहते हुए कोई भी उनका घर नष्ट न कर सके। हम घर के सुख की तुलना संसार की किसी वस्तु से नहीं कर सकते, जैसा कि किसी अंग्रेजी कवि ने कहा है—

Home ! home ! sweet home !
There's no place like home !

संसार में घर के समान प्यारा कोई स्थान नहीं है। मनुष्य कैसे ही सुन्दर और उत्तम स्थान में चला जाय, परन्तु अपने घर को नहीं भूलता। इसी घर से हम को देश-भक्ति का उत्तम उपदेश

मिलता है। यह वही भक्ति है जो राजा से लेकर रङ्क तक को समान सुख पहुँचाती है। हम जिस देश में पैदा हुए हैं, जहां से अन्न जल से हमारे शरीर का पोषण हुआ है, हमारा परम कर्त्तव्य है कि हम उसकी सेवा में अपने प्राणों का भी मोह न करें। जो कष्ट हमारी मातृभूमि या देश पर पड़ें उनको अपने ऊपर लेने को उद्यत रहें। यदि हम ऐसा नहीं करते तो हमारे बराबर कोई अधम नहीं है। हमारा देश सदैव सर्वश्रेष्ठ रहा है। भारत संसार भर में सर्वोत्तम समझा जाता रहा है। विदेशी लोग भारत में पहुँचने ही को अपना अहोभाग्य समझते थे और कहते थे कि यदि संसार में स्वर्ग है तो भारत।

यह क्या बात थी जिस से धात्री पन्ना से उसका प्यारा छोटा सा पुत्र सदैव के लिए अलग करवा दिया ? यह क्या बात थी जिस ने श्री शिवाजी महाराज को इतना लोक-प्रसिद्ध कर दिया ? वह क्या बात थी जिस के कारण देशभक्त मेज़िनी और गैरीबाल्डो महान् कष्ट को भी तुच्छ समझने लगे ? केवल देश-भक्ति। इतिहास पर दृष्टि डालिये तो आपको स्पष्ट विदित होगा कि देश-भक्ति ही एक वस्तु है जिस के अवलम्ब पर स्वतन्त्रता की पताका फहराती है, जहां देशभक्ति है वहां विजय हाथ बांधे हुए खड़ी रहती है। क्या रूसी जापानियों से थोड़े थे जो हार गए ? संख्या में जापानी अति न्यून थे। केवल भेद था तो यह कि जापान का प्रत्येक मनुष्य देश-भक्त था और देश-सेवा ही को अपना परम कर्त्तव्य समझता था। रूसी केवल वैतनिक सिपाही थे और जीविकावश लड़ने को विवश हुए थे। इसी से पराजय के कलङ्क का टीका उनके माथे पर लगा।

४८० वर्ष ईसा से पहिले जिस समय फ़ारिस के बादशाह जरकसीज़ (Xerxes) ने यूनान पर धावा किया, उस समय यूनान वालों को चिन्ता हुई कि देख ईश्वर क्या करता है। उस समय फ़ारिस का राज्य बहुत विस्तृत था। कहते हैं कि यूनान फ़ारिस के एक सूबे की बराबर कठिनता से था। फ़ारिस वाले यूनानी मनुष्यों को पराजित ही नहीं करना चाहते थे। वरन् उनके धर्म के नाश करने का भी पूरा निश्चयकर लिया था। क्योंकि फ़ारिस वाले अग्निपूजक थे और यूनानी मूर्त्तिपूजा से घृणा करते थे। इसलिये उन्होंने प्रत्येक देवालय को जो रास्ते में मिला, लूटा और भ्रष्ट किया। फ़ारिसवालों की वह सेना बीस लाख थी जिसे बादशाह ने यूनान पर आक्रमण करने के लिये सारडिस (Sardis) में जमा किया था। अब यूनानियों ने कारिन्थ डमरूमध्य पर इस विचार के लिये एक सभा की कि उनको अपने देश को कैसे बचाना उचित है। उन्होंने थरमापाली(Thermopylae)को बचाने का इरादा किया। चार सहस्र मनुष्य ल्योनीडास (Leonidas) के साथ गये जिनमें ३०० स्पार्टा के थे। ल्योनीडास स्पार्टा का हाल ही में बादशाह हुआ था। स्पार्टा यूनान का एक प्रान्त था जहाँ के मनुष्य कट्टर सिपाही होते थे और मरने से नहीं डरते थे।

ल्योनीडास इन सिपाहियों को साथ लेकर और अपने देश के लिये प्राण देनेका दृढ़ सङ्कल्प करके अपने राजप्रसाद से निकला। ३०० सिपाहियों ने अपनी अन्तिम क्रियाएँ कीं। यूनान में यह रीति थी कि जब वीर योद्धाओं को युद्ध से जीवित लौटकर आने की कोई आशा नहीं होती थी तब वे ऐसा करते थे। यूनानी स्त्रियों ने भी सहर्ष युद्ध में पुरुषार्थ दिखाने का अनुरोध करके अ

पतियों को लड़ाई के लिये बिदा किया। स्पार्टा की स्त्रियाँ भी बड़ी वीर हुआ करती थीं। वे कहा करती थीं कि घर में लड़ाई से ढाल लिये हुए आना अथवा उसके ऊपर आना, अर्थात् या तो शत्रुओं को जीतकर आना अथवा मर कर आना। जब ल्योनीडास थरमापली पर आया, तब उसने फ्रोशियावालों को ऐटा के पहाड़ के रास्ते को बचाने को भेजा। अब फ़ारिसवालों की सेना हेलेसपोएट (Hellespont) को पार करके थरमापाली के निकट आगई और दो दिन तक उसके भीतर घुसने का व्यर्थ यत्न करती रही, परन्तु यह इतना ही असाध्य काम था जितना पहाड़ों में रास्ता बनाना। पर हाय लालच तेरा बुरा हो! तू क्या क्या नहीं करा देता! तू ने बहुतेरे देशों को सत्यानाश कर दिया। इसी लोभ के वशवर्ती होकर इफ़ियालटीज (Ephialtes) फ़ारिसवालों के डेरे में आया और उसने बहुत सा द्रव्य लेकर स्पार्टावालों के पास पहुंचने का मार्ग बता दिया, जिससे वे स्पार्टावालों के पीछे जा कर आक्रमण कर सकें। हाईडरनीज़ (Hydernes) के साथ फ़ारिसवालों की बड़ी सेना भेजी गई। ल्योनीडास और उसके सिपाहियों ने लड़ते लड़ते मर कर प्राण देने का प्रण किया। सब के सब फ़ारिसवालों के अधीन हो गये; परन्तु ८० मनुष्य माईकेन (Mykenae) के, ४०० थीबियों के, ९०० थेसपिया के, और ३०० स्पार्टा के—अर्थात् केवल १४८० मनुष्य ल्योनीडास के साथ फ़ारिसवालों के २० लाख सिपाहियों के साथ लड़ने को चले। ल्योनीडास के डेरे में उसके दो कुटुम्बी थे, उनको उसने बचाना चाहा कि किसी प्रकार ये घर (स्पार्टा) को लौट जायँ और चिट्ठी देकर उन्हें स्पार्टा को भेजना चाहा। परन्तु एक ने उत्तर दिया—'मैं लड़ने को आया हूँ, पत्र ले जाने के लिये नहीं आया हूँ।" दूसरे ने कहा—'हमको पत्र ले

जाने की कोई आवश्यकता नहीं है, हमारे कार्य्य ही बतला देंगे जो कुछ कि स्पार्टा जानना चाहता है।" जब एक मनुष्य ने डाइ-नीसीयस से जो एक स्पार्टावाला था, कहा कि शत्रुसेना में तीर चलानेवाले इतने अधिक हैं कि उनके धनुषों और तीरों से सूर्य्य धुंधला हो गया है; तब इस पर डाइनीसीयस ने उत्तर दिया—"यह अच्छा है, हम साये में लड़ेंगे।" इन १,४०० मनुष्यों ने २०० लाख सेना का सामना किया और फ़ारिसवालों को मारते हुए वे आगे बढ़ते चले गये। परन्तु ऐसा वे कब तक कर सकते थे? उन बेचारों का रास्ता तो पहिले ही से बता दिया गया था। ल्योनीडास सबसे पहिले मारा गया। उसके शव के आस पास खूब युद्ध हुआ। फ़ारिस के बादशाह के भ्राता मारे गये। स्पार्टा और थेसपियावाले पहाड़ी पर चढ़ गये और उन्होंने वहाँ ही से युद्ध करने का विचार किया। परन्तु थीवा के लोग न ठहर सके और उन्होंने फ़ारिसवालों से शरण माँगी और पराधीनता स्वीकार की। उनके शरीर पर एक शाही निशान गर्म लोहे से लगाया गया ताकि वे साथ छोड़नेवाले समझे जावें। अब उन थेसपिया और स्पार्टा वालों का यह वृत्तान्त है कि वे उसी पहाड़ी पर अन्तिम समय तक लड़ते रहे यहाँ तक कि सन्ध्या तक उनमें कोई शेष न रहा। इस प्रकार सब सिपाहियों का और ल्योनीडास का अन्त हुआ। इन मुट्ठी भर देशभक्त योद्धाओं ने बीस हज़ार फारिसवालों का संहार किया। ज़रकसीज़ ने डेमेरेटस से पूछा कि क्या स्पार्टा में कुछ और भी आदमी ऐसे हैं? उसने उत्तर दिया कि ८,००० और हैं। एरसटाडमस (Erustadmus) से, जो स्पार्टावाला था और किसी कारणवश लड़ न सका था, सब आदमी घृणा करते थे और उसको

कायर कहते थे। अब उसको कोई आग या पानो (Fire or water) नहीं देता था। उसने इस अपवाद का बदला एक वर्ष के (४७९ वर्ष ईसा से पहिले) पल्टी की लड़ाई में सबसे पहिले मर कर दिया। इस लड़ाई से फ़ारिसवाले यूनान से सदा के लिए निकल गये थे। ल्योनोडास के स्मारक चिन्ह-बनाये गये थे, परन्तु अब उन में से एक भी शेष नहीं है, परन्तु ल्योनोडास का नाम अब तक विद्यमान है।

महाशयो ! यह देशभक्ति ही थी जिस के कारण स्पार्टा के लोग इतने मनुष्यों को मार कर इस प्रकार अपने नाम अमर कर गये। देशभक्ति ही के कारण हम लोग ल्योनीडास की आज तक प्रशंसा करते हैं। हमारे भारतवर्ष में भो कितने ही ल्योनीडास हो गये हैं और कितने ही स्थान पर थरमापली बन चुके हैं। वीर-प्रशंसक कर्नल टाड ने अपने इतिहास राजस्थान में लिखा है:—

"There is not a petty state iu Rajasthan, that has not had its Thermopylae and scarcely a city that has not produced its Leonidas."

अर्थात् राजपूताने में कोई छोटी से छोटी भी रियासत ऐसी नहीं है, जहाँ एक न एक थरमापाली न हुआ हो और कदाचित ही कोई ऐसा नगर मिले जिस में ल्योनिडास उत्पन्न न हुआ हो।

(उद्धृत)

आत्म-सम्मान

आत्म-सम्मान का भाव प्रत्येक मनुष्य में होना आवश्यक है। बिना गुण के प्राप्त हुए मनुष्य मनुष्य ही नहीं बन सकता। जब किसी जाति के लोगों में आत्म-गौरव का विचार होता है तब ही वह जाति उठती है। जो आत्म-गौरव का प्रत्येक समय विचार नहीं रखते हैं वे दूसरों की दृष्टि में तुच्छ समझे जाते हैं। उनका आदर सम्मान भी कहीं नहीं होता। ऐसे लोग अधःपतित होते चले जाते हैं। भारतवासी आत्म-सम्मान को पहिले खूब समझते थे, यहां तक कि निज-गौरव-रक्षा के लिये वे प्राण दे देना भी हँसी खेल समझते थे। हमारे देश के प्राचीन इतिहासों में ऐसे हज़ारों दृष्टान्त मौजूद हैं। श्रीरामचन्द्र ने जटायु से स्वर्ग गमन के समय कहा था—

"सीता हरन तात जनि, कहहु पिता सन जाइ।
जो मैं राम तो कुल सहित, कहहि दशानन आइ॥"

इस वचन में आत्म-गौरव और वीरत्व का कैसा भाव दरसता है!

परन्तु आज कल हमारी विपरीत दशा है। जो लोग आत्म-गौरव की रक्षा का प्रयत्न करना तो क्या, आत्मा-सम्मान ही को नहीं समझते, उनका सर्वत्र अपमान होता है। उदर-पोषण के लिये नीच से नीच और निन्द्य कार्य्य करने पर भी, आत्म-सम्मान-शून्य लोग उतारू हो जाते हैं।

जिस आदमी में आत्म-गौरव का विचार नहीं होता, उसके पड़ोसी उसको कुछ नहीं समझते। इसी प्रकार जिस जाति में

आत्म-गौरव लुप्त हो जाता है उसे और जातियाँ नीच दृष्टि से देखा करती हैं। आर्य्य-सन्तान में इस गुण का ह्रास होना मुसलमान विदेशियों के शासन से आरम्भ हुआ है और अब तो इस जाति की बड़ी हीन दशा है। सैकड़ों वर्ष के दासत्व ने इस जाति के मन में आत्म-प्रतिष्ठा के उच्च भाव को खो दिया है। आत्म-सम्मान का भाव उन्हीं में होता है जिन में आत्मिकबल पुरुषार्थ और उत्साह होता है। जिन में आत्म-सम्मान का भाव होता है, वे निरुत्साह और पुरुषार्थ-हीन आर्य्य जाति की भांति ऐसी हीनता की बात जैसे—

"कोऊ नृप होय हमें का हानी। चेरी छोड़ि न होवै रानी॥"

नहीं कहते। भारतवासी धर्म्म धर्म्म तो बहुत चिल्लाया करते हैं, परन्तु वास्तव में इनमें बहुत कम लोग धर्म्म पर आरूढ़ हैं। यदि धर्म्मानुसार इनका व्योहार होता तो ये ऐसे निर्जीव और पौरुषहीन न हो जाते। मुसलमानों का अपने मत पर केवल दृढ़ विश्वास ही है जिसके कारण उनमें अच्छा उत्साह है। वे निज मत सम्बन्धी हीन बात सुनते ही आपे से बाहर हो जाते हैं और जातीय मर्य्यादा का विचार रखते हैं। जहाँ कहीं हिन्दू मुसलमान दोनों में मर्य्यादा व जातीय गौरव दिखाने का अवसर उपस्थित होता है, वहां बहुधा हिन्दुओं की शिथिलता और मुसलमानों की दृढ़ता दिखाई पड़ती है। यह आत्म-प्रतिष्ठा ही का विचार था कि अमीर काबुल ने दिल्ली दरबार में आना लार्ड कर्ज़न के निमन्त्रण पत्र के यथोचित रीति से न लिखे जाने के कारण अस्वीकार किया, तथा अमीर काबुल अब्दुर रहमान खाँ ने डेन कमीशन से कहा था कि हमारे लिये (His Majesty) शब्दों का प्रयोग किया जाया करे। मुसल-

मानों के आगमन से पहिले हमारे हिन्दू राजाओं में भी यही भाव थे। महाराणा प्रतापसिंह ने अकबर की अधीनता स्वीकार करना जाति और कुल मर्य्यादा के विरुद्ध समझकर २० वर्ष तक बादशाही सेना से लड़ कर, तरह तरह के कष्ट सहे; परन्तु आत्म-गौरव को नष्ट न होने दिया। महाराणा राजसिंह ने अपने आर्य्य-धर्म्म के गौरव की रक्षा के लिये औरङ्गजेब से प्रबल बादशाह का अच्छी प्रकार सामना किया था। शिवाजी विशेषतः अपने हिन्दू धर्म्म रक्षा के हेतु ही मुसलमानों के पूर्ण विद्वेषी हो गये थे। आज कल के उन्नत देश भी आत्म-गौरव के लिये कोई बात उठा नहीं रखते। अमेरिका के अन्तर्गत केलीफोर्निया में जापानी विद्यार्थियों के स्कूल से निकाले जाने की बात चलते ही जापान इस आत्म-गौरव-विरुद्ध कार्य्य को सहन न कर सका और लड़ाई की धमकी तत्काल दी। आत्म-प्रतिष्ठा के रङ्ग में रङ्गा हुआ कमेण्डर टोकियो हीरोस ने अपने शरीर को पोट आर्थर के सामने जहाज़ डुबाने और उसमें स्वयं बैठ कर डूबने के लिये अर्पण किया था। डूबते डूबते यही आत्म-प्रतिष्ठा के वचन उसके मुँह से निकल रहे थे—"मेरी इच्छा है कि मैं सात बार जन्म लूँ और अपने देश के लिये अपने प्राण अर्पण करूँ। मरने के संकल्प में मेरा चित्त दृढ़ है और जीतने की आशा करते हुए मैं आनन्द के साथ जहाज़ में जाता हूँ।"

आज कल भारतवासी अङ्गरेज़ों के खान पान और पहिराव उढ़ाव की नकल करने में शीघ्र ही अग्रसर हो जाते हैं; परन्तु उनके गुण ग्रहण करने की ओर कम लोगों का ध्यान जाता है। अङ्गरेज़ों से हमें अब भी बहुत कुछ सीखना है। आत्म-प्रतिष्ठा, आत्मोत्सर्ग और आत्मसाहाय्य के लिये अङ्गरेज़ हमारे लिये

आदर्शरूप हैं। बचपन ही से अङ्गरेजों में आत्मप्रतिष्ठा और जातीय अभिमान का प्रवेश हो जाता है। एक बार फ्रांस की राजधानी पैरिस के एक विद्यालय में कूदने फाँदने का खेल हो रहा था। विद्यालय के अखाड़े के पास पड़ी हुई एक बड़ी लकड़ी को २० फरांसीसी लड़के क्रमानुसार फाँद रहे थे। वहाँ पर पास ही पर दस बारह बरस का अङ्गरेज़ विद्यार्थी भी खड़ा था। वह भी अपने कूदने की बारी की प्रतीक्षा उत्साह के साथ कर रहा था। वह अन्त्रवृद्धि रोग से पीड़ित था। इसलिये लोगों ने उसे मना भी किया, पर उसने एक न मानी। उसने कहा कि तुम सब लोग कूदते हो तो मैं क्यों न कूदूँ? अन्त में किसी की भी बात की परवाह न करके वह कूदा तो, किन्तु फिर उससे उठा न गया। पीछे घण्टे भर के भीतर ही उसके प्राण निकल गये। मृत्यु से पहिले वह यही कहता रहा—"कोई ऐसा न सोचे कि अङ्गरेज फरांसीसियों की भान्ति कूद नहीं सकता है।"

आत्म-गौरव की रक्षा करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म्म है। यदि कोई हमको प्रतिष्ठाहीन कहे तो चुप हो जाना कायरता का काम है। क्षमा भी एक गुण है। परन्तु ऐसे समय क्षमा करने से उद्दण्ड विपक्षी समझता है कि यह मुझसे डरता है और वह आगे से अधिक उद्दण्डता करता है। मनुष्य का धर्म्म है कि प्रतिष्ठापूर्वक जीवे। आत्मप्रतिष्ठा के लिये मर जाना भी वीरता का काम है। आज कल की सभ्यता हमको सिखला रही है कि आत्मप्रतिष्ठा के लिये लड़ना भिड़ना भी नीति अनुमोदित कार्य्य है। धर्म्म और विद्या द्वारा मनुष्य आत्म-प्रतिष्ठा के गुण को प्राप्त करता है, अतएव हिन्दुओं को दृढ़ता से इनकी प्राप्ति में सयत्न होना चाहिये। (उद्धृत)

क्रोध

मनुष्य जितने निन्दनीय कार्य्य और पाप करते हैं, वे सब काम, क्रोध और मोह ही के वशीभूत होके करते हैं। इसलिये कल्याण की कामना रखने वाले मनुष्यों को विचारपूर्वक इन दोषों से सदा अपनी रक्षा करनी चाहिये। जिसने इनका अवरोध कर लिया उसीका इस संसार में कुछ कल्याण हो सकता है, और जो इनके वशीभूत हो गया, उसके नष्ट भ्रष्ट होने में देर नहीं लगती। इस निबन्ध में काम और मोह के विषय में कुछ न लिख कर, केवल क्रोध ही के विषय में लिखा जाता है।

क्रोध करने से कुछ लाभ नहीं होता, किन्तु हानि होती है। क्रोध से स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचती है। इसके विरुद्ध प्रसन्न रहने से स्वास्थ्य को लाभ पहुँचता है। तुमने देखा होगा कि क्रोधी मनुष्य बहुधा दुबले पतले और सूखे साखे शरीर वाले हुआ करते हैं। क्रोध निर्बल मनुष्य ही पर अपना अधिकार प्रायः जमाता है। जिस में सहनशक्ति नहीं है, वही क्रोध में भर आपे से बाहर हो जाता है और जो धीर गम्भीर होता है उस को छोटी छोटी बातों पर कभी क्रोध नहीं आता। जिनके शरीर में बल है, मस्तिष्क में शक्ति है, वह छोटी छोटी बातों पर न कभी झुँझलाते हैं और न क्रोध करते हैं। जिस में क्रोध अधिक होता है, वह क्रोध से अपनी ही हानि करता है। क्रोधी मनुष्य क्रोध के कारण सब को अपना शत्रु बना लेता है और उसे निरन्तर हानियाँ सहनी पड़ती हैं। वास्तव में ईश्वर क्रोधी स्वभाव उसी को देता है जो पापी है। संसार में जो सदैव हँसी खुशी से रहता है, सुखमय जीवन

उसी का है और संसार का वही भोग सकता है। जो ईर्ष्या, द्वेष और क्रोध से जला करता है, वह अपने दुस्स्वभाव का आप ही दण्ड भोगता हैं। स्त्री हो या पुरुष, क्रोध दोनों के लिए हानिकारी है। "एडवाइस टू विमन" का लेखक जो कि एक अनुभवी डाक्टर है, लिखता है कि दुस्स्वभाव और क्रोधसे पुरुषका तो पाचनाशक्ति बिगड़ जाती है, और सिर में पीड़ा होने लगती है। पर स्त्रियों के स्तन का दूध विषमय होकर, वह दूध बच्चे को बड़ो हानि पहुंचाता है। जो पुरुष या स्त्री स्वास्थ्य की कामना करते हों, उन्हें उचित है कि वे क्रोध और शाक को परित्याग करें। जो मनुष्य अधिक प्रसन्न-चित्त रहता है, वह दीर्घजीवी होता है। एक विद्वान् ने तो यहां तक लिखा है कि हँसी से बढ़ कर सँसार में स्वास्थ्य को लाभ पहुँचाने वाली दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं

तमोगुणी प्रकृति वाले पुरुष हो क्रोध बहुधा किया करते हैं। जो पुरुष सतोगुणी होते हैं, वे उदारहृदय, क्षमा और दया के निकेतन होते हैं। उच्च-अभिलाषा रखने वाले पुरुष को नीच क्रोध के वशीभूत हो, नीच श्रेणी के मनुष्यों में अपनी गणना न करनी चाहिए। क्रोधी पुरुष, क्रोध के शान्त होने पर स्वयं लज्जित होता है। साथ ही यदि कहीं क्रोध के आवेश में कोई अनकरना काम हो गया, तो अपनी उस करतूत का खेद और पश्चाताप उसे आजन्म बना रहता है। जो कोई निम्न श्रेणी का मनुष्य क्रोध करता है, तब सब लोग उसका उपहास करते हैं और ऐसे मनुष्य को उसकी करतूत का फल भी बहुधा तुरन्त ही मिल जाता है। कोई मनुष्य तो अकारण ही क्रोध में भर जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उन्हें थोड़ी देर बाद ही अपनी करतूत पर हाथ मल कर

पछताना भी पड़ता है । अतएव परिणाम-दर्शी मनुष्य को बिना समझे बूझे कभी क्रोध नहीं करना चाहिए। मनुष्य में थोड़ा या बहुत क्रोध का होना स्वाभाविक बात है, परन्तु जहां तक मनुष्य से हो सके क्रोध की मात्रा घटावे । उचित कारण उपस्थित होने पर सभी को क्रोध आता है, पर दिन भर बैठे बैठे क्रोध की आँच में झुलसना ठीक नहीं। कोई कोई निष्कारण क्रोध कर दूसरों पर अपना रोब दाब जमाया करते हैं। यह टेव बहुत बुरी है। हां, बड़े आदमियों के लिए इतनी सिधाई भी अच्छी नहीं, जिस से लोग उन से दबें ही नहीं। जिन के हाथ में शासनाधिकार हो, उनको विचार पूर्वक अपनी बुद्धि से काम लेने की बड़ी आवश्यकता है। क्रोधी मनुष्य का किसी को भी विश्वास नहीं होता। कौन जाने क्रोध के आवेश में भर, वह कब क्या कर बैठे ? क्रोधी मनुष्य को लोग जनूनी समझ, कभी उस पर विश्वास नहीं करते। ऐसे के साथ लोग सम्बन्ध तक रखना बुरा समझते हैं । व्यवसायी मनुष्य को तो क्रोध कभी न करना चाहिए । जो हँसमुख और सरल स्वभाव के होते हैं, उनके पास लोग अपने आप जाते हैं और उनके साधारण दोषों पर कोई ध्यान नहीं देता । व्यवसाय में क्रोधी पुरुष बहुत कम सफल होते हैं। क्रोधी पुरुष न तो धन ही उपार्जन कर सकता है और न उसकी लोगों में प्रतिष्ठा ही होती है। जो दूसरों की सेवा में निरत है, उसे तो क्रोधी होना ही न चाहिए। क्रोधी नौकर न तो अपने मालिक को प्रसन्न रख सकता है और न अपने साथियों के साथ हेल मेल पूर्वक रह ही सकता है। मालिक के किसी अनुचित बर्त्ताव पर यदि नौकर को कभी क्रोध आवे, तो उसे अपने क्रोध को दबाना चाहिए। पीछे से सब बातों पर विचार

कर वह जो कुछ उचित समझे करे। जिस समय क्रोध आवे, उस समय कुछ देर के लिए चुप हो जाना चाहिए। कुछ लोगों ने क्रोध आने पर उलटी गिनती गिनने का परामर्श दिया है, जिस से क्रोधी मनुष्य का ध्यान दूसरी ओर बट जाय। ऐसा करने से थोड़ी देर में क्रोध अपने आप शान्त हो जायगा। किसी किसी महात्मा ने क्रोध को पाप का मूल बतलाया है। इस लिए इस से बचना चाहिए। बड़ों की और भी अधिक प्रशंसा उनके शान्त स्वभाव के कारण हो सकती है। यदि किसी से कोई अपराध बन पड़े तो अपराधी को उसका अपराध समझा कर शान्त शब्दों से काम लेना चाहिए। जो ऐसा करते हैं, उनकी बात का प्रभाव सुनने वालों के मन पर चिरस्थाई होता है। (उद्धृत)

जापान में विद्या-प्रचार

थोड़े ही समय में जापान ने आशातीत उन्नति की है। उसकी इस उन्नति का कारण केवल विद्या है। विद्या-प्रचार के लिये वहाँ कैसा प्रबन्ध है इस बात को आप इसी से जान सकते हैं कि वहाँ २८,८६२ सब तरह के स्कूल और कालेज हैं, जिनमें से ११ ऐसे हैं जिनमें बहरे और गूङ्गों को शिक्षा दी जाती है। प्राइमरी अर्थात् आरम्भिक स्कूलों की संख्या २६,८५६ हैं। इनमें १ लाख अध्यापक शिक्षा देते हैं। अधिकांश प्राइमरी स्कूल गाँवों में हैं। जापान में दो यूनीवर्सिटी (एक टोकियो में, दूसरी क्योटो में) हैं, जिनमें ३०० के लगभग अध्यापक हैं और ४,००० से कुछ कम विद्यार्थी पढ़ते हैं। इन दोनों यूनीवर्सिटियों में साहित्य, फिलाफसी

आदि के सिवाय क़ानून, डाक्टरी, इञ्जीनियरिङ्ग, विज्ञान तथा कृषि-विद्या की उच्चशिक्षा दी जाती है। प्रत्येक माँ बाप का अपने बालकों को पाठशाला में भेजना आवश्यक कर्त्तव्य समझा जाता है। यदि कोई मनुष्य किसी लड़के को नौकर रखे तो उसको स्कूल में पढ़ने के समय छुट्टी देना आवश्यक है। स्कूलों में फ़ीस बहुत ही कम ली जाती है और जब कभी फ़ीस लगायी जाती है तब शिक्षा-विभाग के उच्च पदाधिकारी की आज्ञा लेनी पड़ती है। जापान का गवर्नमेंट तो विद्याप्रचार के लिये पूर्ण सहायता देती है, परन्तु गवर्नमेंट के सिवाय वहाँ की प्रजा भी शिक्षा-प्रचार में यथेष्ट सहायता देती है। शिक्षा-विभाग की रिपोर्ट से प्रकट होता है कि सरकारी स्कूलों और कालिजों की संख्या २१,१५६ है और प्राइवेट स्कूलों की संख्या २,६७३ है। सरकारी प्राइमरी स्कूल केवल दो हैं और बोर्ड के २६,४८५ और प्रजा की ओर से ३६०, हैं। लड़कियों की शिक्षा के लिये एक सरकारी स्कूल है, परन्तु ४४ बोर्ड के और ७ प्राइवेट स्कूल हैं। ५८ नार्मल और ट्रेनिङ्ग स्कूल हैं जिनमें अध्यापक तैयार किये जाते हैं। प्रत्येक प्रान्त में कम से कम एक किण्डर-गार्टन स्कूल है जिसमें बहुत छोटे छोटे लड़कों के खेल द्वारा शिक्षा दी जाती है। कई गेंदों पर अक्षर लिखकर लड़कों से उन्हें मँगवाते हैं। साधारण वस्तुओं को दिखा कर बालकों से प्रश्न पूँछते हैं। ऐसी पाठशालाओं में स्त्रियाँ पढ़ाती हैं। ये अध्यापिकाएँ विशेष शिक्षा पाने पर नियत की जाती हैं और एक अध्यापिका के आधीन ४० लड़कियाँ रहती हैं। पिछले साल तक इन की संख्या २४१ हो गई थी, जिस में अब ५६६ पढ़ानेवाली स्त्रियाँ हैं।

हिन्दुस्तान की तरह खाली पढ़ने लिखने ही के स्कूल जापान

में नहीं हैं, किन्तु शिल्प-शिक्षा (दस्तकारी) के स्कूल भी कितने ही हैं। इनमें तीन बहुत: प्रसिद्ध हैं, यानी टोकियो और क्योटो के हायर पोलीटैकनिक स्कूल और क्योटो पोलीटैकनिक स्कूल। जो थोड़ा सा पढ़कर रोज़गार करना चाहे उसके लिये ऐपरंटिस स्कूल भी हैं। यहां से सार्टिफ़िकेट प्राप्त करने पर, लोग बड़े बड़े दुकानदारों के यहां नोकर होते हैं। कृषि-विद्या की शिक्षा के लिये भी स्कूल हैं। एक स्कूल में जोतना बोना सिखाने के लिये कई बीघा ज़मीन है। कितने ही घोड़े और अन्य पशु रहते हैं। एक स्कूल में पशुओं की चिकित्सा करना भी सिखाया जाता है। एक अजायब-घर है जिसमें १,२०० कृषि-सम्बन्धी वस्तुएँ संग्रहीत हैं। कोई कृषक अधिक समय तक न पढ़ सके तो उसके लिये ऐसा प्रबन्ध है कि वह एक वर्ष में कृषि-विद्या के मूलसिद्धान्तों को समझ ले। इन सब प्रकार के कृषि विद्यालयों में ५,००० से अधिक कृषक शिक्षा पा रहे हैं और कृषि कालेजों के स्थित होने से अब तक १,५५६ ग्रेजुएट हो चुके हैं। तीसरे प्रकार के स्कूलों में व्यापार सम्बन्धी शिक्षा मिलती है। एक ऐसी सरकारी स्कूल टोकियो में और दूसरा कोबी में है। इनके सिवाय और छोटे छोटे स्कूल हैं जिनमें ५००० से अधिक पढ़ाने वाले और हज़ार के लगभग विद्यार्थी हैं। टोकियो में भी एक ऐसा स्कूल है जिसमे अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी, जर्मनी, रूसी, इटैलियन, सोनी, चीनी और कोरियन भाषाओं के सिखाने का प्रबन्ध है। जापान में उन लोगों के अध्ययन का भी प्रबन्ध है जो यूनीवर्सिटी की शिक्षा समाप्त करके किसी विशेष विषय का अध्ययन करना चाहें।

सब तरह के स्कूल और कालेजों के खोलने के साथ साथ वहाँ अन्य देशों में शिक्षा प्राप्त करने के लिये विद्यार्थियों के भेजने का

प्रबन्ध किया गया। सन् १९०२ ई० में कृषि और व्यापार विभाग की ओर से १४ जापानी पश्चिमी व्यापार की शिक्षा पाने के लिये भेजे गये। इसी वर्ष में १०१ विद्यार्थी शिक्षा विभाग की ओर से विदेश भेजे गये। राजकोष विभाग की ओर से इसी साल तीन विद्यार्थी बाहर भेजे गये। इसी प्रकार दूसरे विभाग भी बराबर विद्याध्ययन के लिये विद्यार्थियों को बाहर भेजते रहते हैं।

अन्य भाषाओं की अच्छी अच्छी पुस्तकों के जापानी भाषा में अनुवाद किये जाने के लिये भी एक विभाग खोला गया है। सारांश यह है कि जापान में विद्या-प्रचार के लिये किसी बात में त्रुटि नहीं है। इसी से जापान ने थोड़े से समय (अर्थात ३० या ३५ वर्ष के भीतर) ही में असाधारण उन्नति की है। जापान की मनुष्य संख्या ४ करोड़ है और सम्पूर्ण भारतवर्ष में राजपूत प्रायः १ करोड़ हैं और भारतवर्ष का अधिकांश भूम्यधिकार भी इन्हीं के हाथ में है। सो हिसाब से राजपूतों को जापानियों की अपेक्षा कम से कम चौथाई प्रबन्ध विद्या-प्रचार के लिये करना चाहिये। यदि चौथाई न करें तो आठवां या दसवां हिस्सा ही उद्योग करें। राजपूतों की अवनति परस्पर के विरोध और विद्या की हीनता के कारण हुई है। जब तक उनमें परस्पर मेलमिलाप न होगा और विद्या का प्रचार न बढ़ेगा, तब तक उनकी उन्नति कदापि नहीं हो सकती। परस्पर मेल मिलाप जब ही हो सकता है जब उन में जातीयता का विचार हो और उनमें विद्या-बल बढ़े।

(उद्धृत)

स्वात्मावलम्बन

स्वात्मावलम्बन एक ऐसा गुण है जिसके बिना मनुष्य की शोभा और शक्ति का विकास नहीं होता। जो स्वात्मावलम्बी हैं वे ही स्वच्छन्दता का सुख उपभोग करते हैं, संसार में सफलता और प्रसिद्धि वे प्राप्त करते हैं। जो स्वात्मावलम्बी नहीं हैं वे मृत-पुरुषों के सामान हैं। भारतवासियों में स्वात्मावलम्बन का गुण नष्ट हो गया है। इसीसे वे निर्जीव और निस्तेज के सामान हो रहे हैं। जिस समय इनमें आत्म-साहाय्य का भाव उदय होगा, उसी समय ये जीवित पुरुषों की गणना में सम्मिलित होंगे।

आत्म-साहाय्य विषय पर, अङ्गरेजी में "सेल्फ-हेल्प" एक अच्छा ग्रन्थ लिखा गया है। हमारी हिन्दी-भाषा में भी ऐसे ऐसे ग्रन्थों की बड़ी आवश्यकता है। ऐसे ऐसे उपयोगी विषयों की पुस्तकें जब सर्वसाधारण लोग पढ़ेंगे, तब ही हमारे देश का उद्धार होगा, क्योंकि बिना सर्वसामान्य के विचारों के सुधरे, किसी देश की उन्नति नहीं होती। जब तक भारतवर्ष की दान-प्रणाली न सुधरेगी और मुफ़्तखोरों को खाली पड़े हुए उदर-पूर्ति करते रहने का अवसर मिलता रहेगा, तब तक देश की दरिद्रता दूर न होगी। स्वात्मावलम्बन का गुण युरुप, अमेरिका व जापान के व्यक्ति मात्र में है। वहाँ पर यथासाध्य कोई पराश्रित रहना पसन्द नहीं करता। वे स्वात्मावलम्बी होकर अपना ही निर्वाह सुख-स्वच्छन्दता से नहीं करते किन्तु अपनी उन्नति के साथ अपने देश की उन्नति और उपकार के कार्य्य भी करते रहते हैं। जो लोग स्वात्मावलम्बी नहीं, वे विद्वान् होकर भी कोई बड़ा काम नहीं कर सकते। हिन्दुस्तान के लोगों में आत्मनिर्भरता का गुण प्रायः नष्ट

हो गया है। वे सैकड़ों वर्षों से पराश्रित रह कर, अपना दुःखमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं, इसलिये इनकी नस नस में पराधीनता समा गई है। ये छोटी छोटी सी बातों के लिये भी पराश्रित हैं। देखिये जब तक दियासलाई न मिले, किसी घर में आग ही न जले। यदि अन्य देश से सुई न आवे, तो किसी के कपड़े ही न सिलें। ऐसी ऐसी छोटी बातों ही से लोग समझ सकते हैं कि भारतवासी कितने गिर गये हैं। परन्तु हम अपने आलस्य और प्रमाद से प्रताड़ित रह कर ही, अपना अमूल्य जीवन व्यतीत करते रहते हैं; पराधीनता के दुःख को जानते हुए भी आत्मनिर्भरता के लिये कुछ प्रयत्न नहीं करते। बाल्यावस्था ही से लड़कों में स्वात्मावलम्बन के भाव उत्पन्न होने चाहिये। उनको निष्कारण किसी बात में दबाना नहीं चाहिये, किन्तु आवश्यक स्वतन्त्रता दी जानी चाहिये; और पढ़ने लिखने के पश्चात् जो कुछ कार्य वे करना चाहें, यदि उसके करने में उनकी योग्यता हो, तो उनकी इच्छानुसार वही कार्य उनसे कराना चाहिये। जिसका मन जिस कार्य के करने में लगता है, या जो जिस कार्य्य को सच्चे मन से करना चाहता है, उसी को उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त होती है।

जो स्वात्मावलम्बी और अध्यवसायी हैं, वे किसी भी दशा में हों, अवश्य उन्नति कर लेते हैं। स्वामी रामतीर्थ जी ने एक बार स्वात्मवलम्बन के विषय में व्याख्यान देते हुए कहा था कि चीन में एक विद्यार्थी बड़ी ही दीनावस्था में था। रात में पढ़ने के लिये उसको तेल भी नहीं मिलता था। वह जुगनू इकट्ठे कर और उनको एक पतले कपड़े में बाँध कर किताब के ऊपर रख लिया करता था और उनके प्रकाश में पढ़ा करता था। एक दिन

किसी ठठोल ने कहा—"अरे, इतना परिश्रम क्यों करते हो ? क्या चीन के वज़ीर हो जाओगे ?" चीन के इतिहास में देखिये, एक दिन आया कि वही लड़का वज़ीर बन गया। अध्यवसाय और स्वात्मावलम्बन ही से मनुष्य की कीर्त्ति-कलिका स्फुटित होती है।

जब मनुष्य किसी बात का पात्र या अधिकारी हो जाता है। तब उसका अधिकार उसको स्वयं ही ढूँढ़ लेता है। जहाँ पर अँगीठी में आग जल रही रही है, वहाँ आक्सिजन खिचकर उसके पास स्वयं आ जायगा। जो पत्थर दीवार में लगाये जाने के योग्य है, वह बाज़ार में कब पड़ा रहने पावेगा ? किसी फ़ारसी के कवि ने कहा है कि किसी पद की खोज में समय मत नष्ट करो। अपने को योग्य बनाने की चिन्ता करो। निस्सन्देह यदि तुम में योग्यता है तो उस पद तक तुम अवश्य पहुँच जाओगे। अङ्गरेज़ी में भी कहावत है कि पहिले तुम अधिकारी बनो फिर इच्छा करो। यदि हम योग्य होंगे तो हम निरन्तर चेष्टा करने पर, अवश्य एक दिन अपने स्वत्वों को प्राप्त कर लेंगे और यदि हम अयोग्य होंगे, तो हमारे कहने या करने का कुछ फल न होगा। स्वनामधन्य स्वामी रामतीर्थजी ने स्वात्मावलम्बन के विषय में व्याख्यान देते हुए यह भी कहा था कि जापानियों ने तीन तीन सौ और चार चार सौ वर्ष के चीड़ और देवार के पेड़ ऐसे उपजा रखे हैं जो लम्बाई में केवल एक एक बालिस्त के बराबर या कुछ ही अधिक ऊँचे हैं। आप विचारें कि क्या कारण है कि इन वृक्षों को वे शताब्दियों तक बढ़ने से रोक देते हैं ? जिज्ञासा करने से वह ज्ञात हुआ कि ये लोग इन वृक्षों के पत्ते और टहनियों को बिल्कुल नहीं छेड़ते, किन्तु जड़ को काटते रहते हैं। वे जड़ों को बढ़ने नहीं देते। प्रकृति का यह नियम

कि जब जड़ ही नीचे नहीं जायेगी तब वृक्ष ऊपर नहीं बढ़ेगा। ऊपर और नीचे का या भीतर और बाहर का इस प्रकार का सम्बन्ध है कि जो लोग ऊपर को बढ़ना चाहते हैं या संसार में फूलना फलना चाहते हैं उन्हें नीचे अपने भीतर आत्मा में जड़ें बढ़ानी चाहिये। भीतर यदि जड़ें न बढ़ेंगी तो वृक्ष ऊपर भी न फैलेगा। ऐसे ही जिस पुरुष में आत्मनिर्भरता नहीं, वह पुरुष कुछ भी नहीं कर सकता। आत्मनिग्रह ही आत्मनिर्भरता का मूल है। चित्त और इन्द्रियों की प्रेरणा को वश में रखना ही धर्म का मुख्य आधार है। आत्म-निग्रह की विशेषता ही पुरुष के गुण और धर्म की उत्तमता की सीमा है। उत्साह के वेग में न आना, घड़ी घड़ी में उठने वाली चित्त की उमङ्गों में न पड़ना, वरन् मन पर लगाम कस, चित्त में धैर्य्य धरना मानो विचार-शाला में उपस्थित होना है। इस प्रकार मन की प्रेरणा के सुनिश्चित और निर्धारित निर्णय के अनुसार दृढ़ता से कार्य्य करना यही आत्मनिर्भरता का मुख्य उद्देश है।

आत्म-निर्भरता पुरुषार्थी पुरुषों की आराध्य देवी है। इसका पूजन करके भारत में बड़े बड़े कर्मवीरों ने नाम पाया है। युरुप में भी कितने ही ऐसे पुरुष हुए हैं। आज कल हम लोग अच्छी सेवावृत्ति मिलने ही में जीवन का मुख्य उद्देश समझते हैं, परन्तु हमारे पूर्वज ऋषि मुनि जीवन की स्वतन्त्रता ही में सुख बतला गये हैं और सेवा-वृत्ति को हमारे धर्मशास्त्रों में श्वानवृत्ति कहा है। सो हम लोग जब इस श्वानवृत्ति ही को अपने जीवन का लक्ष्य बनाये रखते हैं, तब तुम समझ सकते हो कि हम कितने गिरे हुए हैं, आज कल हमने सर्वथा आत्म-निर्भरता खो दी है। आत्म-

निर्भरता की रुचि ही बहुधा पुरुषों में नहीं दीखती, परन्तु अब फिर समय पलटा है। अब तक उच्च शिक्षा प्राप्त भारतवासी केवल नौकरी द्वारा अपना पोषण करते रहते थे, किन्तु अब कुछ शिक्षित लोगों को आत्मावलम्बन का सुखस्वप्न दीखने लगा है। आत्म-मर्यादा की ओर उनका मन झुका है। हम लोगों को चाहिये कि अपने मस्तिष्क और हाथ दोनों से काम लें और दृढ़ता और स्वावलम्बन से अपने उद्देशों को पूरा करने में कोई बात उठा न रखें। वाग्वीर न रहकर हम को कर्मशूर होना चाहिये और अपने देश के कल्याण के लिये जो कुछ कष्ट उठाने पड़े उनको सहने के लिये तैयार रहना चाहिये।

(उद्धृत)

व्यापार

संसार कर्मक्षेत्र है, इसमें सभी मनुष्यों को कुछ न कुछ काम करना पड़ता है। काम के बदले में मनुष्य धन पाता है और उस से उसका जीवन-निर्वाह होता है, इसी लिए कोई नौकरी करते हैं, कोई खेती करते हैं और कोई व्यापार करते हैं। नौकरी को सब देशों में व्यापार से निकृष्ट माना है। फिर जिस देश में खेती ही का काम अधिकता से होता हो वहां पर तो व्यापार-प्रिय लोगों की बड़ी ही आवश्यकता है। भारत में १०० मनुष्यों में से ७५ मनुष्य खेती करते हैं। इसी से भारत कृषिप्रधान देश कहा जाता है और इस से यहां व्यापार के लिए बड़ा सुभीता है। हमारे देश में विद्या प्राप्त करने का उद्देश्य केवल नौकरी करना ही मान रखा है। निस्सन्देह खेती और व्यापार करने वाले लोगों को भी विद्या प्राप्त करने की बड़ी आवश्यकता है।

मानव-समाज की उन्नति के साथ व्यापार की नींव धरी जाती है। सभ्य जाति ही व्यापार को समझती है और उस से लाभ उठाती है। व्यापार ने मनुष्य-जीवन पर बड़ा प्रभाव डाला है जो लोग कच्चा मांस आदि खा कर अपनी क्षुधा निवृत्त करते थे, इस व्यापार के प्रताप ही से वे धनशाली एवं क्षमताशाली बन गये हैं। पश्चिम के देशों की जो बढ़ती हुई उन्नति दीख पड़ती है, वह व्यापार ही के कारण है।

अङ्गरेज जाति ने व्यापार के द्वारा ही भारत के अधीश्वर बनने का सौभाग्य प्राप्त किया है। व्यापार से देश के निवासियों में उद्योगशीलता, कार्य्यदक्षता और योग्यता बढ़ती है। देश से सुस्ती, काहिली और दरिद्रता विदा होती है। व्यापार से देश में प्रत्येक बात की उन्नति होती है, शान्ति बढ़ती है, मेल जोल बढ़ता है। अन्य अन्य देशों में जाने से वहां की रीति व्यवहार देखने और उन्नति की बातों को सीख कर अपने देश में प्रचार करने का अवसर प्राप्त होता है। किसी को धनवान् होने के लिए व्यापार के शरण जाना ही यथेष्ट है। व्यवसाय-बुद्धि ही व्यापार की जननी है। भारतवर्ष के वैश्य भी एक समय बड़े व्यापारी थे। इनका व्यापार व्यवसाय सारे भूमण्डल पर था। परन्तु जैसे भारत में और और गुणों का ह्रास हुआ, वैसे ही व्यापार भी गिरा। अविद्या मनुष्यों के सब ही गुणों को संकुचित कर देती है। महाभारत के पीछे आपस में लड़ाई झगड़ों और मुसलमानों के हमलों से भारत के बहुत से गुण नष्ट हो गए। उधर यूरुपवासियों ने व्यापार को तन मन धन से उन्नत करने की चेष्टा की जिस से करोड़ों रुपए भारत ही से उनके घर जाने लगे। जैसे व्यापार के कारण कलकत्ता जैसा छोटा

गाँव भी बड़ी राजधानी में परिवर्त्तित हो गया है, इसी प्रकार दरिद्र देश भी इसके द्वारा धनशाली बन जाते हैं।

एक देशी हिन्दी के पत्र में एक उद्धृत लेख में कहा गया था कि जिस देश का कच्चा माल स्वदेश के काम में नहीं लाया जाता किन्तु और देशों में भेजा जाता है और वहां से बन ठन कर आता है, उस देश की बड़ी हानि होती है। जैसे हम एक रुपए की रूई पैदा करके उसकी स्वयं मलमल नहीं बनाते, बल्कि उसको विदेशियों के हाथ बेच डालते हैं और रुपए की रूई में दो आना नफा ले लेते हैं, तो नतीजा यह होता है कि रुपए की दो सेर रूई की दो सेर मलमल जिसका मूल्य १५) या २०) होगा हम खरीदते हैं और दो आने नफे बदले १०) या १४) रुपए देते हैं। यही व्यापारिक विद्या का तत्व है जिसे यूरोप वाले सीखते हैं और उसके द्वारा अपने देश को लक्ष्मी का भण्डार बनाते हैं। भारतवासियों को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए।

हमारे धनाढ्य भाई धन से काम लेना और उसकी वृद्धि करना कम जानते हैं, क्योंकि उनमें व्यवसाय बुद्धि की बड़ी कमी है। यह लोग अपने धन को गाड़ देते हैं या जेवर बनवाते हैं या विवाहादि की फ़जूलखर्ची में नष्ट कर देते हैं। मिलजुल कर व्यापार करना तो जानते ही नहीं। हमारे देश के नवयुवकों को विद्या से अलंकृत हो इधर ध्यान देना चाहिए। इधर अब भी उनके लिए बहुत गुञ्जायश है।

प्रत्येक मनुष्य अपने देश के व्यापार को उन्नत करने में कुछ न कुछ सहायता दे सकता है। यह चाकू या यह कपड़ा जो मैं खरीदता हूँ, इस से मेरे देश को कितना लाभ है या कितनी हानि

है, यह बात सब सोच सकते हैं और ऐसे सोच विचार से अपने देश के शिल्पकर्म और व्यवसाय को बहुत लाभ पहुँचा सकते हैं। यह कभी न सोचना चाहिए कि ऐसी छोटी बात से क्या होता है या हम क्या कर सकते हैं, क्योंकि कण कण से ही मन हो जाता है। यूरोप में इसी स्वदेशी नीति के द्वारा और और देशों के माल रोकने की बड़ी चेष्टा की गई और की जा रही है। इसी के द्वारा अपने देश के व्यापार को उन्हों ने बहुत कुछ बढ़ाया है। क्या हम स्वदेश की बनी चीजें ग्रहण कर अपने देश के व्यापार को लाभ नहीं पहुँचा सकते ? क्या इस के द्वारा यह सत्य नहीं कर डालेंगे कि 'वाणिज्ये वसति लक्ष्मीः" ? कला कौशल की उन्नति तब ही होती है जब देशवासी अपने देश की चीजों की कदर करते हैं। यदि कश्मीर के बुने दुशालों व मऊ की मलमल की भारतवासी कदर न करेंगे, तो क्या विदेशी लोग करेंगे ? यदि हम अपनी देशी चीजों का व्यवहार छोड़ देंगे, तो नतीजा यह होगा कि हमारे बाकी बचे कारीगर भी भूखों मरने लगेंगे और देशी कारीगरी का नाम निशान भी मिट जायगा। न जाने भारत की कितनी कारीगरी ऐसे ही नष्ट हो गयी। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि अपनी कारीगरी की चीजों को यूरोप में बेच कर नफ़ा उठाना बड़ा कठिन है। इसका कारण उनका अपने देश की ही चीजे बर्तने का प्रेम है। प्रत्येक स्वदेश-प्रेमी अङ्गरेज़ भारत में रहकर भी अपने देश की चीजें ही अधिकतर काम में लाता है। वे भूल करते हैं जो यह समझते हैं कि देश की चीजें बतने में सरकार नाराज़ होती है। क्या वे नहीं देखते कि हमारी प्रान्तिक गवर्नमेण्ट देशीय उद्यमों के विषय में कैसी चेष्टा करती रही है।

प्यारे नवयुवको ! व्यापारी बनने की चेष्टा करो। यूरोप के व्यवसायियों और उनके लक्ष्मीभाण्डार की ओर देखो। व्यापार की शिक्षा प्राप्त कर अपने देश की दरिद्रता दूर करने के लिए सत्यतापूर्वक व्यापार करो। हमारे देश के व्यापारियों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि सत्यव्यवहार ही से व्यापार में सफलता प्राप्त होती है। अत: सत्यतापूर्वक व्यापार करने की चेष्टा करनी चाहिए।

(उद्धृत)

म्युनिसिपैलिटी

(पं० राधाकृष्ण झा)

देश में स्वायत्त शासन की रक्षा देने, अपने इलाके के छोटे मोटे कामों का प्रबन्ध आप कर सकने लायक बन जाने के लिए डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपल जैसी संस्थायें खोली गई हैं। ये शहरों और जिलों में सड़कों की देख भाल, अस्पतालों का इन्तजाम, स्वास्थ्यरक्षा विषयक विविध प्रबन्ध, प्राथमिक शिक्षा इत्यादि आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। स्वच्छ जल वायु तथा पवित्र भोज्य पदार्थ न मिलने से कोई समाज नहीं जी सकता। सड़कों को साफ सुथरा न रखने से बीमारियां फैलती हैं, उन की मरम्मत नहीं करते रहने से मुसाफिरों को कष्ट होता है तथा व्यापार में रुकावट होती है। बच्चों की प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध नहीं होने से बच्चे मूर्ख रह जांयगे, जिस से देश भविष्य अन्धकार-मय हो जायगा। इन आवश्यक कार्यों का प्रबन्ध स्थानीय संस्थाओं और प्रजा के प्रतिनिधियों पर छोड़ दिया गया है, क्योंकि

स्थानीय प्रतिनिधि अपने अपने अभावों का अच्छा अनुभव रखते हैं, इस से स्वायत्त शासन की शिक्षा मिलती है और लोग देश-सेवा करने योग्य हो जाते हैं।

प्राचीन भारतवर्ष में गांवों और शहरों में प्रायः इसी प्रकार की संस्थाओं से कार्य लिया जाता था, परन्तु कम्पनी के समय विप्लव के कारण देशी संस्थाओं की बड़ी दुर्दशा हो रही थी। उस समय शासकों ने उन देश-जात संस्थाओं का संस्कार न कर योरप की संस्थाओं का प्रचार किया। आज कल जितने म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड विद्यमान हैं वे सब विलायत की नकल पर ही बनाये गये हैं। इन का जन्म सरकारी कानूनों से हुआ है।

आज कल की म्युनिसिपैलिटियां और बोर्ड पुरानी पचायतों के स्थान में ही कार्य कर रहे हैं। इनका आरम्भ कम्पनी के समय में हुआ। प्रेसिडेन्सी शहरों की म्युनिसिपैलिटी का आरम्भ सतरहवीं शताब्दी में हुआ था। राजा द्वितीय जेम्स के समय में विलायत की नकल पर मद्रास में आल्डर मैनों और वरजेसों (Alder men and Burgesses) सहित मेयर की अदालत स्थापित हुई। जेल, स्कूल, घर, तथा अन्य इमारतों के बनाने और प्रबन्ध के उद्देश्य से इसकी सृष्टि हुई थी। लोगों ने इन बातों के लिए टैक्स देने का विरोध किया, इस कारण मेयर को मद्रास में चुंगी लगाने की आज्ञा मांगनी पड़ी। क्रमशः इसी प्रकार की अदालतें बम्बई और कलकत्ते में भी स्थापित हुईं। अब तक इन का विशेष ध्यान शासन वा विचार विभाग के कामों पर ही रहा करता था। १७९३ ई० से ही सच्ची म्युनिसिपैलिटी का आरम्भ होता है। उसी साल बड़े लाट को कम्पनी के नौकरों वा अन्य साधारण व्यक्तियों

को 'जस्टिस आफ़ दी पीस' बनाने का अधिकार मिला। ये जस्टिस न्याय के अतिरिक्त सड़कों की मरम्मत, उन को साफ सुथरा रखने तथा पहरा चौकी का भी प्रबन्ध करते थे। इन का खर्च मकानों पर टैक्स लगा कर चलता था। १८४० और १८५३ के बीच इन म्युनिसिपैलिटियों में प्रजा द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों को स्थान मिलने लगा। परन्तु १८५६ ई० में ये सब बातें बदल गईं। तब से सरकार द्वारा नियुक्त तीन वेतन-भोगी सभ्य म्युनिसिपल का सारा प्रबन्ध करने लगे। १८६१ ई० से फिर अनेक परिवर्तन होने लगे, जिस से आज कल कलकत्ता, मद्रास और बंबई की म्युनिसिपैलिटियों का स्वरूप बिलकुल ही बदल गया।

मुफ़स्सिल की म्युनिसिपैलिटियों का आरम्भ १८४५ ई० के ऐक्ट से होता है। यह ऐक्ट बंगाल के मुफ़स्सिल शहरों में म्युनिसिपैलिटियाँ स्थापित करने के लिए हुआ था, परन्तु इसका उपयोग न होने कारण १८५० में यह कानून उठा कर नया कानून बनाया गया जिस से सारे भारत में म्युनिसिपैलिटी स्थापित करने का अधिकार प्राप्त हुआ। इन प्रान्तों को छोड़कर बाकी सम्पूर्ण भारत ज्यों का त्यों बना रहा। इस नियम से प्रान्तीय सरकार को आवश्यकतानुसार शहरों में म्युनिसिपैलिटी स्थापित करने का अधिकार था। सरकार मजिस्ट्रेट तथा अन्य नागरिकों को म्युनिसिपल कमिश्नर बना सकती थी—उनकी संख्या आवश्यकतानुसार घटती बढ़ती थी। उन पर शहर की सड़कों, नालियों, तालाब वा अन्य जलाशयों को सुरक्षित रखने तथा रात को रौशनी का प्रबन्ध करने का भार रहता था। उन्हें इस विषय के उपनियम बनाने तथा खर्च के लिए घर वा अन्य सम्पत्ति पर टैक्स

बैठाने का भी अधिकार था। इसी प्रकार इस संस्था का प्रसार हो ही रहा था, इस पर लाट मेयो के समय में इसे और भी सहायता मिली। उसके अनन्तर प्रादेशिक सरकारों ने म्युनिसिपैलिटियों में प्रजा द्वारा निर्वाचित कमिश्नरों की संख्या बढ़ाने का नियम बनाया। पर तो भी निर्वाचन की प्रथा का प्रसार उचित रूप से नहीं हुआ। इस विषय का सब से अच्छा कानून लाट रिपन के समय में पास हुआ। लाट साहब के मन्तव्य से स्वायत्त-शासन में प्रजा को अधिक अधिकार मिला। तब से आज तक जितने नियम बने हैं सब का उद्देश्य म्युनिसिपैलिटियों का दायित्व बढ़ाना तथा निर्वाचन की प्रथा का प्रसार करना रहा है। पहले केवल बड़े बड़े शहरों में ही प्रजा को कतिपय कमिश्नरों के निर्वाचन का अधिकार था, छोटी छोटी म्युनिसिपैलिटियों के कुल कमिश्नर सरकारी नोमिनेशन से ही नियुक्त होते थे। चेयरमैन (सभापति) का कार्य बहुधा सरकारी अफसरों द्वारा ही सम्पादित होता था। परन्तु १९०८–०९ के नियम से छोटे छोटे शहरों वा कसबों में भी निर्वाचन की प्रथा जारी हो गई है। अब बड़े बड़े शहरोंमें भी गैर सरकारी सज्जन ही चेयरमैन बनाये जाते हैं।

म्युनिसिपैलिटी का प्रबन्ध कमिश्नरों की एक सम्मिलित समिति द्वारा हुआ करता है। ये म्युनिसिपल-कमिश्नर बम्बई और मद्रास में प्रान्तों में म्युनिसिपल-कौन्सिलर के नाम से विख्यात हैं। म्युनिसिपैलिटी की सम्पत्ति, उस की आय, इसी समिति के हाथ में रहती है। कमिश्नरों में कुछ तो सर्वसाधारण द्वारा निर्वाचित होते हैं और कुछ सरकार द्वारा नियुक्त होते हैं। दोनों प्रकार के कमिश्नरों की संख्या कानून द्वारा निश्चित रहती है। निर्वाचन

के नियम, वोट देने वालों की योग्यता, प्रत्येक वार्ड (मुहल्ले) से कितने प्रतिनिधि लिये जा सकते हैं, तथा किसी जाति वा संस्था विशेष को प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिलना चाहिए या नहीं–इत्यादि बातें प्रादेशिक सरकार द्वारा निश्चित हुआ करती हैं। म्युनिसिपैलिटी के सभापति, उपसभापति तथा कमिश्नरों की अवधि तीन वर्षों की होती है। सभापति और उपसभापति (वाइस चेयरमैन) कमिश्नरों में से ही निर्वाचित होते हैं। म्युनिसिपैलिटी के कर्मचारियों में सेक्रेटरी का पद बड़े महत्त्व का है—यह पद विलायत के टाउन क्लर्क से मिलता जुलता है।

म्युनिसिपैलिटियों का कार्य नीचे लिखे विभागों में बांटा जा सकता है:—

(१) सड़कों की मरम्मत, उन पर रौशनी का प्रबन्ध, म्युनिसिपल व सरकारी इमारतों की देख भाल करना।

(२) सर्वसाधारण के स्वास्थ्य पर ध्यान।

इनके अन्तर्गत अस्पताल, चेचक, प्लेग आदि का टीका, स्वच्छ पेय जल का प्रबन्ध, गन्दे पानी के निकास के लिए नालियां, संक्रामक बीमारियों से बचने के लिए उपाय, खाने-पीने की वस्तुओं में हानिकारक चीजें न मिलाई जावें इसका निरीक्षण इत्यादि अनेक बातें हैं।

(३) प्रारम्भिक शिक्षा के लिए पाठशालाओं का खोलना।

उपर्युक्त कार्यों को सुचारू रूप से सम्पादन करने के लिए म्युनिसिपैलिटियों को अनेक अधिकार दिए गए हैं। यदि कोई व्यक्ति अपने घरों के सामने कूड़े करकट का ढेर लगाए हो, अपनी मोरियों वा नालियों को गन्दी बनाए हो तो म्युनिसिपैलिटियों को

अधिकार है कि उस व्यक्ति को कर्तव्यत्रुटि के लिए ५० रु० तक जुर्माना करे।

म्युनिसिपैलिटी का कार्य बिना धन के नहीं चल सकता। इस कारण म्युनिसिपैलिटी को टैक्स बैठाने का भी अधिकार है। जहां म्युनिसिपैलिटी द्वारा जल कल, रौशनी और पैखानों का प्रबन्ध होता है वहां उन्हें उन कार्यों के बदले में सर्व साधारण से रुपए वसूल करने का भी अधिकार होता है। म्युनिसिपैलिटी की आमदनी नीचे लिखे विभागों में बांटी जा सकती है।

(१) चुंगी—पंजाब, युक्तप्रान्त, मध्यप्रदेश और बम्बई में चुंगी का प्रचार है और उस से आमदनी भी खूब होती है। पर यदि चुंगी लगाने तथा वसूल करने में विशेष सावधानी न दिखाई जावे तो अकारण कष्ट और असुविधा की सम्भावना है। चुंगी वसूल करने में बहुत खर्च पड़ता है, तथा मुसाफिरों को कभी कभी बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। इस के सुधार करने की बड़ी आवश्यकता है।

(२) मकानों तथा ज़मीनों पर टैक्स बैठाना—यह प्रथा बंगाल, बिहार, बर्मा, आसाम, मद्रास आदि प्रान्तों में प्रचलित है। मकानों के सालाना किराए पर सैकड़े ८॥ से अधिक टैक्स नहीं बैठाया जा सकता है। कहीं कहीं 'व्यक्ति कर' बैठाने का भी नियम होता है।

(३) रोज़गार पर टैक्स लगाना—यह प्रथा प्रायः सारे भारत वर्ष में बहुत प्रचलित है। इस प्रकार के टैक्स से मद्रास और युक्त प्रदेश में बहुत धन आता है। कहीं यह टैक्स इनकमटैक्स का रूप धारण करता है और कहीं लाईसैंस टैक्स का।

(४) अन्य फुटकर—जैसे सड़कों वा घाटों पर पार उतरने का

महसूल, पाखाना का या जलकर का टैक्स । इस के अतिरिक्त अपनी जायदाद—यथा हाट, बाजारों, कसाईखाने आदि से भी म्युनिसिपैलिटी को आमदनी होती है ।

नालियों का बनाना, पीने के लिए स्वच्छ पवित्र जल का प्रबन्ध करना आदि आवश्यक कार्यों में धन की आवश्यकता होती है जिसे म्युनिसिपैलिटियां नहीं पा सकती हैं । इस कारण उन्हें कर्ज लेना पड़ता है । यदि महाजनों से कर्ज लें तो सूद ही देते देते म्युनिसिपैलिटी का नाक में दम आ जाय । यह विचार कर प्रादेशिक सरकारों ने आवश्यकतानुसार कर्ज लेने का प्रबन्ध किया है । सरकार से कर्ज लेकर म्युनिसिपैलिटी को सूद बहुत कम देना पड़ता है, साधारणतः ४) रु० सैकड़ा, और २०—३० वर्षों में पूरा कर्ज चुका देना होता है ।

(उद्धृत)

———

स्वास्थ्य-रक्षा

ईश्वर प्रदत्त आनन्द की सामग्रियों में स्वस्थता (तनदुरुस्ती) सब से बढ़कर है । एक नीतिकार ने संसार के छः मुख्य सुखों में से प्रथम इसकी गणना की है । दुःखों से दूर रहकर प्रकृति के दिये हुए स्वस्थ शरीर का आनन्द भोगना बहुत से धनाढ्यों के भाग्य में भी नहीं बदा है । बात यह है कि वही मनुष्य अपने शरीर को स्वस्थ रख सकता है जो प्रकृति के नियमों का अनुकरण करने में कटिबद्ध रहता है । बहुधा साधारण और धनाढ्य मनुष्य इन नियमों की ओर से असावधानी करते हैं जिससे वे सदैव दुःखी रहते हैं । इन नियमों को चाहे हम अज्ञानता से तोड़ें या अपनी उद्दण्डता से,

इसका दण्ड स्वरूप दुःख हमको अवश्य भोगना पड़ता है। इससे उन नियमों को जानना और उनके अनुकूल चलना बहुत आवश्यक है। सब से प्रथम इस बात का समझ लेना उचित है कि यदि स्वास्थ्यरक्षा के नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत किया जाय तो बहुत से रोग उत्पन्न ही न हों। किसी रोग के होने पर चिकित्सा करने से यह अच्छा है कि उसे होने ही न दे। हमें सदैव ही अपने जीवन के सब कार्य्यों में और अपनी आदतों में समभाव रखना चाहिये। हमें कार्य्य करने में न तो अपने अवयवों को थका डालना चाहिये। और न आलस्य का बीज बोना चाहिये। बुद्धिमान् मनुष्यों को सदैव बीच की राह चलना उचित है। अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखना मनुष्य-तत्व का लक्षण है। इन्द्रियों के वश में पड़ जाना नीचे को ओर जाने वाला कार्य्य है। अपनी इन्द्रियों के विषय भोग में भी समता का विचार रखो। अधिक विषय भोग दुःख का कारण है। भोजन सदैव रुचि के अनुसार करना चाहिये भोजन जो पथ्य हो इतने परिमाण में खाना चाहिये जिस में भूख मिट जाय। बहुत से मनुष्य पेट को अधिक भर लेते हैं, अर्थात् जितना वह पचा सकते हैं उससे अधिक खा लेते हैं। यह आदत बहुत बुरी है। जिसका आमाशय ठीक नहीं रहता उसे रात को अच्छी तरह नींद नहीं आती, बेचैनी रहती है और बहुधा वह स्वप्न देखता रहता है। गरिष्ट वस्तुओं को न खाओ। भोजन करने में जल्दी करना बुरा है। भोजन को खूब चबाकर निगलना चाहिये। रात को सोने से दो घण्टे प्रथम भोजन करना चाहिये। पेट को खूब भरकर फौरन सो जाने से सुख पूर्वक निद्रा नहीं आती और भोजन अच्छी प्रकार से पक नहीं होता। भोजन करके थोड़े काल

तक टहलना गुणदायक है। भोजन करने के समय प्रसन्नचित्त रहना और आनन्द पूर्वक स्वाद के साथ भोजन करना स्वास्थ्यप्रद है। पीने के लिये पानी शुद्ध और स्वच्छ होना चाहिये। उत्तेजना देने वाले पेय पदार्थ बुरे हैं। शराब को तो कभी भी न पीओ। पानी हमारे प्यास ही को नहीं बुझाता है, किन्तु हमारी पाचन-क्रिया में भी सहायता देता है। भोजन बनाने, नहाने-धोने आदि सब कामों में स्वच्छ पानी का व्यवहार करो। मैला पानी बड़ा हानिकारक होता है। हमें अपनी शारीरिक बुद्धि का बड़ा ध्यान रखना चाहिये। बिना स्नान किये रहने से हमारी त्वचा ठीक नहीं रह सकती; इसी त्वचा के लिये वस्त्रों का उपयोग किया जाता है। यद्यपि हम नङ्गे पैदा हुए हैं तो भी सभ्यता की दृष्टि से और ऋतु परिवर्तन के विकारों से बचने के लिये वस्त्रों का पहिनना आवश्यक है। वस्त्रों से हम अपने शरीर की शीतोष्ण से रक्षा करते हैं। दूसरे, शरीर के भीतरी और बाहरी अवयवों में बड़ा सम्बन्ध है। जो हमारी त्वचा के लिये विष है वह हमारे प्राणधारी अवयवों को भी विषवत् है। ईश्वर ने हमें इस बात की शक्ति प्रदान की है कि जब जैसी ऋतु होवे, तब हमारी रहन सहन वैसी ही हो जावे। हमें ठंढ से बचना चाहिये। ठंढ बहुत सी बीमारियों को पैदा करने वाली है। ऐसे कपड़े पहिनने चाहिये जिस से शरीर की प्राकृतिक गर्मी रक्षित रहे। स्वास्थ्यरक्षा के लिये कसरत करनी उतनी ही आवश्यक है जितना अच्छा भोजन करना। एक विद्वान् का कथन है कि यह अच्छा नहीं जँचता कि हम अपने मस्तिष्क को तो बी०, ए०, एम० ए० बना देवें और अपने शरीर के अवयवों को बुरी दशा में रहने देवें। कसरत से फेफड़े, हृदय और त्वचा के

काम में सहायता मिलती है। यह पट्ठों को लम्बा चौड़ा और दृढ़ बनाती है, पाचन शक्ति को सुधारती है। घोड़े पर चढ़ना और पैदल चलना फिरना भी कसरत ही का अङ्ग है। समता का सदैव ध्यान रखो। कसरत करते समय ठंढ न लग जावे, इस बात का ध्यान रखो। कहीं से आकर एकदम शरीर के कपड़े न उतार देने चाहिये। स्वच्छ वायु प्राण के लिये बहुत आवश्यक है। बिना उस के प्राण ठहर नहीं सकते। शुद्ध वायु का सेवन सुखप्रद है। दूषित वायु रोग का उत्पादक है। मकान खूब हवादार होना चाहिये। स्वच्छता बहुत रोगों को नष्ट करने वाली है। मोरी का मैला पानी, सड़ी गली वस्तुएँ और मरे जानवर वायु को नष्ट कर देते हैं। मकान के आस पास गन्दगी को न रहने दो। मोरी और पाखाने स्वच्छ रखो। छोटे घर में अधिक मनुष्यों का रहना भी स्वास्थ्य के लिये हानिकारी है। स्वास्थ्य के लिये नींद भर सोना भी आवश्यक है। दिन भर हम जो काम किया करते हैं उससे हमारी शक्ति बहुत घट जाती है। रात को सात आठ घण्टे सो रहने से फिर नई शक्ति का सञ्चार हो आता है। रात को १० बजे सोना और तड़के बहुत सवेरे उठना लाभदायक है। रात को बहुत देर सोकर, दिन चढ़े तक सोते रहना हानिकारी है।

अपने सिर को ठंढा और पैरों को गर्म रखना चाहिये। शराब इत्यादि मादक द्रव्य सेवन न करने से तुम्हारा सिर साफ़ और निरोग रहेगा। भोजन, वस्त्र, स्वच्छ वायु और निद्रा—इनका उपयोग नियमबद्ध होकर नियमित समय पर करते रहो। यदि इनमें से किसी की ओर से असावधानी करोगे तो रोग तुम्हारे पास आजावेगा। ये सब बातें सुनने और पढ़ने की नहीं हैं, किन्तु इन

सब को अभ्यास में लाकर रोगों से रक्षित रहना चाहिये। अपने शरीर को सुखी और दुःखी रहना हमारे ही ऊपर निर्भर है। अपनी अज्ञानता से हम सब आज कल बहुत क्लेश उठा रहे हैं। हम में से हर एक का धर्म है कि अपने उन भाइयों का जिनका ज्ञान अल्प है, ज्ञान बढ़ावें और उन के दुःख दूर करने और उनके लिये सुख समृद्धि लाने में सहायता दें।

(उद्धृत)

आज का दिन

दुनिया में जो कुछ करना है वह यदि आज कर सकते हों तो आज ही कर डालो, कल के लिए न टालो, कौन जानता है, कल क्या हो ? जब कि पल भर की खबर नहीं तो कल की कौन कहे ? अब ही समय है और आज ही कार्य्य करने का दिन है, यह समझ कर तत्काल कार्य्य करना चाहिए। जो कुछ करना हो सो कर चलो। अनेक मनुष्य आज के दिन को उपयोग में लाकर कल के भरोसे आज को बिगाड़ डालते हैं। कितने ही मनुष्य भविष्यत् की चिन्ता में जलते रहते हैं। कितने ही गई गुजरी बातों पर ही अपने मन में दुःख किया करते हैं। आगे पीछे की बातों का ध्यान रख कर जो यथा समय कार्य्य करते रहते हैं, वे ही दुनिया में बड़े बड़े काम करने वाले बनते हैं।

आज का दिन हमारे काम में हमारी सारी शक्ति, सारी सजीवता और सारा अनुभव माँगता है। आज कुछ न करें तो कल बड़ी खराबी होगी। कल का दिन चला गया अब वह हमारे लिए फिर न आवेगा। ऐसे ही आज का दिन चला जायगा। हमारा

जीवन अनेक आज के दिनों का समूह है, इस से कदापि आज को तुच्छ दृष्टि से न देखो। आज के दिन हमें बड़े बड़े काम करने हैं। जो ग़लतियां कल कर चुके हो, आज उन से लाभ उठाना है। कल की ग़लतियों पर रोने झींकने से काम नहीं चलता, किन्तु आज के दिन सावधानी करने ही से लाभ है।

हर रोज़ प्रातःकाल उठो और अपनी सारी शक्ति से आज के दिन को काम में न लाओ। आने वाली कल तथा जाने वाली कल की परवाह न करो। जाने वाली कल तो सदैव के लिए चली ही गयी। यदि आज तुम सावधानी से रहोगे तो आने वाली कल मज़े में कटेगी। कल कुछ घंटों में आकर अपना रूप बदल कर आज हुई जाती है। प्रकृति का नित्य आज पैदा करने का सिलसिला अनन्त काल से चला आ रहा है। जो आज के दिन को अच्छी तरह व्यतीत करते हैं, उनका जीवन भी भली भान्ति व्यतीत होता है।

गत समय की मनुष्यकृत सारी उन्नति से लाभ उठाना आज तुम्हारे ही हाथ में है, पर क्या इस आज को ऐसी सुस्ती में व्यतीत कर दोगे? एक तत्वज्ञ विद्वान् का वचन है कि मनुष्य का आज का दिन उसका एक छोटा सा जीवन है। जग कर मनुष्य जन्म लेता है। वह प्रातःकाल, मध्यान्ह और सायंकाल को अपना बालकपन युवावस्था और बुढ़ापे के समान व्यतीत करता है। रात्रि को गाढ़ निद्रा से सोना ही हमारा छोटे जीवन का अन्त है। ऐसे ही छोटे छोटे जीवनों से हमारा कुछ वर्ष का जीवन बना हुआ है। इससे आज का दिन वृथा खोना पाप है।"

श्रीकृष्ण कहते हैं, "बुद्धिमान् गत विषय पर सोच नहीं करते,

भविष्यत् की वृथा चिन्ता नहीं करते, किन्तु वर्त्तमान ही में वे बहुत सम्भल कर चलते हैं।" इससे हमें आज के दिन को आनन्द से काम करके और उस से लाभ उठा कर समाप्त करना चाहिए। हमें आज के दिन कोई न कोई ऐसा काम ज़रूर करना चाहिये कि जिससे हमारा और हमारे देश का उपकार हो। आज के विषय में काम करने के लिये एक कवि कहता है—

" काल करो सो आज कर, आज करो सो अब।
पल में परलय होयगी, फेर करोगे कब॥ "

वास्तव में आज का दिन एक बड़ी चीज़ है। कोई कोई आलसी आदमी कहा करते हैं कि आज नहीं, कल यह काम कर लेंगे; पर कहिये तो क्या वह बता सकते हैं कि आज का दिन छोटी बात है ? आज के दिन हज़ारों लाखों रुपयों का लेन देन, लाखों रुपये का नफ़ा नुकसान हो जायगा। वह देखो, आज कितने ही परलोक-यात्रा कर गये। आज कितने ही घरों में पुत्रों की बधाईयाँ पड़ रही हैं। एक कवि कहता है "आज के दिन काम करने वाले ही कब कल पावेंगे।"

(उद्धृत)

मातृ-भूमि

माता के शब्द में न जाने ईश्वर ने कैसा माधुर्य्य प्रदान किया है कि वह किस शब्द में जा मिलता है। उसी शब्द में एक अपूर्व सरसता, विचित्र माधुर्य्य तथा हृदयग्राही प्रभाव उत्पन्न कर देता है। जैसे मिश्री की डली दूध, पानी आदि किसी भी चीज में पहुँच

जाय, वह वहाँ ही मीठापन पैदा कर देगी। एक सुप्रसिद्ध लेखक कहता है कि यदि मुझ से पूछा जावे कि संसार के मनुष्यों की भाषा में सब से मधुर शब्द कौनसा है तो मैं कहता हूँ कि शब्दों के कोष में वही शब्द सब से अधिक मीठा है जिस के द्वारा मनुष्य अपनी जननी को पुकारता है। रोते हुए बालक जिस शब्द से धीरज बाँधते है, जिसके द्वारा युवा भक्ति और निःस्वार्थपरायणता सीखते हैं, जो थके मनुष्यों के मुख से स्वतः ही निकल कर उनको सुख देता है, दुःख में और आपत्तियों में जिस के उच्चारण से मन शान्ति प्राप्ति करता है, पवित्र प्रेम की यह शब्द साक्षात् मूर्त्ति है। जिस मनुष्य के हृदय में माता शब्द कहने से कुछ भक्ति-भाव और आदर सत्कार का सञ्चार नहीं होता, वह मनुष्यों में निवास करने योग्य नहीं है।

मकार ने संसार भर की अक्षर-दीपिका में मधुरता ला दी है। इसके बिना माता और मधुरता शब्द बन ही नहीं सकते। योगी-जन और सिद्धजन तथा बड़े बड़े पादड़ी और मौलवी जिसके प्राप्त करने की लालसा दिन रात लगाये रहते हैं, वह "मुक्ति" भी मकार ही की करामात है। संस्कृत में माता, हिन्दुस्तान की अनेक भाषाओं में मा और अम्मा, अङ्गरेजी में मामा और फ़ारसी में मादर, सब जगह मकार की व्यापकता विराजमान है। सचमुच माता शब्द शब्दों में एक ही है। इसकी उत्कर्षता को कोई मार्म्मिक ही समझ सकता है।

पति पत्नी का सम्बन्ध चिरप्रसिद्ध है। हमारे शास्त्रकारों ने दोनों को एक ही के दो रूप (पति पत्नी) माने हैं। एक ही शरीर के पति पत्नी दो आधे आधे अङ्ग हैं। इसलिये स्त्री अर्द्धाङ्गिनी कही

जाती है। इन दोनों का बन्धन अटल है। इनके द्वारा ही सृष्टि का क्रम चलता रहता है। मनुष्य जाति की वृद्धि और माता, पिता भाई, बहिन सब को ये उत्पन्न कर संसार को चलाते हैं। परन्तु क्या पति पत्नी का प्रेम उस प्रेम-सन्निकर्ष को प्राप्त कर सकता है, जो प्रेम माता और उसके छोटे से मुसकराते बच्चे के हृदय में निवास करता है ?

इसमें सन्देह नहीं कि पति पत्नी का बन्धन बड़ा दृढ़ और चिरस्थायी होता है। परन्तु बालक माता ही का एक भाग है। जन्म लेने पर ही बालक माता से अलग दीख पड़ता है। माता और बालक का सम्बन्ध फिर भी दृढ़ रहता है। बालक में जीवन पड़ते ही तथा उसके संसार में आने पर माता उसकी एक मात्र पालन पोषण करने वाली शक्ति है। माता और सन्तान का विचित्र सम्बन्ध है, इस सम्बन्ध की बराबरी संसार का कोई सम्बन्ध नहीं कर सकता। पिता का गौरव माता से दूसरे दर्जे पर रखा है, इसलिये ही माता पिता उच्चारण किया जाता है, पिता माता कोई नहीं कहता। माता सी वस्तु संसार में और कोई नहीं है। वेद में भी पहिले मातृमान् है, पीछे पितृमान् और उसके पश्चात् आचार्य्य-वान्। इससे भी माता का दर्जा बहुत बड़ा ज्ञात होता है। मनु जी महाराज ने भी मनुस्मृति में माता की प्रतिष्ठा पिता से दसगुणी अधिक लिखी है। मातृभूमि हमारी माता की माता और हमारे सब देशवासियों की माता है। उसकी गोद में हम पल कर युवा हुए हैं। जो अपनी मातृभूमि को प्रेम करना नहीं जानते, क्या वे मनुष्य कहे जाने के योग्य ठहर सकते हैं ?

एक अङ्गरेज कवि कहता है—"क्या कोई ऐसा प्राणहीन

मनुष्य है, जो अपनी मातृभूमि का नाम प्रेम से नहीं लेता ? जिसे अपनी मातृभूमि से प्रेम और अनुराग नहीं है, वह मनुष्य जीवित कदापि नहीं कहा जा सकता।" मातृभूमि की ममता पशु पक्षियों तक पायी जाती है। क्या एक तोते की कहानी सुनी है, जिसने अपनी मातृभूमि के वियोग में छटपटा कर अपने प्राण छोड़ दिये थे। मातृभाषा ही मातृभूमि की मधुर भाषा है। इससे प्रत्येक मनुष्य का धर्म्म है कि अपनी मातृभूमि और मातृभाषा को प्रेम करे और उनका सम्मान करे। मातृभूमि की धूल से संसार भर के मणिमुक्ता तुच्छ हैं। मातृभूमि की पवित्र धूल को शिरोधार्य्य करो। यही हमें मातृ-पूजन करते योग्य बनावेगी। क्या अपनी माता को भूल जाने से कोई सुख पा सकता है ? माता से जन्म पाने की बात कभी मत भूलो, नहीं तो कृतघ्नी कहलाओगे। मनुष्य के दर्जे से गिर जाओगे। बहुत सम्भल कर चलने का अवसर है। हमारी मातृभूमि हमारी सच्ची माता है। हम चाहे कभी अयोग्य बन जावें, परन्तु माता कुमाता कभी नहीं हो सकती। हमारी इस मातृभूति ने बड़े बड़े प्रतापवान् एवं तेजधारी पुत्र पैदा किये हैं। यह हमारे पूर्वजों की माता है। हमारे श्रीराम और श्रीकृष्ण इसकी धूलि में खेले हैं। व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, प्रताप, शिवाजी, आर्य्य भट्ट, भास्कराचार्य्य प्रभृति महानुभाव सब इसकी सन्तान थे, जिन्होंने अपनी योग्यता से संसार भर को देदीप्यमान कर दिया था। दर्शन, उपनिषद्, सब हमारी माता की सन्तानों ही के रत्न हैं। जो अपनी मातृभूमि की सेवा करने से मुँह मोड़ते हैं, उनके समान पापी कौन है ?

मातृभूमि का जो ऋण हमारे ऊपर है, उसको भूलना कदापि

उचित नहीं है। मातृभूमि को दुःख में, सुख में, देश में, परदेश में कभी न भूलो। स्मरण रहे कि माता के आशीर्वाद तथा शाप दोनों में बड़ी शक्ति है। हमारा कर्त्तव्य है कि जिस मातृभूमि का अन्न खाकर हमारे पूर्वज पले थे, जिस मातृभूति में हमारे माता पिता ने हमें जन्म दिया है, जिसका पानी और फल खाकर हम अपनी जीवन-यात्रा चला रहे हैं, उस मातृभूमि की सेवा में हम तन मन धन अर्पण करें। मातृभूमि की सेवा हम कैसे करें? यह बात हम सब उन्नत देशवासियों तथा अपने शासक अङ्गरेजों से बहुत कुछ सीख सकते हैं। एक सुपुत्र बेटे को देखकर कुपुत्र बेटा भी सुधर सकता है। आज हम अपनी माता का सम्मान और पूजा भूल गये। मातृभूमि की सेवा करना भूल गये। सभ्य जातियों की दृष्टि में अपना सम्मान-बनाये रखने के लिये मातृ भूमि को पूजा करना ही एक मात्र उपाय है। अपने भाइयों को रक्षा और मातृभूमि की सेवा के लिए तन मन धन अर्पण करो। प्राण तो देह-पिञ्जर से एक न एक दिन निकलंगे ही, अच्छा हो कि मातृभूमि को सेवा करते करते यह निकलें, जिससे अशान्ति दूर हो, राजा प्रजा में प्रेमभाव का पूर्ण विकास हो, देश की दरिद्रता मिटे, विद्या का प्रकाश हो। इसके लिये प्राणपण के चेष्टा करना ही मातृभूमि की सच्ची सेवा है। एक कवि कहता है—

जननी अरु निज भूमि को, बड़ प्राण हु से देख।
जाको सेवा करन को, प्राण न कछु अवरेख॥

———

पत्र-लेखन

पत्र लिखना भी एक कला है। इस का ज्ञान प्रत्येक पढ़े लिखे के लिये आवश्यक है। कविता, प्रस्ताव और लेख प्रत्येक मनुष्य को नहीं लिखने पड़ते, पर पत्र सब को लिखने पड़ते हैं। प्रस्ताव आदि कभी २ लिखे जाते हैं, पर पत्र तो हमें प्रायः नित्य ही लिखने पड़ते हैं। इस लिये पत्र-कला नित्य व्यवहारोपयोगी और अत्यन्त आवश्यक कला है। नीचे हम संक्षेप से इस कला के सम्बन्ध में साधारण जानकारी की बातें लिखते हैं।

पत्र लिखने में भी 'भाव' और 'भाषा' के वही नियम ध्यान में रखने चाहियें, जो ऊपर प्रस्ताव लिखने के लिये बताये गये हैं। हां, पत्र में व्यक्तिगत बातें बहुत सी रहती हैं। पत्र एक प्रकार की लिखित बातचीत है, इस लिये इस की भाषा ऐसी ही होनी चाहिये जैसे हम मानों अगले से बातें कर रहे हैं। पत्र की भाषा सरल, शब्द सुगम निजी और घरेलू, वाक्य छोटे और भाव स्पष्ट होने चाहियें।

हिन्दी में पत्र लिखने की दो प्रणालियां प्रचलित है। एक प्राचीन देशीय प्रणाली है जो अब दिनों दिन ह्रास पर है और दूसरी नई प्रणाली है जिस का प्रादुर्भाव पाश्चात्य अंग्रेजी प्रणाली के संपर्क और प्रभाव से हुआ है। यह नई प्रणाली बिल्कुल अंग्रेजी पत्र-पद्धती का अनुकरण है। प्राचीन प्रणाली में जटिलता बहुत है। प्रशंसा और लम्बी प्रशस्तियों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। किसने पत्र लिखा है, कहां से लिखा है, और किस को लिखा है यह प्रथम वाक्य में ही आजाता है। नीचे समाप्ति पर लेखक का

नाम नहीं लिखा जाता, केवल तिथि दी जाती है। निजी पत्रों के अतिरिक्त कारोबारी और व्यापारिक पत्रों में भी यही शैली प्रयुक्त होती है। पुराने ढङ्ग के पण्डित, वृद्ध लोग, साधारण अक्षराभ्यासी और देसी व्यापारी अभी तक इस प्रथा का अनुकरण करते हैं। नये पढ़े लिखे, और साहित्यिक पुरुष नवीन पद्धति को अच्छा समझते हैं। नवीन पद्धति में सरलता है, संक्षेप है, और सुगमता है। इस में प्रशस्ति बहुत संक्षिप्त और प्रयोजन की बात अधिक होती है।

पुरानी प्रथा के पत्र लिखने में भी विशेष नियमों का ध्यान रखना पड़ता है। गुरु को, सन्यासी को, राजा को, पिता को, बड़े भाई को, बराबर वालों को, अपने से छोटों को पत्र लिखने की भिन्न २ प्रणालियां और रीतियां होती हैं। पुराने ढंग के पत्रों का ढाँचा इस प्रकार का होता है।

सब से प्रथम पत्र के ऊपर मङ्गल होता है—जैसे "श्रीहरी", "श्रीगणेशायनमः", "श्रीरामजी" इत्यादि। फिर प्रशस्ति प्रारम्भ होती है जो विविध विशेषणों से अलंकृत की जाती है। इस में सम्बोधित व्यक्ति की प्रशंसा, महिमा और गुणगान और लेखक का विनीतभाव जताया जाता है। शब्दाडम्बर और लम्बी चौड़ी प्रशंसा के साथ लिखनेवाले का नाम और स्थान इसी वाक्य में बता दिया जाता है। बड़ों को "सिद्धिश्री" और छोटोंको "स्वस्तिश्री" से प्रारम्भ करते हैं। बड़ों को "स गुणालंकृत", "सर्वगुणनिधान विराजमान", "सर्वोपमायोग्य" आदि लिखते हैं छोटों को "चिरञ्जीव" आदि लिखते हैं। बड़ों को प्रणाम और छोटों को आशीष या आयुष्मान् लिखा जाता है। बराबर वालों को या छोटी जाती वालों को "जयसीताराम" "जयराधेश्याम", "रामराम"

'रामसत',; स्त्रियां स्त्रियों को 'गलेमिलना, और इतर सम्बन्धियों को 'सुखसांद' लिखती हैं। इसके पश्चात् दूसरा वाक्य होता है—'अत्रकुशलं तत्रास्तु' या आप का कुशल श्रीरामजी से—श्री गङ्गामाई से—श्रीनारायण से शुभ चाहता (ती) हूं—या गङ्गा माई आप को सुखी रखे—इत्यादि।

फिर 'श्री' लिखने के भी नियम हैं। गुरु को 'श्री ६', पिता को 'श्री५', राजा और संन्यासी को 'श्री१०८', बड़े २ महापुरुषों को 'श्री१००८', मित्र को 'श्री३', पुत्र और पत्नी को 'श्री' लिखते हैं।

'प्रशस्ति' और 'कुशलसमाचार' के उपरान्त 'हाल' होता है। फिर सब मित्र सम्बन्धियों का नामस्मरण करके 'यथायोग्य नमस्कार' 'प्रणाम', 'चरणछूना', और बच्चों को 'प्यार' आदि लिखा जाता है।

प्राचीन शैली के पत्रों के एक दो नमूने नीचे दिये जाते हैं।

उदाहरण

गुरु को

श्री गुरवे नमः

सिद्ध श्री ६ सकल-गुण निधान, विद्वद्वृन्दशिरोमणि, समस्त-विद्यापारीण, बुधधुरीण, अज्ञान विनाशक, पूज्यपाद, शुभस्थान हरिद्वार विराजमान श्री गुरुदेवचरणकमलेषु लवपुर से दासानुदास शिष्य चरणसेवक, आज्ञाकारी अनुचर देवदत्त का साष्टांग प्रणाम (या दण्डवत) पहुंचे। यहां आप के कृपा-कटाक्ष से सब मङ्गल है, आप के श्री चरणों का क्षेम श्री नारायण जी से सदा शुभकांक्षी हूँ। .... इति शुभम्। मिति भाद्रपद शुदि ५ सं० १९९०।

शिष्य को

श्री रामो जयति

स्वस्ति श्री सर्वशुभ-लक्षण-युक्त प्रिय शिष्य चिरंजीवी देवदत्त को लवपुर स्थाने योग्य लिखी हरिद्वार से कृष्णानन्द का अनेक आशीर्वाद पहुंचे। यहाँ सब आनन्द है, श्री गङ्गा माता तुम्हें दीर्घायु करें ... ... शुभम्। मिति...... ।

स्त्रियों का पत्र स्त्रियों को

श्री राम जी,

सिद्धि श्री सर्वोपमायोग्य सकलगुणनिधान, सब गुणों की खान, धर्मपालने हारी, हरदम याद आने वाली प्यारी ननद सीता देवी जी को लाहौर से भाबी यशोदा का गले मिलना (राम सत बाचना)......।

एक व्यापारी पत्र

स्वस्ति श्री स्थान लाहौर से नत्थूमल टेकचन्द का सेठ रामशाह जौहरी को राम राम। आप के लिखे अनुसार कल दिन मिति...... को आप के नाम ५०००) का बीमा भेज दिया है। पहुंच से पता दें......... मिति......... ।

नवीन शैली

नई शैली में 'मङ्गल' संक्षिप्त होकर 'श्रीः' 'श्री हरिः' या 'ओ३म्' रह गया है। कोई २ कुछ भी नहीं लिखता। प्रशस्ति अत्यन्त संक्षिप्त होकर 'पूज्य', 'पूज्यपाद', 'प्रियवर', 'प्रियमहाशय' आदि रह गई है। 'नमस्कार', 'प्रणाम' 'चरण बन्दना', 'नमस्ते' आदि भी लुप्त हो रहा है। कुशल समाचार की एकाध पंक्ति के बाद सीधा 'हाल' प्रारम्भ हो

जाता है। लिखने वाले का नाम अन्त में दाईं ओर लिखा होता है।

नई शैली के पत्रों का ढांचा इस प्रकार है:—

मंङ्गल—पत्र के ऊपर मध्य में 'ओ३म्' 'श्री' आदि लिखना।

स्थान और तिथि—पत्र के दाईं ओर के कोने में ऊपर अपना निवास स्थान और उसके नीचे दूसरी पंक्ति में तिथि।

सम्बोधन प्रशस्ति या सरनामा—यह भिन्न अवस्थाओं में भिन्न २ होता है। बड़ों को 'श्रीयुत पूज्यपाद', 'पूज्यवर' 'पूजनीय' 'मान्यवर', 'माननीय' इत्यादि। बराबर वालों को 'प्रियवर' 'प्रियमहाशय' छोटों को जैसे 'प्रियपुत्र गङ्गाराम' इत्यादि। यह एक पंक्ति में ही समाप्त कर दिया जाता है। इसमें बड़ों को 'प्रणाम', 'नमस्कार' और दूसरों को 'नमस्ते' आदि लिखते हैं।

नमस्कार—बड़ों को 'प्रणाम', 'चरण वन्दना'; बराबर वालों को 'नमस्ते', 'सप्रेम नमस्ते', 'सादर नमस्ते' इत्यादि। छोटों को 'सुखी रहो', 'आनन्द रहो','आशीर्वाद', इत्यादि।

विषय या हाल—जो कुछ पत्र में लिखना हो फिर लिखा जाता है। इसमें जो इच्छा हो लिख सकते हैं। इसमें शिष्टाचार का नियम नहीं।

समाप्ति—यह पत्र के अन्त में दाईं ओर की जाती है। इसमें लिखने वाले का नाम और विनय प्रदर्शन होता है। यथा 'आपका आज्ञाकारी', 'विनीत' या 'भवदीय'.........आगे लेखक का नाम

पता—यह पत्र या लिफाफे के बाहर लिखा जाता है। इसमें पहले नाम तथा उपाधियां; फिर स्थान-ग्राम, डाकखाना, ज़िला आदि। बड़े शहरों के लिए गली मोहल्ले या सड़क का नाम या कोठी का नम्बर भी लिखना पड़ता है।

उदाहरण

ओ३म् (मङ्गल)

(स्थान) लाहौर।

(तिथि) १५ अगस्त, १९३३

श्री पूज्य पिता जी, सादर प्रणाम। (सम्बोधन और नमस्कार)

विषय... ... ...।

(समाप्ति) आपका आज्ञाकारी पुत्र

(पता) श्रीयुत ला. रामसहाय जी कपूर बी. ए. एल एल.बी.

बाबू मोहल्ला, कोइटा

साधारणतया नई शैली में अंग्रेजी का ही अनुकरण होता है। अतः कारोबारी और दूसरे पत्रों में बिलकुल अंग्रेजी ढंग बरता जाता है। प्रायः अंग्रेजी पत्र-पद्धति के नियम यहां भी प्रयुक्त होते हैं।

पत्र कई प्रकार के होते हैं। साधारणतया हम उन्हें दो विभागों में बांटते हैं।

निजी पत्र, कारोबारी पत्र।

निजी पत्र तो वे हैं जो अपने सम्बन्धियों और मित्रों को लिखे जाते हैं। जैसे पिता, माता, भाई, बहिन, मामू, स्त्री, पति, और मित्रों आदि को।

कारोबारी पत्र कई तरह के होते हैं—जैसे व्यापारिक, सरकारी, अर्धसरकारी, कानूनी, नौकरी आदि के लिए 'प्रार्थना पत्र', 'विवाह का सहयोग', आदि के निमन्त्रण-पत्र। इनमें कानूनी पत्र तो कानून पढ़कर लिखने आते हैं, उन्हें अर्जीनवीस और वकील ही लिख सकते हैं। शेष पत्रों के सम्बन्ध में हम संक्षेप से लिखते हैं।

निजी पत्रों में तो उपर्युक्त 'शिष्टाचार' के भाग के अतिरिक्त

'पत्र के कलेवर' में जो चाहो लिख दो; पर कारोबारी पत्रों में कुछ भी न्यूनाधिक न लिखना चाहिए। जो कुछ लिखना हो उसे साफ़ सीधे शब्दों में लिख दो। यदि कोई व्यापारी पत्र है, तो जो कुछ मंगवाना हो उसे साफ़ २ स्पष्ट लिखो। उसका नाम, बनाने वाले का नाम, संख्या आदि पूरा २ लिखना चाहिये। व्यापारी पत्र में कोई घरेलू बात न हो।

नवीन शैली के पत्रों के नमूने

निजी पत्र

पुत्र की ओर से पिता को पत्र (छुट्टियों में बाहर भ्रमण जाने की आज्ञा और रुपया मंगवाना)

ओ३म्

डी. ए. वी. हाई स्कूल,
लाहौर, १५ जुलाई, १९३३

श्रीयुत पूज्य पिता जी,

सादर प्रणाम

आपका १०-७-३३ का कृपा पत्र मिला! श्री माता जी के स्वस्थ होने का समाचार पढ़ कर अत्यन्त हर्ष हुआ। परमात्मा की कृपा का धन्यवाद है जिसने उन्हें शीघ्र नीरोग कर दिया। बहिन कमला का अब क्या हाल है ? आशा है अब वह स्कूल जाती होगी।

आप मेरे सहाध्यायी और प्रिय मित्र सुरेश को जानते ही हैं। वह पिछले वर्ष छुट्टियों में हमारे यहाँ रहा था। उसके पिता जी की बदली अब शिमले की हुई है। सुरेश की इच्छा है कि इस वर्ष छुट्टियों में मैं उस के साथ शिमले चलूँ। इस सम्बन्ध में उस के पिताजी ने भी मुझे शिमले आने का निमन्त्रण दिया है। मुझे स्वयं शिमला देखने का बहुत चाओ है। सुनते हैं वहां का जल

वायु स्वास्थ्य के लिये अत्युत्तम है। वहां के दृश्य लुभावने हैं। सैर के लिये बहुत सी सड़कें हैं। इसलिये यदि आप आज्ञा दें तो मैं ग्रीष्मावकाश में सुरेश के साथ शिमले चला जाऊँ। हमें ३ अगस्त से ग्रीष्मावकाश होगा। वहां पर हम दोनों इकट्ठे रहेंगे और स्कूल का काम तथा पढ़ाई मिलकर नित्य नियम पूर्वक करेंगे। ठण्ड होने के कारण वहां पढ़ाई भी खूब होगी और स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा। आशा है आप शीघ्र ही आज्ञा भेजने की कृपा करेंगे।

शिमले जाने में मेरा कोई विशेष व्यय न होगा। तो भी साधारण जेब खरच और किराये आदि के लिये ५०) शीघ्र भेज दीजिये।

घर में श्रीमाताजी की सेवा में प्रणाम। कमला और सुरेन्द्र को प्यार। योग्य सेवा लिखिये।

भवदीय आज्ञाकारी पुत्र,

देवेन्द्र

पता :—

श्रीयुत ला० अमरनाथजी साहनी,

बी० ए० एल एल० बी०, वकील,

सदर बाज़ार,

फ़िरोज़पुर (छावनी)

पिता की ओर से उत्तर—

सदर बाज़ार, फिरोज़पुर
१८ जुलाई, १९३३

प्रिय पुत्र देवेन्द्र,

तुम्हारा १५ जुलाई का पत्र मिला, जिस में तुमने सुरेश के साथ शिमले जाने की बाबत लिखा है। मुझे प्रसन्नता है कि सुरेश और तुम परस्पर भ्रातृ-प्रेम रहते हो और तुम्हारी मित्रता प्रतिदिन बढ़ रही है। मैं तुम्हें सहर्ष आज्ञा देता हूँ कि तुम शिमले चले जाओ। इस सम्बन्ध में ५०) का मनीआर्डर आज की डाक से भेज रहा हूँ। प्रिय पुत्र सुरेश को मेरा प्यार कहना। शिमले में सुरेश के माता पिता की आज्ञा में रहना। कोई शिष्टाचार-विरुद्ध कार्य न करना। वहां सर्दी बहुत होती है इस से ठण्ड से सदा बचते रहना। अपने गरम कपड़े साथ ले जाना। तुम्हारी माता जी तुम्हें आशीर्वाद भेजती हैं। कमला की नमस्ते। किसी और वस्तु की आवश्यकता हो तो लिखना।

भवदीय हितेच्छुक,
अमरनाथ साहनी

पताः—देवेन्द्र साहनी विद्यार्थी ९वम् श्रेणी,
कमरा नं० १०८ डी. ए. वी. हाई स्कूल, बोर्डिङ्ग-हाउस

ज्येष्ठभ्राता को पत्र (विषयः—छुट्टियां किस प्रकार व्यतीत कीं)

ओ ३ म्

अम्बरोसिया लौज, रामबाजार,
शिमला।
२१-९-३३

पूज्य भ्राता जी,

सादर नमस्ते

आपके आदेशानुसार गर्मी की छुट्टियों का वृत्तान्त लिख रहा हूँ। छुट्टियों से एक सप्ताह पूर्व ही मैंने श्री पिता जी से सुरेश के साथ शिमले जाने की आज्ञा प्राप्त कर ली थी। जिस दिन हमें छुट्टियां हुई उसी दिन रात को मैं और सुरेश 'काल्कांशिमला एक्सप्रैस' से शिमला को चल दिये। दूसरे रोज़ प्रातः ३ बजे के लगभग हमारी गाड़ी काल्का पहुंची। यहां से हम छोटी गाड़ी में सवार हुए। छोटी गाड़ी क्या है, अद्भुत खिलौना है। यह इतनी धीमी चलती है कि मनुष्य चलती हुई गाड़ी पर चढ़ सकता है। रास्ते में १०० से ऊपर सुरङ्ग द्वार हैं। रेल की सड़क बड़ी टेढ़ी मेढ़ी और ऊपर नीचे है। रेल पर चढ़े हुए यह पता नहीं लगता कि हम किधर को जा रहे हैं। कभी पूर्व की ओर और कभी पश्चिम की ओर जाते हुए कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि हम लौट कर लाहौर की ओर जा रहे हैं। सड़क को देखकर उसके बनाने वाले इञ्जिनीयरों की बुद्धि और योग्यता की प्रशंसा किये बिना कोई नहीं रह सकता। हमारी गाड़ी लगभग १० बजे प्रातः शिमले पहुंची। स्टेशन से ऊपर चढ़ कर हम शहर को गये। सुरेश के घर पहुंच कर हम स्नान, संध्या, भोजनादि से निवृत हुये। फिर उस दिन खूब विश्राम किया।

तब से लेकर आज तक मैं शिमले में ही हूँ । इस बीच में मैंने शिमले की खूब सैर की है । हम प्रातः सायं दोनों समय सैर को जाते हैं । और दोपहर को मन लगा कर स्कूल का काम करते हैं । अंग्रेजी और हिसाब का काम तो हमने अगस्त में ही समाप्त कर लिया था । उस के बाद इतिहास याद किया । अब संस्कृत और हिन्दी का काम कर रहा हूँ जो १-२ दिन में समाप्त हो जायगा ।

शिमले में सैर के लिये बहुत सी सड़कें हैं । पर 'झाखू टिल्ले का घेरा' सैर के लिये सर्वोत्तम स्थान है । उधर बहुत से व्यक्ति सैर को जाते हैं । हमारी प्रातः की सैर प्रायः रोज उधर ही होती है । झाखू का सारा घेरा लगभग ५ मील का है । सड़क के दोनों ओर घने वृक्ष हैं । वायु शुद्ध होती है । मन अत्यन्त प्रसन्न होता है । एक दिन हम सुरेश के पिता जी की आज्ञा से 'चैड्विक फाल' देखने गये । यह भी अद्भुत और रमणीय स्थान है । कभी २ हम संजौली और मशोबरे चले जाते हैं । एक दिन कसुमटी से हो कर हम जुंगा रियास्त में गये । 'तारादेवी', 'समरहिल' और 'प्रास्पैकटिस हिल' का दृश्य भी दर्शनीय है । शहर के नीचे एक बड़ा खुला मैदान है जो खेलने के लिये बनाया गया है । इसे 'एनण्डेल' कहते हैं । ऐसे विषम पहाड़ पर इतने बड़े मैदान का बनाना वास्तव में हमारे शासक अंगरेजों के खेल कूद के शौक को प्रकट करता है । वैसे भी प्रत्येक अंग्रेज़ की कोठी में छोटे २ टैनिस आदि खेलने के क्रीडास्थल बने हुए हैं । पहाड़ों पर ऐसे क्रीडास्थल बहुत कठिनता और बहुत धन व्यय करके बनते हैं । अगले रोज़ 'एनण्डेल' में एक फुटबाल मैच था । एक ओर बंगाली टीम थी, दूसरी ओर

पोलीस के सिपाही थे। दर्शकों को संख्या १००० से ऊपर थी। मैच अत्यन्त रोचक था। बंगाली धोती धारियों ने पोलिस के हट्टे कट्टे सिपाहियों को दो गोलों से हरा दिया।

इन्हीं छुट्टियों में यहां असैम्बली की बैठक थी। एक दिन हम सुरेश के पिता जी के द्वारा दो पास (आज्ञापत्र) प्राप्त करके वहां गये। असैम्बली का हाल अत्यन्त सुन्दर और विशाल है। यह लम्बोतरी सी शकल का है। सामने एक प्लैटफार्म बना हुआ है जिस पर प्रैज़िडेण्ट (प्रधान महोदय) बैठते हैं। प्रधान जी के साथ एक सिपाही अफ़सर भी रहता है। नीचे दाईं ओर सरकारी मैम्बरों के बैठने की कुरसियां लगी हुई हैं। बाईं ओर देसी या सरकार के विपक्ष वाले मैम्बर बैठते हैं। बीच में लम्बे २ गोल मेज़ बिछे हुए हैं जिन पर कार्यवाही लिखने वाले क्लार्क बैठते हैं। पास ही अखबारों के सम्वाद-दाताओं के लिये स्थान नियत है। हाल के दोनों तरफ परदों के अन्दर छोटे २ कमरे हैं, जहां विश्राम आदि के लिये मैम्बर लोग जाते हैं। ऊपर की गैलरी में दर्शकों के लिये स्थान है। प्रत्येक द्वार पर पोलीस का पहरा होता है।

मेरा स्वास्थ्य इस वर्ष बहुत अच्छा रहा है। मुझे मलेरिया ज्वर नहीं आया। मेरा देह-भार भी ५-६ पौण्ड बढ़ गया है। सुरेश के माता जी मुझे पुत्रवत् प्रेम करते हैं। सुरेश के पिता जी तो बहुत ही सज्जन पुरुष हैं। दफ़्तर से आते ही वे हमारी पढ़ाई का निरीक्षण करते हैं।

मैं एक सप्ताह तक यहां से घर जाऊंगा क्योंकि श्री माता जी से मिलने को बहुत दिल चाह रहा है। हमारी छुट्टियां

दो अकटूबर को समाप्त होंगी। शेष सब कृपा है। श्री भाबी जी की सेवा में नमस्ते। विमला को प्यार। योग्य सेवा लिखिये।

भवदीय लघुभ्राता
देवेन्द्र

पता :—श्रीयुत नरेन्द्र कुमार बी. ए.
सुपरइनटेण्डैण्ट, म्युनिसिपल कमेटी कार्यालय,
मुलतान

———

माता की ओर से पुत्री को

ओ३म्

निसबतरोड, लाहौर।
१२-८-३१

प्यारी पुत्री सुशीला, सुखी रहो,

बहुत दिनों से तुम्हारा कुशल समाचार नहीं आया। मैं चिन्तित थी कि न जाने क्या कारण है। भगवान् करे कोई बीमार आदि न हो। आज प्रातः तुम्हारे पत्रिका से कुशल पाकर हृदय शान्त हुआ। तुम ने लिखा है कि तुम बहुत उदास रहती हो। सो पुत्री! अब उदास न होना। वही तुम्हारा घर है और वहीं तुम को दिल लगाना चाहिये। मेरा तो अब मोह ही मोह है। अपने सास, ससुर को ही अब अपना धर्म के माता-पिता समझो। अपनी ननदों से बहिनों की तरह बरतों। मेरा यही आशीर्वाद है कि तुम अब वहीं पर सदा सुखी रहो। तुम्हारे पिता जी कुशलपूर्वक हैं। वे कह रहे थे कि तुम्हें बुलाने के लिये शीघ्र ही जगमोहन को भेज देंगे। उसे अगले मास दसहरे की छुटियां होंगी तभी वह तुम्हें लेने आवेगा।

अपनी सास को मेरी नमस्ते। शेष सब को यथा योग्य। किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो लिखना।

तुम्हारी माता,

भगवती देवी।

पति की ओर से पत्नी को

ओ३म्

रामनगर लाहौर।

१४ अगस्त, १९३३

प्यारी हृदयेश्वरी,

पत्र तुम्हारा मिला। पत्र पढ़ कर प्रसन्नता हुई कि अब मुन्नी को ज्वर नहीं होता। इतने दिन पत्र न मिलने से अधिक चिन्ता हो रही थी। मैं तुम्हारे पत्र की आशा में रोज़ डाकिये की बड़े चाओ से प्रतीक्षा करता था। अब पत्र पढ़ कर हृदय शान्त हुआ।

तुम्हारे आने के बाद घर की व्यवस्था बहुत बिगड़ गई है। नौकर ही अब मेरी रोटी पकाता है। खाना नौकर अच्छा नहीं बनाता। पेट खराब हो रहा है। पिछले दिनों मेरे बहिनोई और सुभद्रा बहिन जो यहां आए थे। दो दिन ठहर कर चले गये। तुम्हारे-गृह प्रबन्ध और सुघड़पने की बहुत प्रशंसा करते थे।

माता जी की सेवा में मेरा नमस्कार। शेष सब को यथा योग्य। मुन्नी को प्यार। पत्रोत्तर शीघ्र देना।

सदैव तुम्हारा,

रामकृष्ण

पत्नी की ओर से पति को

ओ३म्

कोट कृष्णचन्द्र, जालन्धर
१५ अगस्त, १६३३

प्रियतम प्राणेश,

सप्रेम नमस्ते ।

प्रेमपत्रिका मिली । हृदय अत्यन्त हर्षित हुआ । आपका उलाहना पता नहीं कब बन्द होगा । पिछले सप्ताह से मुन्नी बीमार थी । हरे रंग के दस्त आ रहे थे । रात दिन रोती रहती थी । इसी कारण से मैं सेवा में पत्र शीघ्र न भेज सकी थी । अब पिता जी। डा० त्रिलोकनाथ का इलाज करा रहे हैं । अब बहुत आराम है आप अब कुछ चिन्ता न करें ।

भवदीया
कमला

शोकपत्र

प्रेमगली, लाहौर
१०-८-३३

प्यारी बहिन विमला,

प्रियरवीन्द्र की अकालमृत्यु का दारुण समाचार पढ़ कर हृदय विदीर्ण हो गया । न जाने परमात्मा को इस शिशु से क्या काम पड़ गया जो आपकी गोदी से छीन कर इसे पृथक् कर दिया । बहिन ! मनुष्य तो परमात्मा के अटल नियमों के अधीन है । उसी

की इच्छा के आगे सब को सिर झुकाना पड़ता है। उस के कामों में मनुष्य का कोई अधिकार नहीं। वह जो चाहता है करता है। इस में सिवाय धीरज और सबर के और कोई रास्ता नहीं। बहिन! परमात्मा का भी क्या दोष। यह सब अपने ही कर्मों का दोष है। जैसा बोजा है वैसा ही काटना पड़ता है। परमात्मा तो हमें हमारे ही कर्मों का फल देता है। हमने न जाने क्या नीच कर्म किये थे जिन का बदला आज इस पुत्र-वियोग के रूप में हमें मिला है। रवीन्द्र बहुत ही प्यारा और मनमोहन बच्चा था। मैं पिछले दिनों जब आप के पास थी, तो वह थोड़े ही दिनों में मुझ से इतना हिल मिल गया था कि उस की बाल-क्रीड़ा मुझे कभी नहीं भूलती।

अच्छा बहिन! अब यह अप्रतिविधेय है। इस का कुछ इलाज नहीं ईश्वर की इच्छा के आगे सिर झुकाने में ही कल्याण है। अब धीरज से रहना। अधिक रोने धोने से कुछ न होगा। इस से अपना ही स्वास्थ्य बिगड़ेगा। दूसरे आप को अधीर और रोती देख कर रवि के पिता जी का दिल टूट जायगा। पुरुषों का दिल बहुत कमजोर होता है। इस लिये अधिक शोक न करना। जो होना था, सो हो गया। परमात्मा से प्रार्थना है आपको धीरज और प्रिय रवि की आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

आपकी बहिन,

कमला

———

कारोबारीपत्र
(माल मंगवाना)

बटाला
तिथि १५-८-३३

सेवा में

श्रीयुत मोतीलाल बनारसीदास
पंजाब संस्कृत बुकडिपो,
सैदमिट्ठा बाज़ार,
लाहौर

महाशयगण,

कृपया निम्नलिखित पुस्तकें नीचे लिखे पते पर भेज कर कृतार्थ करें। शीघ्रता के लिये अत्यन्त कृतज्ञ होंगे:—

१. नागानन्दनाटक (जीवानन्दकृत टीका सहित) १० प्रति
२. साहित्यदर्पण (बम्बई से प्रकाशित) ५ प्रति
३. कबीरवचनामृत (भारद्वाज का) २० प्रति
४. कुन्दमाला (लाहौर) १५ प्रति
५. सूक्ति-सुधा (हिन्दी भवन प्रकाशित) २० प्रति

इन पर व्यापारियों की कमीशन काट कर माल सवारी गाड़ी से भेजें। और रेल्वे रसीद की वी० पी० कर दें।

भवदीय—
बालकराम लालचन्द पुस्तकां वाले
लक्कड़ मण्डी, बटाला
ज़िला गुरदासपुर

(उत्तर)

मोतीलाल बनारसीदास,

पंजाब संस्कृत बुकडिपो,

सैदमिट्ठा बाजार,

लाहौर

सेवा में

तिथि २०-८-३३

मैसर्ज़ बालकराम लालचन्द

पुस्तकां वाले,

लक्कड़ मण्डी, बटाला

महाशय गण

आपके पत्र मिति १५-८-३३ के अनुसार निम्नलिखित पुस्तकें आप की सेवा में आज की सवारी गाड़ी से भेजी गई हैं। रेलवे रसीद वी० पा० से भेजी है। छुड़ा कर कृतार्थ करें।

१. नागानन्द नाटक (जीवानन्दकृतटीकास.)	१०प्रति दर१।) प्रति१२॥)
२. साहित्यदर्पण (बम्बई)	५) प्रति ,, ३) ,, १५)
३. कबीरवचनामृत (भारद्वाज)	२०)प्रति ,,॥=),, १२॥)
४. कुन्दमाला (लाहौर)	१५) प्रति ,, १) ,, १५)
५. सूक्ति-सुधा (हिन्दी भवन)	२०) प्रति ,, ॥।) ,, १५)
योग	७०)
कमीशन १० प्रतिशत के हिसाब से	७
शेष	६३)
खर्चा पैकिङ्ग मज़दूरी और डाक आदि	॥=)
कुल रकम वी० पी०	६३॥=)

भवदीय

मैनेजर

मोतीलाल बनारसीदास

[एक दुकानदार की ओर से अपने एक पुराने ग्राहक को पत्र]

दी भल्ला शू कम्पनी,

अनारकली,

लाहौर, १५-८-३३

प्यारे डाक्टर साहेब,

हमारी पुरानी वहियों की पड़ताल से यह ज्ञात होता है कि आप प्रारम्भ से ही हमारे कृपालु ग्राहक रहे हैं। अपने तथा कुटुम्ब के प्रयोग के लिए आप सदैव हमारे हाँ से जूता, मौजा, बूट आदि खरीदने की कृपा करते रहे हैं। पर आश्चर्य है कि पिछले वर्ष में आप की ओर से इस सम्बन्ध में कोई आदेश प्राप्त नहीं हुआ। प्रतीत होता है कि आप किसी कारण से हमारे व्यवहार या सेवा से असन्तुष्ट हो गए हैं। हमें विश्वास है कि हमारे माल की मज़बूती और उत्तमता में कोई अन्तर नहीं आया। हमारे मूल्य बाज़ार के भाव से सस्ते हैं। सम्भव है, हमारे किसी नौकर के दुर्व्यवहार से ही आप हम से रूठ गए हैं।

सम्भव है आज कल की भीषण आर्थिक दशा के कारण आप का क्रयविक्रय कम रह गया हो, पर हमारा माल तो नित्य प्रयोग की वस्तु है।

हमें हार्दिक शोक है, यदि आप हमारी किसी त्रुटि के कारण

हम से अप्रसन्न हैं। आप कृपया एक बार अवश्य दर्शन दें और हमें सेवा का अवसर फिर से प्रदान करें।

प्रत्युत्तर में २—४ पंक्तियां भी अत्यन्त अनुगृहीत करेंगी।

भवदीय
भल्ला शू कम्पनी
अनारकली, लाहौर

पता:—

डाक्टर राम लाल साहेब
एम. बी. बी. एस.
बच्छोवाली, लाहौर।

उत्तर

डा० राम लाल,
एम. बी. बी. एस.

बच्छोवाली,
लाहौर।
तिथि—१८-८-३३

प्रियवर भल्ला जी,

आपने १५-८-३३ के पत्र के उत्तर में निवेदन है कि आपका भ्रम मिथ्या है मैं आप के माल की उत्तमता, आपकी सेवा और सद्व्यवहार से पूर्ण सन्तुष्ट हूँ। मैं सदैव माल आप के हाँ से ही लेता हूँ। पिछले वर्ष से मैंने उधार का नियम बन्द कर दिया है। अब मैं नकद रुपया देकर माल लेता हूँ। इसी से आपके बहीखाते में अब मेरा नाम नहीं है।

समय मिलने पर शीघ्र ही दर्शन करूँगा।

भवदीय
रामलाल

सरकारीपत्र

सेवा में

श्रीयुत सिविल सर्जन साहेब बहादुर
कांगड़ा डिस्ट्रिक्ट,
धर्मसाला

श्रीमान् जी,

अत्यन्त प्रतिष्ठा और नम्रता पूर्वक निम्नलिखित कतिपय पंक्तियों की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षण करने की आज्ञा चाहता हूँ।

मैं आप के आदेश-पत्र संख्या १५५६ तिथि ८-४-२३ के अनुसार कांगड़ा सिविल डिस्पेन्सरी से बदल कर यहां आया था और तब से यहीं पर कार्य कर रहा हूँ। यहां रहते हुए मुझे लगभग ६ मास हो गए हैं। जिस दिन से मैं यहाँ आया हूँ, मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया है। यहां का पहाड़ी पानी मेरे अनुकूल नहीं है। मेरी घर वाली को तो अजीर्ण रोग ने इतना तंग किया है कि उसे अब संग्रहणी का असाध्य रोग हो गया है। स्वास्थ्य के साथ ही यहाँ मेरी आय पर भी खासा प्रभाव पड़ा है। यहाँ के पहाड़ी लोग इलाज कराने की ओर से अत्यन्त लापरवाह हैं। जहाँ काँगड़े में मुझे प्रतिमास १००) के लगभग फीस की आमदनी होती थी, यहाँ पर ६ मास में भी १००) नहीं हुई। इस कारण आप से सविनय निवेदन है कि आप मुझे बदल कर काँगड़े या किसी अच्छे से स्थान पर भेज दें। श्रीमान् की मेरे पर सदा कृपा रही है।

मुझे विश्वास है कि इस बार भी आप मेरी प्रार्थना को सहानुभूति से श्रवण करगे ।

मैं हूँ
श्रीमान् जी,
आपका आज्ञाकारी सेवक,
अमरनाथ
इनचार्ज सिविल डिस्पेन्सरी

पालमपुर,
तिथि २८ अगस्त, १९३३,

———

उत्तर

कार्यालय सिविल सर्जन
काँगड़ा डिस्ट्रिक्ट,
धर्मसाला
तिथि—१-९-३३.

सेवा में
डाक्टर अमरनाथ
सिविल डिस्पेन्सरी,
पालमपुर ।

विषय: तबदीली की प्रर्थनापत्र

प्रिय महोदय,

आप के तबदोली के सम्बन्ध में २८ अगस्त १९३३ के प्रार्थना पत्र के उत्तर में आपको सूचना दी जाती है कि अभी निकट भविष्य में तबदीली की कोई आशा नहीं की जा सकती ।

भवदीय
मेजर सी. एल. बत्तरा
सिविल सर्जन, काँगड़ा डिस्ट्रिक्ट

अर्ध-सरकारी पत्र

सर जार्ज स्टीफनसन एम० ए०, आई०ई० एस०,
डायरेक्टर आफ़ पब्लिक इन्स्ट्रकशन पंजाब,
लाहौर

सेवा में

लाला कर्मचन्द एम०ए०, पी ई० एस०,
प्रिंसिपल, गवर्नमेण्ट इण्टरमीडियेट कालेज,
धर्मसाला

डी०ओ० संख्या ४३२

लाहौर, १० अकटूबर, १९३२

प्रिय महोदय,

आपने अपने कालेज के लिये एक हिस्टरी के अध्यापक की नियुक्ति के सम्बन्ध में लिखा है। सो हमारे पास दफ़तर में ला० सदानन्द का प्रार्थना पत्र आया है। वह हिस्टरी में प्रथम कक्षा में उत्तीर्ण एम० ए० है। हिस्टरी के आनर्ज़ में वह सर्व प्रथम उत्तीर्ण हुआ है। उस की प्रार्थना प्रतिष्ठापत्रों और प्रमाणपत्रों सहित आप को भेजी जाती है। आप इस पर विचार करके पता दें कि क्या ला० सदानन्द को सेवा आप को स्वीकार है।

भवदीय
जी० स्टीफनसन

उत्तर

लाला कर्मचन्द, एम०ए०, पी० ई० एस०
प्रिंसिपल गवर्नमेण्ट इण्टरमीडियेट कालेज,
धर्मसाला

सेवा में,

सर जार्ज स्टीफन्सन एम०ए० आई० ई० एस०
डायरेक्टर आफ़ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन, पंजाब,
लाहौर

संख्या १२५०

धर्मसाला, १५ अक्टूबर, १९३२

प्रिय महोदय,

ला० सदानन्द की नियुक्ति के सम्बन्ध में आप का कृपापत्र संख्या ४३२ तिथि १० अक्टूबर के उत्तर में निवेदन है कि मैंने उक्त सदानन्द के प्रार्थना पत्र, और प्रतिष्ठापत्रों पर पूर्ण विचार किया है। मेरे स्टाफ़ के एक मैम्बर मिस्टर मुहम्मदअली भी उस से परिचित हैं। मैंने मि० मुहम्मदअली से उस के सम्बन्ध की भी जानकारी प्राप्त की है। वह बड़ा योग्य और होश्यार विद्यार्थी रहा है। इस के अतिरिक्त वह प्रथम कक्षा का खिलाड़ी भी है। मैंने मि० अली के पास उस की फोटो भी देखी है जो खिलाड़ियों में बैठ कर खिचवाई हुई है। उस की आकृति और डील डौल प्रभावशाली है। मैं उसे अपने कालेज की सेवा के लिये पूर्ण उपयुक्त समझता हूँ।

भवदीय
कर्मचन्द

हैल्थ आफिसर को पत्र

सेवा में

श्रीयुत हैल्थ आफिसर साहिब बहादुर
गुरदासपुर डिस्ट्रिक्ट,
गुरदासपुर

प्रिय महाशय,

उचित प्रतिष्ठा के साथ निवेदन है कि कल शाम को यहां पर हैजे से दो मौतें हुई हैं। एक गरीब चमार का लड़का परसों बीमार हुआ और कल शाम को मर गया। आज सुबह गांओं के पटवारी की पुत्र वधू भी इसी रोग से स्वर्ग सिधार गई है। दो एक और भी रोगी इस रोग से ग्रस्त हैं। भय है कि सारे गांव में कहीं यह भयानक रोग न फैल जावे। इस लिये सविनय निवेदन है कि इस की शीघ्राति शीघ्र रोक थाम के लिये २—३ वैक्सीनेटर आज की गाड़ी से ही भेज दीजिये ; दूसरे गांव की सफाई, और कुओं में दवाई डालने के लिये नम्बरदार के नाम उचित आदेश जारी करदें, जिस से बीमारी के कीड़ों को नष्ट करने और जनता की रक्षा का शीघ्र उद्योग हो सके।

भवदीय विनीत
राधा कृष्ण
अध्यापक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड
प्रायमरी स्कूल

फतहगढ़
जिला गुरदासपुर
तिथि–१२-८-३३

पोस्ट मास्टर जनरल को पत्र ।

सेवा में

श्रीयुत पोस्टमास्टर जनरल,
जनरल पोस्ट आफ़िस,
लाहौर

प्रिय महाशय,

सविनय निवेदन है कि मैंने ५—१०—२५ को कुछ पुस्तकें रिजिस्टर्ड पार्सल द्वारा अपने मित्र ला० कृष्ण लाल, अध्यापक, डी.ए. वी स्कूल होशयारपुर को भेजी थीं। रिजिस्टरी की रसीद का नम्बर ५३२, अनारकली सब पोस्ट आफ़िस का है। आज एक महीने से ऊपर हो गया है पर वह पार्सल ला. कृष्ण लाल को प्राप्त नहीं हुआ। क्या आप कृपा करके इस सम्बन्ध में पूरी पड़ताल करें और उक्त पार्सल को उक्त सज्जन के पास पहुंचाने के उचित आदेश जारी करके मुझे अनुग्रहीत करें ?

भवदीय विनीत,
सरदारी लाल, बी.ए.,बी.टी.
अध्यापक, डी.ए. वी स्कूल

लाहौर
तिथि ८ सितम्बर

नोट:—ऐसे पत्रों के साथ एक आना का टिकट भेजना आवश्यक है।

रेल वालों को पत्र

सेवा में

श्रीयुत सुपरिण्टैण्डैण्ट साहब,
लास्ट प्रापर्टी आफ़िस,
एन. डब्ल्यू, रेलवे.
लाहौर

प्रिय महाशय,

सविनय निवेदन है कि मैं गत [illegible]२ दिसम्बर की रात को फ्रंटियर मेल से लाहौर से देहली गया था। मेरे पास सेकण्ड क्लास का टिकट था और मेरे कमरे का नम्बर ११२ था। देहली उतर कर भूल से मेरी एक गठड़ी रेल में ही रह गई। उस गठड़ी में कुछ पुस्तकें और आवश्यक कागज़ात हैं। पुस्तकों पर मेरा नाम लिखा है। इन में २ पुस्तकें हिन्दी की और शेष अंग्रेज़ी की हैं। मैं आप का अत्यन्त कृतज्ञ होऊँगा यदि आप इस सम्बन्ध में पूरी पड़ताल करके मेरी गठड़ी का कुछ परिचय पाकर मुझे निम्न-लिखित पते पर सूचना देने की कृपा करेंगे। कष्ट के लिये क्षमार्थी हूँ।

भवदीय विनीत,
ताराचन्द, एम.ए.
प्रोफेसर,
गवर्न्मेंण्ट कालेज, लाहौर

लाहौर
तिथि, १३ सितम्बर, १९३२

———

प्रार्थना पत्र और निमन्त्रण पत्र

(नौकरी के लिये आवेदन पत्र)

सेवा में

श्रीमती मुख्याधिष्ठात्री जी,
कन्या महाविद्यालय,
जालन्धर

श्रीमती जी,

कल के ट्रिब्यून में आप के महाविद्यालय में एक अध्यापिका की आवश्यकता के सम्बन्ध में एक विज्ञापन पढ़कर मैं अत्यन्त नम्रता और विनय के साथ आप की सेवा में उक्त स्थान के लिये यह प्रार्थना पत्र भेजती हूँ।

मैं मिडल पास एस० वी० ट्रेण्ड अध्यापिका हूँ। पिछले तीन वर्षों से यहाँ की स्थानीय आर्यपुत्री पाठशाला में मुख्याध्यापिका के रूप में कार्य करती रही हूँ जिस से मुझे पढ़ाने का पूर्ण अनुभव प्राप्त है। आजकल की आर्थिक दुरवस्था के कारण पिछले ३ मास से यहाँ की पाठशाला टूट गई है। अब मैं अन्यत्र नौकरी की तलाश में हूँ। यदि आप अपने महाविद्यालय में मुझे स्थान देकर मेरी सेवाओं को स्वीकार करें तो मैं आजन्म आभारी रहूँगी।

मेरी आयु ३० वर्ष की है। मैं २० वर्ष की आयु से ही विधवा हूँ। वैधव्य में ही मैंने विद्याध्ययन किया है। मेरे एक ११ वर्ष की लड़की भी है।

आपके निरीक्षणार्थ मैं अपने प्रमाणपत्र और प्रतिष्ठापत्रों की नकलें साथ भेज रही हूँ जिन से आपको मेरी योग्यता और

आचार विचार के सम्बन्ध में पूरा ज्ञान प्राप्त हो जायगा।

मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि यदि मैं इस स्थान के योग्य समझी गई तो आप मेरे आचार व्यवहार से सदा सन्तुष्ट रहेंगी।

मु० पट्टी जिला लाहौर
तिथि १० अप्रैल, १९३०

आपकी विनीत सेविका
राधाबाई
अध्यापिका

विवाह का निमन्त्रण पत्र

ओ३म्

श्रीयुत मान्य लाला जानकीराम जी, सप्रेम नमस्ते।

मेरे प्रिय पुत्र चिरञ्जीव वेदव्रत बी० ए० एल० एल० बी० का शुभ विवाह (* श्री ला० अमरनाथ जी एग्जैक्टिव इञ्जीनियर लायलपुर की ज्येष्ठ कन्या श्रीमती शकुन्तला देवी से) १५ वैशाख १९८८, तदनुसार २७ अप्रैल १९३१ को होना निश्चित हुआ है। घोड़ी उसी दिन सायंकाल ५ बजे होगी। आप कृपया परिवार सहित इस मंगल-कार्य में सम्मिलित होकर कृतार्थ करें।

आपका दर्शनाभिलाषी

लाहौर, १५-४-३१

प्राणनाथ कपूर
तहसीलदार
कोठी नं० ५ टैम्पल रोड, लाहौर

---

* कोष्ठ के अन्दर का भाग आवश्यक नहीं। हिन्दी में इसे कम ही लिखते हैं।

परिशिष्ट

अभ्यास के लिये कुछ चुने हुए प्रस्तावों की सूची

वर्णनात्मक

१ भैंस
२ बकरी
३ गधा
४ बन्दर
५ हाथी
६ सिंह
७ रीछ
८ धान की खेती
९ आलू की खेती
१० केला
११ संगतरा
१२ गुलाब
१३ रेशम का कीड़ा
१४ शहद की मक्खी
१५ तोता
१६ कबूतर
१७ देहली
१८ कलकत्ता
१९ लाहौर का अजायब घर
२० ,, चिड़िया घर
२१ अमृतसर
२२ रेलवे स्टेशन
२३ नमक
२४ सोना
२५ लोहा
२६ सायंकाल का भ्रमण

विवरणात्मक

२७ बसन्त पञ्चमी
२८ लोहड़ी
२९ रामनवमी
३० भद्रकाली का मेला
३१ कुरुक्षेत्र का सूर्य्यग्रहण
३२ प्लेग
३३ हैज़ा

३४ बिजली का आविष्कार और लाभ
३५ डाक विभाग
३६ बेतार की तार
३७ अशोक
३८ अकबर
३९ रणजीतसिंह
४० नेपोलियन
४१ क्लाइव
४२ बुद्धभगवान्
४३ सर गङ्गाराम
४४ दमयन्ती
४५ शकुन्तला
४६ पार्वती
४७ महारानी विक्टोरिया
४८ एक मोटरको टांगे से टक्कर की दुर्घटना।
४९ छुट्टियों का भ्रमण
५० अमरनाथ की यात्रा
५१ कोई देहाती मेला
५२ फुटबाल का मैच

विचारात्मक

५३ उदारता
५४ वीरता
५५ ऋण
५६ द्यूत
५७ अहङ्कार
५८ मद्यपान की बुराइयाँ
५९ मातृ-भाषा
६० शिक्षा का माध्यम-हिन्दी
६१ हिन्दी और उर्दू
६२ उद्यम और प्रारब्ध
६३ परिश्रम
६४ ग्राम्य जीवन
६५ समय का सदुपयोग
६६ ईश्वर-महिमा
६७ राजभक्ति
६८ मातृभक्ति
६९ माता पिता के सन्तान पर उपकार
७० शाक और मांस का आहार
७१ सभ्यता
७२ सदाचार
७३ धर्म
७४ क्षमा
७५ दान
७६ परोपकार

७७ पशुपालन
७८ उत्तम खेती, मध्य व्यापार।
निषिद्ध चाकरी, भीख नदार॥
७९ औद्योगिक शिक्षा
८० विलासी जीवन
८१ सफ़ाई और स्वास्थ्य
८२ स्त्रियों के अधिकार
८३ भारत में स्त्रियों की अवस्था
८४ चरित्रगठन
८५ संगीत
८६ आधुनिक हिन्दू समाज की त्रुटियाँ
८७ जहां सुमति, तहां संपति नाना।
जहां कुमति, तहां विपति निदाना॥
८८ आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कार और मनुष्य जाति
८९ धन का सदुपयोग
९० धन की महिमा
९१ भारत की प्राचीन सभ्यता पर एक दृष्टि
९२ सामाजिक संगठन की आवश्यकता
९३ वर्ण-व्यवस्था
९४ ग्राम सुधार
९५ बीमारी भली कि गरीबी
९६ कुसङ्गति
९७ आलस्य
९८ संघे शक्तिः कलौ युगे
९९ जहां प्रेम तहां नेम नहीं
१०० सबै सहायक सबल के,
कोउ न निबल सहाय।